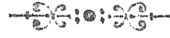
महाभारत भाषा

सभापर्व



लेखक

आगरा निवासी

पं० कुंजबिहारीलाल शर्मा



केसरीदास सेठ द्वारा,

नवलकिशोर प्रेस—लखनऊ में मुद्रित व प्रकाशित



चतुर्थावृत्ति]

सन् १९२२ ई०।

महाभारत भाषा सभापर्व का सूचीपत्र।

अ०	विषय	पृष्ठ

इति ॥

महाभारत भाषा
सभापर्व।

सो०। चरण कमलद्युतिधाम धूम्रकेतु गणनाथके।
पद पंकज अभिराम श्रीगुरुके वन्दन करहुँ॥
अव्यय अक्षयधाम जेहि गावत सब वेदविद।
वंदि ताहि निष्काम सभापर्व भाषा करहुँ॥

श्लो०। नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

पहिला अध्याय।

मय दानव का पांडवों के लिये सभा बनाने को स्थान नियत करना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! खांडव वनके जलजाने के पीछे मय दानव अर्जुन को कृष्णचन्द्र के पास वारंवार पूजकर मधुर वाणी से हाथ जोड़कर कहनेलगा कि महाराज आपने मुझको इन वासुदेवजी और अग्नि से बचाया है इससे मैं भी आपका कुछ काम किया चाहता हूं जो कुछ आप कहैं वही मनोकामना मैं आपकी पूरी करूं यह सुनकर अर्जुनने कहा कि तुम हमारा सब काम करचुके हम तुमपर प्रसन्न हैं अब तुम कल्याणपूर्वक अपने घर जाओ और हमसे प्रीति रक्खो मय दानव बोला कि आप सत्य कहते हैं आप इसी योग्य हैं परन्तु मैं दैत्यों का विश्वकर्मा हूं और शिल्पविद्या अच्छी तरह जानता हूं इससे मैं प्रीतिपूर्वक आपका कुछ काम किया चाहता हूं १। ६ यह सुनकर अर्जुन बोला कि तुम अपने को हमसे रक्षा किया हुआ मानकर हमारा काम करना चाहते हो परन्तु मेरा कोई ऐसा काम नहीं है जो मैं तुमसे कराऊं इससे जो तुमको हमारा काम करना ही है तो श्रीकृष्णजी से कहो और वे जो कुछ आज्ञा दें सो करो उनका काम करना हमारा ही काम है यह सुनकर मयने श्रीकृष्णजी से कहा और वे क्षणभर विचार करके लोकनाथ प्रजापति की प्रेरणासे बोले कि हे दानव! जो तू धर्मराज का प्रिय करना चाहता है तो एक ऐसी सुंदर सभा बना जिसके सदृश इस संसार में दूसरी सभा न निकले और उसे देख २ कर संपूर्ण असुर और मनुष्य तेरी मतिकी प्रशंसा करें ७। १२ यह सुन-

कर मय दानव ने प्रसन्न होकर सभा बनानी अंगीकार की और विमानप्रतिमा नाम सभाको बनाने का विचार किया इसके पीछे श्रीकृष्ण और अर्जुन मय को युधिष्ठिरके पास लेगये और उनसे सब वृत्तान्त कहकर मय दानव के सभा बनाने का हाल कहा युधिष्ठिरने उस वृत्तांतको सुनकर मयकी यथोचित पूजा की और वह उस पूजा को अंगीकार करके प्रसन्नतापूर्वक वृषपर्वा दानव का चरित्र पांडवों से कहने लगा उपरान्त कुछ दिन स्वस्थ होकर श्रीकृष्ण और अर्जुन की आज्ञा के अनुसार शुभ दिन में मंगलपूर्वक सहस्रों ब्राह्मणों को खीरके भोजन कराके और धन आदि से तृप्त करके उस दैत्यने ऐसी महा रमणीक पृथ्वी देखकर जहां सब ऋतुओं में सुख रहे दश २ सहस्र हाथ पृथ्वी को चारों ओर से नापकर सभा बनाने के लिये स्थान नियत किया १४। २१॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि प्रथमोऽध्यायः १॥

दूसरा अध्याय।

श्रीकृष्णजी का पाण्डवों से विदा होकर द्वारकापुरी को जाना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे श्रीकृष्णजी ने पिता के दर्शनों की लालसा से पांडवों के साथ प्रीतिपूर्वक बहुत दिनों तक बसकर द्वारका जाने की इच्छा की और अपनी फूफी कुंती से आज्ञा मांगकर उसके पैरों पर अपना मस्तक रखदिया कुंती ने उनके मस्तक को सूंघकर प्रीतिपूर्वक उठाकर छाती से लगा लिया इसके पीछे श्रीकृष्णजी सुभद्रा के पास गये और प्रेमके आँसू भरकर उससे बहुत सी हितकारी बातें कहीं और उसका संदेशा सुनकर उससे प्रीतिपूर्वक विदा हुये फिर द्रौपदी के पास गये और उसेभी प्रसन्न करके उससे बिदा हुये उपरांत धौम्य ऋषि के पास गये और उनके चरणों में वंदना करके पांडवों के पास चले गये जब यात्रा का काल आया तब उन्होंने स्नान किया और पवित्रतासे यात्राकालकी आवश्यक कृत्य करके देवता और ब्राह्मणों की गंधादिक से पूजा की और शुभ मुहूर्त्त के आने पर दही फल और अक्षतों से पूजित होकर ब्राह्मणों से स्वस्ति वचन सुनते हुये अच्छे भूषण वसन पहिनकर नगर के बाहर निकले और ब्राह्मणों को धन देकर और उनकी प्रदक्षिणा करके शैब्य सुग्रीव नाम घोड़ों से जुते हुये सुवर्ण के रथ पर शंख चक्र और गदा आदि अस्त्रों को लिये हुये बैठगये उस समय युधिष्ठिरने दारुक सारथी को रथपर से उतार दिया और बागडोर आप हाथ में लेकर श्रीकृष्णजी का रथ हांका और अर्जुन

सुवर्ण की डंडीका चमर लेकर रथके दाहिनी ओर चढ़गया और चमर ढोरने लगा और भीमसेन नकुल और सहदेव पुरवासी और ऋत्विजों सहित उनके पीछे पीछे हो लिये उस समय श्रीकृष्णजी पाण्डवों सहित ऐसे शोभित मालूम होते थे मानों शिष्यों सहित गुरु बैठे हुये हैं इस प्रकार से श्रीकृष्णजी उन सब पांडवों से अन्वीयमान और पूजित होते हुये सबके साथ साथ उसी रथपर दो कोसतक गये उपरांत युधिष्ठिर के चरणों को छूकर उन्हें लौटने को कहा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णके शिर को बड़ी प्रीति से सूंघकर छाती से लगालिया और जाने की आज्ञा दी तब फिर श्रीकृष्णजी अर्जुन आदि सब छोटे भाइयों से यथायोग्य मिले और फिर आनेका नियम करके उन सबको बड़े कष्ट से लौटाकर द्वारकापुरी को चलदिये पाण्डव उनको बड़ी प्रीति से पीछे से खड़े हुये देखा किये और जब उनका रथ दृष्टि से बाहर होगया तब अपने मनको उनके साथ करके आप सब उनकी मूर्तिको प्रीतिपूर्वक मनसे ध्यान करते हुये घरको लौट आये और श्रीकृष्णजी उस रथ पर चढ़े हुये आगे दारुक और पीछे सात्यकी सहित द्वारकापुरी में पहुँचे १ । ३० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! युधिष्ठिर अपने भाई और सुहज्जनों के साथ लौटकर अपने नगर में पहुँचा और उन सबको बिदा करके द्रौपदी के पास जाकर आनन्द करने लगा और श्रीकृष्णजी भी द्वारकामें पहुँचकर यादवों से पूजित हुये और उग्रसेन वसुदेवजी बलदेवजी और माताको दण्डवत् करके अपने प्रद्युम्न, साम्ब, निशठ, चारुदेष्ण, गद, अनिरुद्ध और भानु आदि पुत्र पौत्रों को गोदमें लेकर प्यार करके रुक्मिणीके भवन में चलेगये यहां इन्द्रप्रस्थ में मय दानवने सब रत्नों से जटित युधिष्ठिरके लिये सभा बनानी आरंभ की ३१ । ३६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि द्वितीयोऽध्यायः २ ॥

तीसरा अध्याय।

मय दानव करके पांडवों के लिये रत्नजटित सभा बनानी ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! मय दानवने अर्जुनसे कहा कि कैलास पर्वतके उत्तर ओर मैनाक पर्वत है और उस पर्वत में एक बिंदुसर है मैंने वहां पहिले दैत्यों के यज्ञ करने की इच्छा करने पर वृषपर्वा दैत्यराज की सभा बनाई थी उसी स्थानके निकट उस सभा के बनाने के द्रव्य अर्थात् अनेक प्रकारकी मणि और रत्नादिक रक्खे हुये हैं सो मैं वहां उन सब वस्तुओं

को लेने जाता हूं उनको लाकर आपके लिये बड़ी सुन्दर रत्नजटित और मन को आनन्द देनेवाली सभा बनाऊंगा और उसी बिंदुसर के निकट एक कांचनमयी बड़ी भारी गदा जो इसी प्रकार की है जैसा गांडीवधनुष है राजा वृषपर्वाने शत्रुओंको मारकर रखदी थी और वरुणका देवदत्त नाम बड़ा शङ्ख भी जिसका शब्द बड़ी दूर से सुनाई पड़ता है वहीं रक्खा हुआ है सो मैं उन दोनों को भी लेता आऊंगा वह शङ्ख आपके और गदा भीमसेनके योग्य है यह कहकर वह दैत्य ईशानकोणकी ओर को चलदिया और कैलास पहाड़ की उत्तर ओर मैनाक पर्वत पर पहुँचकर बिंदुसर के निकट जा पहुँचा यह वही स्थान है जहां भगीरथ ने गंगाजी के दर्शनोंकी इच्छा से बहुत वर्ष रहकर तपस्या की थी और प्रजापति ने यज्ञ किया था उस स्थान पर मणिमय यज्ञखम्भ और सुनहरी सींवा वृक्ष लगे हुये हैं और उसी स्थानपर इन्द्रने यज्ञ करके बड़ी सिद्धि पाई थी वहांपर सहस्रों प्राणी शिवजी महाराजका आराधन करते हैं और उसी जगह नर नारायण ब्रह्मा और महादेवजी सहस्र युगों के व्यतीत होने पर यज्ञ किया करते हैं वासुदेवजी ने इसी स्थान पर धर्मप्रवृत्ति के लिये अनन्त यज्ञ किये थे और सुवर्णयुक्त यज्ञखम्भ और दीप्त सींवा वृक्ष दान दिये थे १।१७ वह दैत्य वहां पहुँचकर वह गदा और शङ्ख और सभा बनाने को मणिआदिक नानाप्रकार के द्रव्य जो दैत्यों से रक्षित वहां रक्खे हुये थे लेकर इन्द्रप्रस्थको लौट आया और गदा भीमसेन को और शङ्ख अर्जुनको देकर सभाकी रचना करने लगा थोड़े दिनों में वह सभा मणिमय द्रव्यों से बन कर चारों ओर दश २ सहस्र हाथ लंबी तय्यार होगई वह सभा ऐसी अद्भुत बनी थी कि उसके सदृश श्रीकृष्णकी सुधर्मा नाम सभा और ब्रह्माकी भी सभा न थी और उत्तम २ द्रव्य और रत्नों से ऐसी बनाई गई थी कि सूर्य और चन्द्रमा की भी सभा वैसी न थी उस सभामें ऐसा प्रकाश था कि उसके सामने सूर्य का भी प्रकाश अस्त होगया और ऐसी शोभायमान थी कि मनुष्यकी थकावट वहां जाते ही दूर होजाती थी ऊंची ऐसी थी कि आकाश में लगीहुई जान पड़ती थी उस दैत्यों के विश्वकर्मा मयने उस सभाको बहुत द्रव्यों से बनाकर उसकी रक्षाके लिये आठ सहस्र किंकर नामी दैत्य जो बड़े पराक्रमी लंबी चौड़ी लाल लाल आँखें और शङ्खवत् कान रखनेवाले थे नियत कर दिये वे दैत्य उस सभा को जहाँ चाहें तहाँ उठाकर लेजासक्ते थे १८।२६

मयने उस सभामें एक नलिनी अर्थात् कमलयुक्त सरोवर बनाया था उस सरोवर की सीढ़ियाँ स्फटिक की बनी थीं जल उसमें कीच रहित मोती की सदृश झलकता था उसके चारों ओर मणियोंका चौतरा बना दिया था और उस सरोवर में जो कमल थे उनकी पत्तियाँ वैडूर्यमणि की और नालें पद्मराग आदि मणियोंकी बनाई थीं और उसमें अनेक अनेक प्रकार की मणियों से जटित सुनहले कछुये और मछलियाँ फिरते थे और पद्मराग आदि मणियों के बने हुये अनेक प्रकारके पक्षी जहाँ तहाँ बैठे हुये थे वायु वहां शीतल चलती थी उस सभाको बहुत से मनुष्य देखने आये और भ्रांतसे थलको जल और जलको थल जान २ कर गिर २ पड़े उस सभा के चारों ओर बड़े२ सुन्दर और शीतल छाया देनेवाले वृक्ष लगादिये गये और बड़ी सुगन्धि देने वाले बाग कमल हंस और चकवा चकवी आदि से युक्त सरोवरों के होनेसे वह सभा अत्यन्त सुशोभित होगई और वायु वहां सब प्रकार के जलमें उत्पन्न होनेवाले कमलों और थल में फूलनेवाले फूलोंकी सुन्दर गंधको लेकर बहने लगी वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! मयने उस सभाको १४ महीने में बनाकर युधिष्ठिर को निवेदन करदिया ३० । ३७॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि तृतीयोऽध्यायः ३ ॥

चौथा अध्याय।

युधिष्ठिर का सहस्रा ब्राह्मणों को भोजन कराके सभा में प्रवेश करना और सब देशके राजा और ऋषियों के आने पर नृत्य गीतादिक आनन्द होना ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उस सभा के बनजानेपर युधिष्ठिर ने उसमें प्रवेश करने के लिये दशसहस्र ब्राह्मणोंको भोजन कराया और घी और शहद मिलीहुई खीर पूरी मूल और फलों के अनेक शाक, मृग, वाराह और बकरी आदिके अनेक २ प्रकारके मांस और पीने चूसने और खाने के अनेक पदार्थों से नानादिशाओं से आयेहुये ब्राह्मणोंको तृप्तकरके प्रत्येक ब्राह्मण को एक २ गाय और नवीन २ वस्त्र दिये ब्राह्मणों ने उनको लेकर बड़े उच्चस्वर से पुण्याहघोष किया इसके पीछे युधिष्ठिर देवताओंकी स्थापना करके दिव्यगंधों से पूजित होकर उस सभा में विराजमान हुआ और मल्ल, नट, उल्ल, सूत और वैतालिक अपनी २ कृत्य करनेलगे इसके पीछे युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित स्वर्ग में इन्द्रके समान उस सभा में विहार करनेलगा और अनेक

देशों से आयेहुये ऋषि और राजालोग उस सभा में युधिष्ठिरके पास स्थित हुये उनके नाम ये हैं ऋषियों के नाम,असित, देवल, सत्य, सर्पमाली, महाशिरा, अर्वावसु, सुमित्र, मैत्रेय, सुनक, बलिबक, दाल्भ्य, स्थूलशिरा, कृष्णद्वैपायन, शुक, सुमन्त, जैमिनि और पैल आदि व्यासजी के शिष्य और तित्तिरि, याज्ञवल्क्य, लोमहर्षण अपने पुत्रों सहित, अशुहोम्य, धौम्य, अणीमांडव्य, कौशिक, दामोष्णीष, त्रैबलिपर्णाद, घृटजानुक, मौंजायन, वायुभक्ष, पराशर्य, सारिक, बलीवाक, सिनीवाक, सत्यपाल, कृतश्रम, जातूकर्ण, शिखावान्, आलंब, पारिजातक, पर्वत, महामुनिमार्कंडेय, पवित्रपाणि, सावर्ण, भालुकि, गालव, जंघाबन्धु, रैभ्य, कोपवेग, भृगु, हरिबभ्रु, कौडिन्य, बभ्रुमाली, सनातन, काक्षीवान्, औषिज, नाचिकेत, गौतम, पैंग, वराह, शुनक, शांडिल्य, कुकुर, वेणुजंघ, कालाप और कठ इनके सिवाय और २ बहुत से वेदपारग और पुण्यकथाओं के कहनेवाले ब्राह्मण आये थे राजाओं के नाम ये हैं १। २० मुंजकेतु, विवर्द्धन, संग्रामजित्, दुर्मुख, उग्रसेन, राजा कक्षसेन, क्षेमक, कांबोजराज, कमठ, कंपन जिसने बड़े २ अस्त्रवेत्ता यमनों को युद्ध में कँपादिया था कालकेय, मद्रक देशों का राजा जटासुर, कुन्ति, किरातों का राजा पुलिन्द, अंग और वंग देशके राजा पुण्ड्र, पांड्योंड्र, अंधक, अंग, वंग, सुमित्र, कर्शन, शैव्य, किरातोंका राजा सुमना, यमनोंका राजा चाणूर, देवरात, भोज, भीमरथ, श्रुतायुध, राजा कलिंग, जयत्सेन, राजा मगध, सुकर्मा, चेकितान, अमित्र, कर्शनपुरु, केतुमान, वसुदान, वैदेह, कृतक्षण, सुधर्मा, अनिरुद्ध, श्रुतायु, अनूपराज, दुर्धर्ष, क्रमजित्, सुदर्शन, शिशुपाल, राजाकरुष, वृष्णिवंशीकुमार, आहुक, विप्रथु, गद, सारण, अक्रूर, कृतवर्मा, सत्यक, भीष्मक, कृतिक, द्युमत्सेन, कैकय, यज्ञसेन, सौमकि, केतुमान, वसुमान और २ बहुत से राजालोग थे परन्तु उनमें से मुख्य मुख्यों के नाम कहेगये हैं इनमें से बहुतसे राजकुमारों और वृष्णिवंशी प्रद्युम्न, साम्ब, युयुधान, सात्यकि, सुधर्मा, अनिरुद्ध, शैव्य आदि अनेकों ने अर्जुन के पास रहकर वहां धनुर्वेद सीखा था इसी सभा में तुम्बुरु नाम गन्धर्व भी जो अर्जुन का मित्र था नित्य अर्जुन के पास रहता था उस सभामें चित्रसेन आदि सत्ताईस गन्धर्व और अनेक अप्सरा आई थीं और मनस्वी और तुम्बुरु की प्रेरणा से किन्नर और गन्धर्वों ने जो गाने बजाने स्वर मिलाने

और अलापने में बड़े निपुण थे बड़ी मधुर तानों के साथ सुन्दर सुन्दर भजन गाये और जैसे सब देवता स्वर्ग में ब्रह्माजी की उपासना करते हैं इसी प्रकार से वह सब वहां रहकर युधिष्ठिर और ऋषियों को रमण करा २ कर उनकी उपासना करने लगे २१ । ३० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ४ ॥

पांचवां अध्याय।

नारदजीका सभामें पांडवों के पास आना और उनसे नीतिसम्बंधी प्रश्न करना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जब युधिष्ठिर राजालोग और गंधर्वों सहित सभामें बैठ गया तब वहां नारदजी आये वे वेद, उपनिषद् ऐसे इतिहास और पुराणों की कथा जिनको देवता भी मानते हैं पूर्वकल्प, न्याय-शास्त्र, धर्मतत्त्व और वेदके छःअंगों के जाननेवाले और सबसे श्रेष्ठ एकात्म-भाव रखने और संयोग को पृथक् २ करनेवाले, एक धर्म में अनेक धर्मों का आचरण जाननेवाले, बड़े वक्ता, असंबद्ध न बोलनेवाले, मेधावी, स्मृतियों और दायविभाग आदिके जाननेवाले, कवि, ज्ञान कर्मकाण्ड और हरबात को प्रमाण सहित निश्चय करनेवाले, प्रतिज्ञा आदि पांचों अवयवों से युक्त, हरबातके गुण और दोषको पहचाननेवाले, बृहस्पति के कहेहुये परभी उत्तर देनेवाले, अर्थ धर्म काम और मोक्ष के निर्णयको यथावत् कहनेवाले, सम्पूर्ण विश्वको देखनेवाले, सांख्ययोग के विभागको जाननेवाले, संधि और विग्रह के तत्त्वके ज्ञाता, देवता और असुरोंको विपरीत करनेवाले, छः गुणोंकी विधि और सब शास्त्रों में पंडित, युद्ध और गान्धर्वविद्यामें निपुण और सब जगह विना रोकटोक जानेवाले थे वे अनेक लोकों में घूमतेहुये मन के वेगकी तरह पारिजात, रैवत, सुमुख और सौम्य ऋषियों सहित उस युधिष्ठिरकी सभा में पांडवों के देखनेको अकस्मात् आ पहुँचे और युधिष्ठिरको प्रीति सहित जय का आशीर्वाद दिया उनको देखतेही सब पांडव खड़े होगये और विनययुक्त दण्डवत् करके उनको सुन्दर आसन पर बैठाया और अर्घ्य पाद्य मधुपर्क और रत्नों से उनकी पूजा की १ । १५ नारदजी पाण्डवोंकी पूजासे प्रसन्न हुये और उनसे अर्थ धर्म कामयुक्त यह पूछनेलगे कि कहो तुम्हारे अर्थ सिद्ध होते हैं मन प्रसन्न और धर्म में लगा रहता है या नहीं और अंतर आत्मामें ध्यान लगाने पर मन इधर उधर तो नहीं जाता तुम्हारे पहले पुरुषाओं के अर्थ धर्म और

काम तीनों से युक्त आचरणों में तुम्हारी वृत्ति रहती है अथवा उससे निवृत्त होगये हो तुम्हारे अर्थ से धर्म और धर्म से अर्थ और काम और प्रीतिसे अर्थ और धर्म दोनोंको बाधा तो नहीं पहुँचती तुमने अर्थ धर्म और कामको करने के लिये कालका विभाग कियाहै या नहीं अर्थात् ब्राह्म मुहूर्त्त में धर्म करना दिन में अर्थ उपार्जन और रात्रि में कामकलोल करनेका नियम कियाहै या नहीं राजाओं के छः गुणोंकी सेवा अर्थात् दूत और मंत्रियों को उपदेश करना १ शत्रुको दबाने में उत्कर्ष दिखाना २ तर्क में कुशल होना ३ स्मृति ४ भूत को शास्त्रसे और भविष्यको बुद्धिबलसे जानना ५ और नीतिशास्त्र को जानना ६ और सात उपायों की साधना अर्थात् साम १ दाम २ दंड ३ भेद ४ मंत्र ५ ओषधी ६ और अपने और शत्रुके बलाबलका विचार ७ और चौदह दोषों की परीक्षा अर्थात् नास्तिकता १ असावधानी २ दीर्घसूत्रता ३ इन्द्रियों के वशमें रहना ४ किसी प्रयोजनको अकेला चिंतन करना ५ ऐसे मनुष्यों के साथ विचार करना जो विपरीत अर्थ देखनेवाले हैं ६ क्रोध ७ ज्ञानियोंका दर्शन करना ८ निश्चित कियेहुये कामको आरम्भ न करना ९ सलाह को सबसे कहदेना १० मंगल कामों को न करना ११ सब शत्रुओंपर एक साथ चढ़ाई करना १२ झूंठ बोलना १३ और आलस्य १४ करते हो या नहीं और इन चौदह बातों को भी देखते हो या नहीं घोड़ा १ हाथी २ किला ३ योधा ४ देश ५ कोष ६ अधिकारी ७ शत्रु ८ शास्त्र ९ व्यवहार १० दूत ११ महल १२ जमाखर्च १३ और रथ आदिकी गणना १४ राज्यका प्रबन्ध अपने और शत्रुओं के बलाबल को विचारकर करते हो या नहीं और आठ कर्म अर्थात् खेती का प्रबन्ध १ व्यापार का प्रबन्ध २ सड़कें बनवाना ३ किले बनवाना ४ पुल बनवाना ५ हाथियोंको बहुत खानेके कारण से ग्राम २ में बँधवाना ६ सोना चाँदी आदिकी खानोंपर कर बाँधना ७ और उजड़े हुये अथवा शून्य देशको बसाना ८ करते हो या नहीं और तुम्हारी सब प्रकृतियां अर्थात् किले का रक्षक १ सेनापति २ धर्माध्यक्ष ३ चमूपति ४ पुरोहित ५ वैद्य ६ ज्योतिषी ७ अमात्य ८ सुहृद ९ कोष १० राष्ट्र ११ दुर्ग १२ और सेना १३ नष्ट तो नहीं हैं अर्थात् ऐसा तो नहीं हुआ है कि धनका लोभ देकर तुम्हारे शत्रुओं ने उनको अपने वशमें करलिया हो और तुम्हारी सलाह को तुम्हारे विश्वासी मनुष्य, दूत और मंत्री प्रकाश तो नहीं करते और तुम अपने मित्र शत्रु और

उदासीन मनुष्यों और कालके अनुसार संधि और विग्रह को जानते हो या नहीं और जो मनुष्य तुम्हारे मित्रहैं न शत्रु और जो मध्यस्थहैं अर्थात् तुम से और तुम्हारे शत्रु दोनों से मिलेहुये हैं उनके कर्तव्यको भी देखते रहते हो या नहीं और तुमने अपने मन्त्री अपनी आत्माके समान, शुद्ध अन्तःकरण, समर्थ, बुद्धिमान्, वृद्ध, कुलीन और प्रीतिमान् मनुष्यों को किया है या नहीं मंत्रीही विजयका मूल गिनाजाताहै और तुम्हारे राज्यको ऐसे मंत्री जो मंत्र को किसी से न कहें और शास्त्र में पण्डित हो रक्षा करते हैं या नहीं कहीं राज्य को तुम्हारे शत्रु तो नष्ट नहीं करते हैं तुम समय पर जगते हो या निद्रा के वश में रहते हो और अपने कार्य का विचार ब्राह्ममुहूर्त में करते हो या नहीं कहीं ऐसा तो नहीं करते हो कि अकेले २ जो चाहें सो सलाह कर ली अथवा औरों के साथभी की तो बहुतसे मनुष्यो में बैठकर की और सलाह सब राज्य में विख्यात होगई और ऐसे कामों के शीघ्र करने में जिनमें परिश्रम थोड़ा हो और फल बहुत हो विघ्न तो नहीं होजाता है १६ । ३१ तुम्हारे राज काज करनेवाले अविश्वासी और ऐसे तो नहीं हैं जिन को तुम न जानते हो और तुम ऐसा तो नहीं करते हो कि कभी किसी मनुष्य को किसी अधिकार पर कर दिया कभी उसी को दूसरा अधिकार दे दिया तुम्हारी खेती आदि विश्वासी और वृद्ध मनुष्यों के द्वारा होती है या नहीं और तुम्हारे काम कृतप्राय तो नहीं हैं तुम्हारे पुत्रों को सब शास्त्रों में पण्डित और धर्म उपदेश करनेवाले आचार्यलोग शिक्षा करके उनको योधाओं में मुख्य करते हैं या नहीं राजाओं को उचित है कि सहस्र मूर्खों के बदले में एक पण्डित को मोल लेलें क्योंकि पण्डितही सब कामों में कल्याण का करनेवाला होता है तुम भी ऐसा करते हो या नहीं तुम्हारे सब किले धन धान्य आयुध जलयंत्र शिल्पविद्या को जाननेवाले और धनुर्धारी योधाओं से पूरित हैं या नहीं जिस राजाके एक मंत्री भी मेधावी शूर जितेन्द्रिय और चतुर होता है उसकी लक्ष्मी की बहुत वृद्धि होती है तुम्हारे भी मंत्री ऐसे ही हैं या नहीं तुम अपने शत्रु के अठारह अंगों की अर्थात् मंत्री १ पुरोहित २ युवराज ३ चमूपति ४ द्वारपाल ५ अंतर्देशिक ६ कारागृहाधिकारी ७ खजाञ्ची ८ दीवान ९ प्रदेष्टा १० नगराध्यक्ष ११ कार्यनिर्माणकर्त्ता १२ धर्माध्यक्ष १३ सभापालक १४ दंडपाल १५ किलेका रक्षक १६ राष्ट्रांतपालक १७ अटवीपालक १८

और अपने पक्षके १५ अंगों की अर्थात् मंत्री युवराज और पुरोहित को छोड़ कर शेष १५ अंगों की खबर विना जाने हुये दूतों के द्वारा रखते हो या नहीं तुम अपने शत्रुओं के नित्य उद्योगी और सावधान दूतों के विना जाने अपने शत्रुओं के मनकी वातको जानते हो या नहीं तुम्हारा पुरोहित शिक्षायुक्त अच्छे कुलमें उत्पन्न, बहुत से शास्त्रों का जाननेवाला व दूसरे के गुण में दोष लगाने वाला, शास्त्रचर्चा में कुशल, श्रौत, स्मार्त अग्नियों से युक्त विधि का जानने वाला, बुद्धिमान्, सीधा और समय पर हुत और होष्यमाण वस्तु को बतानेवाला है या नहीं ३२। ४१ तुम्हारा ज्योतिषी सब ज्योतिष के अंगों में कुशल है या नहीं और तुमको ग्रहों की बाधा का हाल जताता रहता है या नहीं तुम उत्तम कामों में मुख्य २ मध्यम कामों में मध्यम और नीच कामों में नीच मनुष्यों को नियत करते हो या नहीं और श्रेष्ठ कर्मों के करने को तुम अपने छलहीन पिता और बाबाओं को नियत करते हो या नहीं तुम अपनी प्रजा को बड़ा दंड देकर दुःख तो नहीं देते हो और हिंसाकर्म करके राज्य करने से याचकलोग इस प्रकार से तुम्हारा अपमान तो नहीं करते हैं जैसे स्त्रियां उस पतिका अपमान करती हैं जो इच्छाचारी होता है तुम्हारा सेनापति शूर-वीर, बुद्धिमान्, धैर्यवान्, युवा, पवित्र, कुलीन, प्रीतिमान् और दक्ष और सेनाके मुख्य २ योद्धा सब युद्धोंको जाननेवाले, निष्कपट, जय करनेवाले और तुम से सत्कृत हैं या नहीं तुम अपनी सेना आदि का मासिक समय पर दे देते हो या नहीं कहीं ऐसा तो नहीं करते कि समय बहुत बीतजावे और वह लोग अपना मासिक न पावें क्योंकि ऐसा करने से सब चाकर बड़ा अनर्थ करते हैं क्योंकि उनकी जीविका और कुछ नहीं होती है तुम्हारे मन्त्री तुमसे प्रीति रखकर समय पर युद्ध में तुम्हारे लिये अपने प्राणों के देने को उद्यत रहते हैं या नहीं ४२। ५१ तुम ऐसा तो नहीं करते कि शास्त्र की आज्ञा को उल्लंघन करके अपनी इच्छा के अनुसार योद्धाओं को जो चाहे सो आज्ञा दे देते हो और जो मनुष्य अपने पुरुषार्थ से कोई बड़ा काम करै उसको तुम आदरपूर्वक धन से सन्मानते हो या नहीं और ज्ञानी और विद्वानों को पारि-तोषिक आदि देते हो या नहीं और जो मनुष्य तुम्हारा काम करने को दुःख पा रहे हैं अथवा तुम्हारे काम में उनके प्राण जाते रहे हैं उनके कुटुम्ब का पालन करते हो या नहीं और जो शत्रु भयसे अथवा धनहीन होने से अथवा

युद्ध में हारजाने के कारण से तुम्हारी शरण आता है उसका तुम पालन पुत्रकी तरह करते हो या नहीं और सब पृथ्वी को माता पिता की तरह एकसा और शंका रहित देखते हो या नहीं और अपने शत्रु को व्यसनी अर्थात् स्त्री, जुआ, अहेर, मद्य, नाच, गीत, वृथा फिरना, वाद्य, निन्दा और दिन में सोना आदि व्यसनों में लिप्त सुनकर और अपने को तीनों बल अर्थात् मंत्री कोश और सेनासे युक्त देखकर वेगसे उस शत्रु को जीतने को जाते हो या नहीं और तुम अपने ज्योतिषियों के द्वारा अपने को हराने वाले पांच दैवी अर्थात् अग्नि १ जल २ व्याधि ३ दुर्भिक्ष ४ और मरण ५ और पांच मानुषी अर्थात् अयुक्त १ चोर २ शत्रु ३ राजवल्लभ ४ और राजा के लाभ से प्रजा को भय होना ५ व्यसनों को जानकर कालके अनुसार मंगलकृत्य करके यात्रा करते हो या नहीं और सेना का मासिक आगे से देकर शत्रुके मुखिया २ सेनापतियों को यथायोग्य विना जाने रत्न आदि देकर अपनी ओर फोड़ लेते हो या नहीं और आप जितेन्द्रिय होकर अजितेन्द्रिय शत्रु को जीतनेका उपाय करते हो या नहीं ५२। ६१ और जब तुम शत्रुके ऊपर चढ़कर जाते हो तब साम १ दाम २ दंड ३ भेद ४ इनका अच्छी तरह बर्ताव करते हो या नहीं राजा को चाहिये कि अपनी जड़ को पक्की करके दूसरे पर चढ़ाई करै और युद्ध में अच्छे प्रकार से पराक्रम करै और विजय होने पर सब की यथायोग्य रक्षा करै तुम भी ऐसा करते हो या नहीं और तुम्हारी सेना में आठ अंग अर्थात् रथ १ हाथी २ घोड़ा ३ योधा ४ पत्ती ५ कर्मकारक ६ चार ७ और दैशिक मुख्य ८ और चार प्रकार का बल अर्थात् मौल १ मैत्र २ भृत्य ३ और आटविक ४ है या नहीं जिसमें वह सेनापतियों के लेजाने पर शत्रुओं का नाश करै कोई राजा ऐसा नहीं है जो खेती काटने और खेती रखाने और दुर्भिक्षके समय को छोड़कर और समय में युद्ध करके शत्रु को जीतै तुम्हारी भी यही वृत्तिहै या नहीं तुम्हारे अधिकारी लोग अपने देश की तरह शत्रु के देशों में भी रहकर परस्पर रक्षा और तुम्हारे अर्थ की साधना करते हैं या नहीं और तुम्हारे भक्ष्य वस्त्र और चन्दन आदि पदार्थों की रक्षा विश्वासी मनुष्य करते हैं या नहीं और तुम्हारे खजाना, अन्न के रखने का स्थान, वाहन, हथियार और लाभस्थानों पर ऐसे मनुष्य नियत हैं या नहीं जो तुम से प्रीति रखते हों और तुम्हारा कल्याण चाहते हों और तुम अपनी रक्षा महल के भीतर

और बाहर रहनेवाले मनुष्यों से और उन मनुष्यों की रक्षा अपने पुत्र और मंत्रियों से और पुत्र की रक्षा मंत्री से और मंत्री की पुत्र से करते हो या नहीं और पान, द्यूत, क्रीड़ा और स्त्रियों के लिये जो तुम्हारा खर्च होता है वह तुम्हारे चाकर लोग तो नहीं करते हैं और तुम्हारा खर्च लाभ से आधा चौथाई अथवा तीसरे हिस्से में अच्छे प्रकार से होजाता है या नहीं ६२। ७१ और तुम दरिद्री, स्वजातीय, गुरु, वृद्ध, व्यापारी और शिल्पविद्या जानने वालों पर धन धान्य देकर कृपा रखते हो या नहीं और आय व्यय अर्थात् जमा खर्च के रखनेवाले गणक और लेखक अर्थात् हिसाब करनेवाले और मुतसद्दी लोग तुमको समय २ पर हिसाब समझाते रहते हैं या नहीं और चतुर और हितकारी मनुष्यों को निरपराध अपने अधिकार से अलग तो नहीं कर देते हो और उत्तम मध्यम और नीच पुरुषों के साथ यथायोग्य बर्ताव करते हो या नहीं और तुम्हारे काम करने को ऐसे मनुष्य तो नियुक्त नहीं हैं जो लोभी चोर और तुमसे वैरभाव मानते हों और तुम्हारा देश लोभी और चौर कुमार्गियों अथवा तुमसे पीड़ा तो नहीं पाता है और तुम्हारे किसान दुष्ट तो नहीं हैं तुम्हारे देशमें तड़ाग जल पूर्ण बड़े २ और भाग युक्त स्थानों पर हैं या नहीं तुम्हारे किसानों की आजीविका और बीज को कोई मनुष्य नष्ट तो नहीं करता है और तुम किसानों को अनुग्रह धन अर्थात् तकावी चौथाई बढ़ोतरी पर देते हो या नहीं और तुम्हारी वार्ता अर्थात् खेती १ वाणिज्य २ पशुपालन ३ और लेन देन में व्याज का व्यवहार ४ अच्छे मनुष्यों के द्वारा रहती है या नहीं क्योंकि वार्ता के प्रचार से बड़ी वृद्धि होती है और तुम्हारे सम्पूर्ण राज्य में एक २ स्थान पर पांच २ मनुष्य जो शूरवीर और बुद्धिमान् हों क्षेम अर्थात् सुलह रखने के लिये नियत हैं या नहीं ७२। ८१ और तुमने नगर की रक्षा के लिये गांवों को नगर के समान और बस्तियों को गांवों के समान कर दिया है या नहीं और वहां के रहनेवाले तुमको कर देते हैं या नहीं और तुम्हारे राज्य में शूरवीर लोग सेना को लेकर सब देश और नगरों में भ्रमण अर्थात् दौरा करते हैं या नहीं और चौर आदिकों को मारते हैं या नहीं और तुम स्त्रियों से मीठी बोली बोलकर उनकी रक्षा करते हो या नहीं स्त्रियों की बातपर विश्वास तो नहीं करते हो और कहीं उनसे गुप्त बात तो नहीं कहदेते हो और ऐसा तो नहीं करते हो कि अपने देशमें किसी विघ्न

को सुनकर उसका विना उपाय किये हुये महल में सो रहते हो और रात्रि को दो पहर सोकर पिछले पहर में उठकर अपने हितकी बात को विचारा करते हो या नहीं और समय पर मंत्रियों सहित बाहर आकर सब मनुष्यों की फ़रियाद सुनते हो या नहीं और चलते और बैठते समय तुम्हारे चारों ओर रक्तवस्त्र अर्थात् लालवरदी पहिरे हुये और हाथ में नंगी तलवार लिये हुये मनुष्य तुम्हारी रक्षाके लिये रहते हैं या नहीं और जो मनुष्य दण्ड देने के योग्य हैं उनको तुम यमराज की समान दण्ड देते हो या नहीं और अपने प्यारे कुप्यारे और पूज्यों के साथ यथायोग्य बर्ताव रखते हो या नहीं और शरीर के दुःखको औषधियों से और मनकी बाधा को वृद्धों की सेवा से दूर करते हो या नहीं तुम्हारे वैद्य तुमसे प्रीति रखनेवाले हितकारी और आठों प्रकार की चिकित्साओं में प्रवीण हैं या नहीं ८२ । ९१ तुम अपने सम्मुख आये हुये अर्थी और याचक को प्रीतिपूर्वक देखते हो या नहीं और लोभ से आश्रित मनुष्यों की आजीविका को तो बन्द नहीं करदेते हो और कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम्हारे देश और पुरवासी तुम्हारे शत्रुओं के अधीन होकर तुमसे विरोध रखते हों और तुम्हारा कोई शत्रु जो निर्बल और तुम्हारी सेना से पीड़ित होके अब अच्छी सलाह और बहुत सी सेना इकट्ठी करके तुमसे बलवान् तो नहीं होगया है और तुमसे प्रधान २ राजाओं से प्रीति है या नहीं और जो राजा तुम्हारे स्वाधीन हैं वह तुम्हारे काम में अपने प्राण देने को तय्यार हैं या नहीं और तुम गुणवान् और विद्वान् ब्राह्मण और साधुओं की पूजा करते हो या नहीं क्योंकि यह तुम्हारे कल्याण की बात है और अपने पुरुषाओं की रीतिपर अर्थ काम और मोक्षका प्रयत्न करते हो या नहीं और तुम गुणवान् ब्राह्मणों को सुन्दर स्वादिष्ठ भोजन कराके दक्षिणा देते हो या नहीं और एकाग्रचित्त होकर वाजपेय और पुण्डरीक आदि यज्ञों के करने में तुम्हारी बुद्धि रहती है या नहीं और अपने वृद्ध और बड़े स्वजातीय देवता और ब्राह्मणों को देखकर नमस्कार करते हो या नहीं ९२ । १०१ और तुम हीनजातियों के शोक और उत्तम पुरुषों के क्रोध को दूर करते हो या नहीं और पुरोहित आदि मंगलहस्तजन तुम्हारे पास स्वस्त्ययन पढ़ते रहते हैं या नहीं और तुम्हारी बुद्धि ऐसे ही कामों के करने में रहती है या नहीं जो यश काम धर्म और अर्थ के देनेवाले होवें क्योंकि जिस राजा की

ऐसी बुद्धि रहती है उसके देश में पीड़ा कभी नहीं होती है और वह राजा पृथ्वी को जीतकर बड़ी वृद्धि को पाता है और किसी विशुद्धात्मा और श्रेष्ठ पुरुष को जिसका धन चोर लेगये हों तुम्हारे मन्त्री लोभ से मारते तो नहीं और ऐसा तो नहीं होता है कि कोई चोर जो चोरी करने के कारण से पकड़ा गया हो धन लेकर छोड़ दिया जाता हो और दुष्ट मनुष्यों के सिखलाने से तुम्हारे मंत्री दरिद्री और धनाढ्य मनुष्यों के अर्थों को मिथ्या उपचार से तो नहीं देखते और नास्तिकता १ झूंठ बोलना २ क्रोध ३ प्रमाद ४ दीर्घसूत्रता ५ स्वजातियों से न मिलना ६ आलस्य ७ क्षिप्तचित्तता ८ अपने अर्थका अकेले ही अकेले विचार करना ९ ऐसे मनुष्यों के साथ सलाह करना जो अनर्थज्ञ हैं १० जिस कामके करने का निश्चय कर लिया है उसको न करना ११ सलाह को गुप्त न रखना १२ अमंगल्य बातें करना १३ और विषय में लिप्त रहना १४ इन चौदहों दोषों को तुमने छोड़ दिया है या नहीं क्योंकि इन दोषों के रहने से बड़े २ राजा भी नाश होजाते हैं और तुम्हारे धन वेद स्त्री और शास्त्र सफल हैं या नहीं १०२। १११ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि महाराज स्त्री वेद धन और शास्त्र किस प्रकारसे सफल होतेहैं नारदजी बोले कि अग्निहोत्रसे वेद दानसे धन रति और पुत्रोंसे स्त्री और शील स्वभाव से शास्त्र सफल होतेहैं वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह कहकर नारदजीने फिर युधिष्ठिर से पूछा कि जो व्यापारीलोग नफा उठानेको बहुत दूर २ से चीजें लाकर तुम्हारे राज्यमें बेचते हैं उनसे तुम कर लेते हो या नहीं और तुम्हारे नगर और देशमें व्यापारियों से कर उगहने के लिये जो मनुष्य नियत हैं वह उस कर में से कुछ कपट तो नहीं करलेते हैं और तुम धर्म और अर्थ के दिखानेवाले वृद्ध पुरुषों की बातें सुना करते हो या नहीं और तुम्हारे राज्य में प्रजालोग खेतीमें उत्पन्न हुये अन्न गौओं के दुग्ध और घृतमें से भाग निकालकर धर्मके लिये ब्राह्मणों को देतेहैं या नहीं और शिल्पविद्या जाननेवालों को चातुर्मास में औजार बनवाने के लिये कुछ द्रव्य देते हो या नहीं और जो कोई तुम्हारा उपकार करता है उसके उपकार को मानकर तुम सत्पुरुषों में उसका सत्कार करते हो या नहीं और तुमने घोड़ा हाथी और रथोंका विधिपूर्वक सेवन लक्षण और व्यवहार आचार्यों से सीखा है या नहीं ११२। १२१ तुम्हारे घरमें धनुर्वेद सूत्र यन्त्र सूत्र और नगर सूत्र

का अच्छीतरह से अभ्यास होता है या नहीं और तुम उन सब अस्त्र, ब्रह्मदण्ड और विषयोगों को जानते हो या नहीं जिनसे शत्रुओं का नाश किया जाताहै और तुम अपने देशको अग्नि सर्प रोग और राक्षसों से रक्षा करते हो या नहीं और अन्धे गूंगे लँगड़े अंगहीन और अबान्धव मनुष्यों का पालन पिता के समान करते हो या नहीं और निद्रा, आलस्य, भय, क्रोध, तंद्रा और दीर्घसूत्रता इन छै दोषों को तुमने छोड़ा है या नहीं वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! युधिष्ठिर नारदजी के उक्त प्रश्नोंको सुनकर दण्डवत् करके बड़ी नम्रता से बोला कि महाराज मैं आपके प्रश्नों के अनुसार आज से सब कर्म किया करूंगा यह कहकर युधिष्ठिर ने वैसाही वर्ताव किया और इस सागररूपी मेखला अर्थात् खाईं रखनेवाली पृथ्वी को विजय किया इसके पीछे नारदजीने फिर कहा कि हे युधिष्ठिर ! जो राजा उक्त रीति से चारों वर्णों की रक्षा करता है वह इस संसार में बड़ा सुख भोग कर इन्द्र की सलोकता को पाता है १२२ । १२६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ५ ॥

छठवां अध्याय।

युधिष्ठिरका नारदजी से यह पूछना कि आपने और भी कोई ऐसी सभा देखी है और नारदजीका ब्रह्मा आदि की सभाओं का वर्णन करना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा युधिष्ठिर नारदजी की आज्ञा पाकर कहनेलगा कि महाराज आपने सब बातें धर्म के अनुसार न्याय सहित ठीक २ कही हैं मैं उनको अपनी शक्ति और बुद्धिबल के अनुसार करता हूं और आपने जो जो कर्म राजाओं के करने के योग्य वर्णन किये हैं उन सब को भी मैंने किया है हां हमारे पुरुषा लोगोंने जो जो कर्म किये हैं और जिस २ राहपर वह चले हैं उन्हीं को हमारी भी करने की इच्छा रहती है परन्तु वह हम से हो नहीं सक्तेहैं वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह कहकर वह बुद्धिमान् युधिष्ठिर उन लोकचर अमितद्युत और देवर्षि नारदजीको विश्रान्त और स्वस्थता से बैठेहुये देखकर और यह जानकर कि यह मुहूर्तभर से अधिक नहीं ठहरसक्ते हैं उनसे पूछने लगा कि महाराज आप इस विश्व के सब लोकों में जिनको ब्रह्माजीने मनुष्यों को उत्पन्न करने के पहले निर्माण किया था मनके वेगके समान घूमा करते हैं भला यह तो कहिये कि आपने

भी किसी लोकमें ऐसी या इससे श्रेष्ठ सभा देखी है यह सुनकर नारदजी अ-चंभे के साथ मधुर बोली से कहनेलगे कि मनुष्य लोक में ऐसी मणिजटित सभा हमने तो न देखी है न आजतक सुनी है परन्तु जो तुम सुनना चाहो तो हम यमराज, वरुण, इन्द्र, कुबेर और ब्रह्माजी की सभाओं का हाल वर्णन करें इनमें ब्रह्माजी की सभा तो अविद्या आदि क्लेशों से रहित, विश्वरूपिणी और दिव्य अर्थात् दैवी और अदिव्य अर्थात् मानुषी अभिप्रायों से युक्त है और देवता, पितृगण, साध्य, यज्ञ करनेवाले, शुद्ध अंतःकरणवाले और ऐसे मुनियों से जिन्होंने बड़ी दक्षिणा सहित वेदयज्ञ कियेहैं सेवित हैं यह सुनकर युधिष्ठिरने अपने भाइयों सहित नारदजी से हाथ जोड़कर कहा कि महाराज हम उक्त सब सभाओंका वृत्तांत विस्तारपूर्वक सुना चाहते हैं कि वह सभायें किन द्रव्यों से बनी हैं और उनकी लम्बाई चौड़ाई कितनी २ है और यह भी वर्णन कीजिये कि उन सभाओं में ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, कुबेर और यमराज की कौन २ सभासद बैठकर सेवा करते हैं यह सुनकर नारदजी बोले कि अच्छा हम उन सब सभाओं का वर्णन क्रमपूर्वक कहते हैं आप सुनिये १ । १६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि षष्ठोऽध्यायः ६ ॥

सातवां अध्याय।

नारदजीका युधिष्ठिर से इन्द्रकी सभाका वर्णन करना ॥

नारदजी बोले हे युधिष्ठिर ! इन्द्रकी सभा दिव्य, प्रकाशमान और कर्मोंसे जीती हुई है और उस सभाको विश्वकर्मारूप आपही इन्द्रने बनाया है वह सभा सौ योजन लंबी डेढ़सौ योजन चौड़ी और पांच योजन ऊंची है और इच्छा के अनुसार जहां चाहे तहां जासक्ती है वहां बुढ़ापा शोक और ग्लानि नहीं व्यापते हैं वहां का स्थान निर्भय शान्त कल्याणकारी और रमणीक है और वहां दिव्य वृक्ष लगे हुयेहैं उस सभा में देवेन्द्र इन्द्र अपनी शची नाम महेन्द्राणी शोभा और लक्ष्मी के साथ बहुत सुन्दर आसनपर विराजमान हैं इन्द्रका शरीर लक्ष्मी कीर्ति और प्रभायुक्त अनिर्देश्य है और वह वहां किरीट मुकुट लाल बाजूबन्द, निर्मल वस्त्र और चित्रमाला धारण किये हुये हैं उस सभा में मरुत, सब गृहमेधी, सिद्ध, देवर्षि, साध्यगण, देवगण और मरुद्-गण सुंदर प्रकाशमान शरीर धारण कियेहुये सुनहरी माला और सुंदर २ वस्त्रों से अलंकृत होकर इन्द्रकी उपासना करते हैं १ । ८ और संपूर्ण देवऋषि

जो निष्पाप और अग्नि की समान प्रकाशमान हैं और सोम यज्ञ करनेवाले पराशर, पर्वत, सावर्णि, गालव, शंखलिखित, गौरशिरा, दुर्वासा, क्रोधन, श्येन, दीर्घतमा, पवित्रपाणि, सावर्णि, याज्ञवल्क्य, भालुक, उद्दालक, श्वेतकेतु, तांड्य, भांडायनि, हविष्मान्, गरिष्ठ, राजा हरिश्चन्द्र, हृद्य, उदरशांडिल्य, पराशर्य, कृषीवल, वातस्कंध, विशाख, विधाता, काल, करालदंत, त्वष्टा, विश्वकर्मा, तुंबुरु ऐसे मुनि जिनका जन्म योनि से हुआहै, वह ऋषि जिनका जन्म योनि से नहीं हुआ है, वायुभक्षी, सहदेव, सुनीथ, वाल्मीक, शमीक, सत्यवाक्, प्रचेता, मेधातिथि, वामदेव, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरुत, मरीचि, स्थाणु, गौतम, कक्षीवान्, तार्क्ष्य, वैश्वानर, कालक, वृक्षीय, आश्रव्य, हिरण्मय, संवर्त्त, देवहव्य, विष्वक्सेन, दिव्यजल, दिव्य ओषधी, श्रद्धा, मेधा, सरस्वती, अर्थ, धर्म, काम, विजली, जल बरसानेवाले मेघ, वायु, पूर्वदिशायज्ञवाह, सत्ताइसों अग्नि, सोमाग्नि, इन्द्राग्नि, मित्र, सविता, अर्यमा, भग, विश्वेदेवा, साध्यगण, बृहस्पति, शुक्र, विश्वावसु, चित्रसेन, सुमनु, तरुण ६।२२ सब यज्ञ सब दक्षिणा ग्रहास्तोम और जितने यज्ञवाह मंत्र हैं सब उस सभा में इन्द्रकी उपासना करते हैं और अप्सरा गन्धर्व नाचने गाने हँसी, स्तुति और अनेक मंगल कर्म कर करके इन्द्र को क्रीड़ा कराया करते हैं और ब्रह्मर्षि राजर्षि और देवर्षि उसके बल और वृत्रासुर को मारने के पराक्रम को कह २ कर इन्द्र को प्रसन्न किया करते हैं वहांपर सब उक्त देवता और ऋषि अग्नि के समान प्रकाशमान विमानों में बैठ बैठकर माला आदि भूषणों से अलंकृत हो होकर आया जाया करते हैं और बृहस्पति शुक्र और अन्य बहुतसे महात्मा, यतव्रत भृगुजी जो ब्रह्मा के समान हैं और सप्तऋषि वहां बने रहते हैं और चन्द्रमा के समान चमकते हुये विमानों में आते जाते हैं हे युधिष्ठिर ! मैंने इन्द्रकी पुष्करमालिनी नाम सभा इस प्रकारकी देखी है अब यमराजकी भी सभाका वर्णन करताहूं २३। ३०॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि सप्तमोऽध्यायः ७॥

आठवां अध्याय।

नारदजी का युधिष्ठिर से यमराज की सभाका वृत्तान्त कहना॥

नारदजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! अब हम तुमसे सूर्य के पुत्र यमराज की सभाका वर्णन करते हैं उस सभाको विश्वकर्मा ने बनाया है और वह तेजोमय

और सौ २ योजन लम्बी और चौड़ी है प्रकाश उस सभाका सूर्य के तुल्य है उसमें न बहुत गर्मी है न सरदी वहां जाने से मन बहुत प्रसन्न होजाताहै और उसमें रहने से न शोक होता है न बुढ़ापा व्यापता है और भूख प्यास कुछ नहीं लगती है और वहाँ के रहनेवालों में दीनता ग्लानि और प्रतिकूलता नहीं होती है उस सभा में सब दैवी और मानुषी पदार्थ और भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य और पेय आदि बड़े २ स्वादिष्ठ खाने के पदार्थ रहते हैं और ऐसे २ वृक्ष लगेहुये हैं कि जिस फलकी इच्छा होवे वही फल उनमें उत्पन्न होजाताहै और ठंढा गरम दोनों प्रकार का जल वहां भरा रहता है उस सभा में यमराज की उपासना बड़े २ ब्रह्मर्षि और राजर्षि किया करते हैं और ययाति, नहुष, पुरु, मांधाता, राजा सोमक, त्रसद्दस्यु, कृतवीर्य, श्रुतश्रवा, अरिष्टनेमि, कृतवेग, कृतिनिमि, प्रतर्दन, शिबि, मत्स्य, पृथुलाक्ष्य, बृहद्रथ, वार्त, मरुत, कुशिक, सांकाश्य, सांकृति, ध्रुव, चतुरश्व, सदस्योर्मि, कार्तवीर्य, भरत, सुरथ, सुनीथ, निशठ, नल, दिवोदास, सुमना, अंबरीष, भागीरथ, व्यश्वसदश्व, बध्यूश्व, पृथुवेग, पृथुश्रवा १ । १ २ पृषदश्व, वसुमना, क्षुपरुंपड्डु, वृषसेन, पुरुकुत्स, ध्वजीरथी, आर्ष्टिषेण, दिलीप, उशीनर, औशीनरि, पुंडरीक, शर्याति, शरभ, शुचि, अंगुरिष्ठ, वेन, दुष्यंत, सृंजय, जय, भांगासुरि, सुनीथ, निषध, वहीनर, करंधम, वाह्लीक, सुद्युम्न, मधु, ऐल, राजा मरुत, कपोतरोमा, तृणक, सहदेव, अर्जुन, व्यश्व, कृशाश्व, शशिबिंदु दशरथ के पुत्र रामचन्द्र, लक्ष्मण, प्रतर्दन, अलर्क, कक्षसेन, गय, गौराश्व, जमदग्निके पुत्र परशुराम, नाभाग, सगर, भूरिद्युम्न, महाश्व, पृथाश्व, जनक, राजा वैन्य, वारिसेन, पुरुजित, जनमेजय, ब्रह्मदत्त, त्रिगर्त, राजा उपरिचर, इन्द्रद्युम्न, भीमजानु, गौरपृष्ठनल, गयपदम, मुचुकुंद, भूरिद्युम्न, प्रसेनजित, अरिष्टनेमि, सुद्युम्न, पृथुलाश्व, अष्टक, मत्स्य नाम के सौ राजा, नीप नामके सौ राजा, हय नाम के सौ राजा, धृतराष्ट्र नाम के सौ राजा, जनमेजय नामके अस्सी राजा, ब्रह्मदत्त नामके सौ राजा, इरिण नाम के सौ राजा, भीष्म नामके दोसौसे अधिक राजा, भीम नामके सौ राजा, प्रतिविंध्य नाम के सौ राजा, नाग नाम के सौ राजा, हय नाम के सौ राजा, पलाश नामके सौ और कास और कुश आदि नामों के सौ २ दिव्य मनुष्य और तुम्हारे पिता राजा शांतनु, उपंगव, शतरथ, देवराज, जयद्रथ, वृषदर्भ, शशिबिंदु और अन्य सहस्रों राजा लोग जो

अश्वमेध आदिक बड़े २ यज्ञ करके वहां गये हैं सब उसी सभा में यमराज की उपासना किया करते हैं १३।२७ और अगस्त्य मतंग काल मृत्यु यज्ञ करने वाले सिद्ध और योगी और २ शास्त्र जाननेवाले और पुण्यवान् राजऋषि लोग और अग्निष्वात्ता फेनप उष्माप बर्हिषद और २ मूर्तिमान् पितृगण और कालचक्र अग्नि और वे मनुष्य जो पापकर्म करके और दक्षिणायन सूर्य में मरे हैं और काल के नयन में युक्त हैं, शिंशिप, पालाश, काश, कुश और २ सहस्रों सभासद हैं जिनके नाम असंख्य होने के कारण से वर्णन नहीं किये जासक्ते हैं हे युधिष्ठिर! यह सभा भी बड़ी रम्य और चलायमान है विश्वकर्मा ने बहुत दिनों तक तप करके इसको बनाया है ज्वाला और प्रकाश उसमें स्वतः है और उस सभा में उग्र तपस्वी सुन्दर व्रती और सत्यवादी शांत संन्यासी पुण्य कर्मों के करनेवाले और शुद्ध मनुष्य दिव्य देह धारण करके और उजले २ वस्त्र बाजूबन्द जड़ाऊ माला और ज्वलित कुण्डल आदि से भूषित हो होकर जाते हैं वहां गन्धर्व और अप्सराओं के गण नृत्य गीत हास्य और रहस्य किया करते हैं और सुगन्ध और दिव्यमाला चारों ओर रहती हैं इसप्रकार से हे युधिष्ठिर! एक कोटि धर्मात्मा लोग यमराज की उपासना उस सभा में किया करते हैं यह हमने यमराज की सभा का वृत्तान्त कहा अब वरुण की सभा का हाल भी सुनिये २८। ४१॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि अष्टमोऽध्यायः ८॥

नवां अध्याय।

नारदजी का युधिष्ठिर से वरुण की सभा का हाल वर्णन करना॥

नारदजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! वरुण की सभा बड़ी दिव्य प्रभा युक्त और प्रमाण में यमराज की सभा के तुल्य है इसको वरुण ने आप जल के बीचमें बनाया है उसमें अनेक २ प्रकार के रत्न जड़े हैं और फल फूल के सदैव देनेवाले वृक्ष लगाये हैं यह सभा नीले पीले काले सपेद और लाल अवतानों और मंजरी जाल धारी गुल्मों से बद्ध हैं और उसमें सहस्रों पक्षी मधुर बोली बोलनेवाले और दिव्य स्वरूपधारी जहां तहां बैठे रहते हैं उसके स्पर्शमात्र से सुख होता है और उसमें रहने से जाड़ा गरमी कुछ नहीं मालूम होते हैं उस सभा का वर्ण श्वेत है और उसमें बहुत श्रेष्ठ २ आसन बिछे हुये हैं वरुण देवजी उसमें माध्वी वरुणानी सहित उत्तम वस्त्र और आभ-

रण पहिरे हुये बैठते हैं और वासुकि तक्षक ऐरावत कृष्ण लोहित पद्म चित्र केवल अश्वतर धृतराष्ट्र बलाहक मणिमान कुंडधार कर्कोटक धनंजय अणिमान कुण्डधार प्रह्लाद मूषिकाद और जनमेजय आदि सब ध्वजा मण्डल और फनधारी सर्प और अदिति के सब पुत्र सुन्दर माला और दिव्य सुगन्धित चन्दन लगाये हुये उस सभा में वरुण की उपासना करते हैं और विरोचन का पुत्र राजा बलि नरक पृथिवी जय संह्लाद विप्रचित्त कालखञ्ज नाम के दानव सुहनु दुर्मुख शंख सुनाम सुमति घटोदर महापार्श्व क्रथनपिठर विश्वरूप स्वरूप विरूप महाशिरा दशग्रीव बाली मेघवासा दशावर टिट्टिभ विटभूत संह्लाद इन्द्रतापन और दैत्य जो कुण्डल माला और मुकुट धारण किये हुये हैं और बड़े शूरवीर मृत्यु से मुक्त बड़े व्रती और वरदान पाये हुये उस सभा में वरुण के समीप बैठकर उसकी सेवा किया करते हैं और चारों समुद्र और गङ्गा कालिंदी विदिशा वेण्या नर्मदा वेगवाहिनी विपासा शतद्रू चन्द्रभागा सरस्वती इरावती वितस्ता सिंधु देवनद गोदावरी कृष्णवेगा कावेरी किंपुना विशल्या वैतरणी तृतीया ज्येष्ठला शोणभद्र चर्मण्वती पर्णाशा महानदी सरयू वारवत्या लांगली सरिद्वरा करतोया आत्रेयी लौहित्य नाम महानद लंघती गोमती संध्या त्रिस्रोतसी और २ नदियां और तीर्थ और तालाब कूप झरना तड़ाग दिशा पृथ्वी सब पहाड़ और सब जलचर जीव अपने २ दिव्य स्वरूपों को धारण किये हुये वरुण की सभा में बैठकर वरुण की उपासना किया करते हैं और अप्सरा और गन्धर्वों के गण नाचते गाते और वरुण की स्तुति किया करते हैं और बड़े २ रत्न उत्पन्न करनेवाले पहाड़ अपना स्वरूप धारण किये हुये बड़ी मधुर कथा सुनाया करते हैं और वरुण का सुनाभ नाम मंत्री जिसका नाम गो और पुष्कर है अपने पुत्र पौत्रों सहित वहां रहकर वरुण की उपासना करता है हे युधिष्ठिर ! हमने वरुण की सभा इस प्रकार की देखी है अब तुम कुबेर की सभा का वृत्तान्त सुनो १। ३०॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि नवमोऽध्यायः ९॥

दशवां अध्याय।

नारदजी का युधिष्ठिर से कुबेर की सभा का वृत्तांत वर्णन करना॥

नारदजी बोले हे राजा युधिष्ठिर ! कुबेर की सभा सौ योजन लंबी और सत्तर योजन चौड़ी है और वर्ण उसका श्वेत है कुबेर ने उस सभा को तपस्या से पाया

है उसकी प्रभा के सामने चन्द्रमा की प्रभा अस्त होजाती है और उँचाई उस सभा की कैलास के शिखर की समान है वह सभा गुह्यकों से रुह्यमान है और उसमें ऊंचे २ सुनहरे महल बने हुये हैं और चारों ओर रत्न जड़रहे हैं और नानाप्रकार की सुगन्ध वहां उड़ा करती है वह सभा श्वेत बादलों के समान चलती हुई जान पड़ती है और बिजली के समान चमकते हुये दिव्य सुनहरे रंगों से अत्यन्त शोभायमानहै उस सभा में कुबेर दिव्य आभरण और वस्त्रों से अलंकृत होकर कुंडल धारण किये हुये सहस्रों स्त्रियों सहित बड़े दिव्य आसन पर जिसमें पैर रखने का उपधानभी बनाहुआहै बैठाकरते हैंउस सभामें शीतल और मनको आनन्द देनेवाली वायु मंदार आदि सुगन्ध देनेवाले वनों और अलका नाम नलिनी और नंदन वनकी सुगन्धको लियेहुये चला करती है और वहां अप्सरा और गन्धर्वों के गण देवताओं सहित दिव्य तानों से गाया करते हैं १।६ और मिश्रकेशी, रंभा, चित्रसेना, शुचिस्मिता, चारुनेत्रा, घृताची, मेनका, पुंजिकस्थला, विश्वाची, सहजन्या, प्रम्लोचा, उर्वशी, इरा, वर्गा, सौरभेयी, समीची, बुद्बुदलता और २ सहस्रों अप्सरा और गंधर्वोंके गण जो नाचने गाने और बजाने में बड़े चतुरहैं वहां बनेरहते हैं और गाते बजाते रहते हैं और किन्नर, नर, मणिभद्र, श्वेतभद्र, गुह्यक, कशेरक, गंडकंडु, प्रद्योत, कुस्तुंबुरु, पिशाचा, गजकर्ण, विशालक, वराहकर्ण, ताम्रौष्ठ, फलकक्ष, फलोदक, हंसचूड़, शिखावर्त्त, हेमनेत्र, विभीषण, पुष्पानन, पिंगलक, शोणितोद, प्रवालक, वृक्षवास्य, निकेत, चीरवासा और लाखों गंधर्व, लक्ष्मी नलकूबर में और मुझसे और २ पुरुष ब्रह्मर्षि देवर्षि और क्रव्यादि सब वहां रहकर कुबेरकी उपासना किया करते हैं श्रीउमापति महादेवजी जो उग्र धनुष और शूल के धारण करनेवाले और त्र्यंबक हैं पार्वती और विकट क्षतजाक्ष, बड़ा शब्द करनेवाले मेदा मांस के खानेवाले भयानक और अस्त्र शस्त्र लियेहुये भूतोंसहित उस अपने मित्र कुबेरकी सभा में उसके समीप रहते हैं १०।२४ और विश्वावसु, हाहा, हूहू, तुंबुरु, पर्वत, शैलूष, चित्रसेन, गीतज्ञ, चित्ररथ और २ सैकड़ों गंधर्वों के पति और विद्याधरोंका राजा चक्रधर्मा अपने छोटे भाइयों सहित और सैकड़ों किन्नर और भगदत्त आदि राजा और किंपुरुषों का ईश्वर तुम और राक्षसों का राजा और महेन्द्र गन्धमादन, हिमवान्, पारियात्र, विन्ध्य, कैलास, मंदिर, मलय, दर्दुर, महेन्द्र, गन्धमादन,

इन्द्रकील, सुनाभ और सुमेरु आदि सम्पूर्ण पर्वत यक्ष गन्धर्व और निशाचरों सहित कुबेरका भाई विभीषण और नंदीश्वर महाकाल और शंकुकर्ण आदि दिव्य पार्षद और काष्ठ, कुटीमुख, दंती, विजया, तपोधिका, श्वेत वृषभ, राक्षस और पिशाच सदा कुबेर की उपासना किया करते हैं वह कुबेर इन सब उक्त पार्षदों सहित देवदेवेश और त्रैलोक्यभावन महादेवजी के पास नित्य जाकर प्रणाम करता है और उनकी आज्ञा पाकर उनके निकट बैठजाता है और कभी २ शिवजी भी सखाभाव से कुबेरकी सभा में जा बैठते हैं और मुख्य २ समुद्र शंख पद्मआदि सब निधियों को लेकर कुबेर की उपासना किया करते हैं हे युधिष्ठिर ! हमने अन्तरिक्ष में कुबेर की इसप्रकार की सभा देखी है अब हम ब्रह्माजीकी सभाका वृत्तान्त कहते हैं २५ । ४० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि दशमोऽध्यायः १० ॥

ग्यारहवां अध्याय ।

नारदजीका युधिष्ठिर से ब्रह्माजीकी सभाका वृत्तान्त वर्णन करना ॥

नारदजी बोले हे युधिष्ठिर ! ब्रह्माजीकी सभाका स्वरूप मुझसे वर्णन नहीं होसक्ता है पहिले एक समय सतयुग में श्रीसूर्य देवता ब्रह्माजीकी सभा को देखनेके लिये स्वर्ग से पृथ्वीपर आये थे और उन्होंने उस सभाको मनुष्यरूप धरके पूरा २ देखा था और मुझसे उसका वृत्तान्त कहा था उसके दिव्य अप्रमेय और मानसी प्रभाव रखने के कारण से उसका वर्णन नहीं होसक्ता है मैंने उस सभाके गुणोंको सुनकर उसके देखने की इच्छा से सूर्य से कहा कि महाराज मैं भी ब्रह्माजीकी सभाको देखना चाहताहूं ऐसा कौन सा तप और कर्म कियाजावे जिससे मैं उस सभा को देखसकूं और जो कोई दिव्य औषधी या और कोई पदार्थ ऐसा होवे जिससे मैं उस सभाको देखसकूं तो वह भी कहिये यह सुनकर सूर्य ने मुझसे कहा कि तू सावधान और शुद्ध अन्तःकरण से सहस्र वर्षतक ब्रह्मव्रत कर यह सुनकर मैंने उस महाव्रतको हिमालय की पृष्ठपर आरम्भ किया और उसके समाप्त होनेपर सूर्य मुझको आप अपने साथ ब्रह्माजीकी सभामें लिवालेगये १ । १० मैंने उसको जाकर देखा परन्तु मेरी सामर्थ्य उसके स्वरूप को वर्णन करने की नहीं है क्योंकि वह सभा तो क्षण भरमें ऐसा दूसरा स्वरूप धारण करलेती है कि उसका भी वर्णन नहीं होसक्ता है मैं उसके परिमाण और स्थान को भी नहीं कहसक्ताहूं मैंने तो ऐसा

स्वरूप पहिले कभी नहीं देखा था उस सभा में जानेवाले का मन सदैव प्रसन्न रहता है शीत और गरमी वहां नहीं सताती है और भूख प्यास और ग्लानि भी नहीं होती है वह सभा नाना प्रकार की अत्यन्त प्रकाशित मणियों की बनी है उसमें खम्भे आदि कुछ नहीं हैं और वह नित्य है उसका नाश कभी नहीं होताहै वह सभा स्वयं प्रकाशित स्वर्ग के ऊपर है और उसकी प्रभाके सामने सूर्य चन्द्रमा और अग्नि का प्रकाश अस्त होजाता है उस सभा में सब सामर्थ्य रखनेवाले और अपनी दैवीमाया से सम्पूर्ण लोकों को धारण करनेवाले ब्रह्माजी बैठा करते हैं और सब प्रजापति अर्थात् दक्ष, प्रचेत, पुलह, मरीचि, कश्यप, भृगु, वशिष्ठ, गौतम, अंगिरा, पुलस्त्य, क्रतु, प्रह्लाद, कर्दम, अथर्वांगिरस, वालखिल्य, मनअंतरिक्ष, विद्या, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, प्रकृति और सृष्टिके कारण अगस्त्य, मार्कण्डेय, जगदग्नि, भरद्वाज, संवर्त्त, च्यवन, दुर्वासा, ऋष्यशृंग, सनत्कुमार, असित, देवल, तत्त्वज्ञाता जैगीषव्य, ऋषभ, जितशत्रु महावीर्य, मणि ११ । २४ आयुर्वेद अपने आठों अंगों सहित देह धारण किये हुये, नक्षत्रों सहित चन्द्रमा सूर्य, उञ्चासों वायु, सम्पूर्ण यज्ञ, संकल्प और प्राण मूर्तिमान, अर्थ, धर्म, काम, हर्ष, द्वेष, तप, दम, गन्धर्व और अप्सराओं के गण, सत्ताईस नक्षत्र, लोक-पाल इन्द्र, बृहस्पति, बुध, मंगल, शनैश्चर, राहु और २ ग्रह, मंत्र, रथन्तर, हरिमाण, वसुमान, सब देवता, मरुत्, विश्वकर्मा, अष्टवसु, सब पितृगण, सब हविष, ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सब शास्त्र, इतिहास, उप-वेद यथा आयुर्वेद, धनुर्वेद, वेदों के सब अंग, ग्रह, यज्ञ, सोम, सावित्री, दुर्ग-तरणी, सात प्रकारकी वाणी अर्थात् प्रणव जिसमें अकार उकार मकार अर्द्ध-मात्रा नाद बिंदु और शक्ति ये सात प्रकार हैं, मेधा, धृति, श्रुति, प्रज्ञा, बुद्धि, यश, क्षमा, सामवेदकी स्तुतियां, सब शास्त्र, नानाप्रकार की गाथा तर्कयुक्त भाष्य ये सब देह धारण किये हुये नाना प्रकार के नाटक, काव्य और कथा आदिक जो बड़े मनुष्योंकी मान्य हैं क्षण, लव, मुहूर्त्त, दिन, रात्रि, अर्द्धमास, षट्ऋतु २५ । २७ प्रभव आदि साठि संवत्सर, पंचयुग, मानुष, पित्र्य, दैव और ब्राह्म चारों प्रकार के अहोरात्र, कालचक्र, जो नित्य अव्यय और अक्षय हैं, धर्मचक्र, अदिति, दिति, दमसुरसा, विनता, इरा, कालिका, सुरभी, सरमा, गोमती, माधा, कद्रू, रुद्राणी, लक्ष्मी, भद्रा, षष्ठी, परा, पृथ्वी, गांगता, ह्रीः,

स्वाहा, कीर्ति, सुरादेवी, शची, पुष्टि, अरुंधती, संवृत्ति, आशा, नियति, सृष्टि-देवी, रति, बारह सूर्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, ४९ मरुत, दोनों अश्विनीकुमार, विश्वेदेवा, साध्यगण, मन के तुल्य वेग रखनेवाले पितर, पितरों के सात गण जिनमें चार मूर्तिमान, और ३ विना शरीर के हैं अर्थात् अग्निष्वात्ता, वैराज-गार्हपत्य, सोमय, एकशृंग, चतुर्वेद और कला जो चारों वर्णों के मनुष्यों में पूजे जाते हैं, राक्षस पिशाच, दानव, गुह्यक, नाग, सुपर्ण, पशु, स्थावर जंगम और २ महाभूत पुरंदर, वरुण, कुबेर, यमराज, महादेवजी, महासेन, नारायण, देवर्षि, बालखिल्य, योनि से उत्पन्न हुये और विना योनिसे उत्पन्न हुये, त्रिलोकी के सब जड़ चैतन्य, अट्ठासीसहस्र उर्ध्वरेता ऋषि, पचास प्रजावान् ऋषि और २ सम्पूर्ण देवता आदि जो कुछ तीनों लोक में हैं सब वहां आकर ब्रह्माजी की उपासना करते हैं और ब्रह्माजी को प्रणाम कर २ के चले जाते हैं और ब्रह्माजी उन सब देवता, दैत्य, ब्राह्मण, यक्ष, सुपर्ण, कालेय, गन्धर्व और अप्सराओं से यथायोग्य मिलते हैं और उनको बैठाकर अर्थ संभोगों से युक्त करते हैं और वह सभा उन सब देवता और ब्रह्मर्षियों के बैठने और लक्ष्मी से दीप्यमान होने के कारण से अत्यन्त सुशोभित होजाती है हे युधिष्ठिर ! हमने उस दुर्लभ सभा को देखा है मनुष्यों में ऐसीही दुर्लभ यह तुम्हारी सभा है देवलोक में उस सभासे उत्तम और मनुष्यलोक में इस तुम्हारी सभासे उत्तम सभा नहीं है ३८ । ६२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि एकादशोऽध्यायः ११ ॥

बारहवां अध्याय ।

नारदजीका युधिष्ठिर से हरिश्चन्द्र राजाका वृत्तान्त कहना और राजसूय यज्ञ करने का उपदेश करना ॥

उक्त कथाको सुनकर युधिष्ठिर ने कहा कि हे नारदजी ! आप वक्ताओं में सबसे श्रेष्ठ हैं आपने यमराज की सभा में बहुधा राजा लोगों का रहना और वरुण की सभा में नाग, दैत्येन्द्र, नदियां और समुद्रों का होना और कुबेर की सभा में यक्ष, गुह्यक, राक्षस, गंधर्व, अप्सरा और शिवजी का बैठना और ब्रह्माजी की सभामें महर्षि, सब देवता और सब शास्त्रोंका उपासना करना और इन्द्र की सभामें देवता, गंधर्व और नानाप्रकार के महर्षियों का सेवा करना वर्णन किया है परंतु इन्द्र की सभामें राजर्षियों में से केवल

एक राजा हरिश्चन्द्र का ही होना कहाहै इससे मैं पूछता हूं कि उस राजाने ऐसा क्या कर्म अथवा तप किया था जिसके कारण से वह इन्द्र की बराबर बैठता है और यह भी कहिये कि आपने वहां मेरे पिता राजा पांडुको भी देखा था या नहीं यदि उससे आपका मिलाप हुआ हो तो यह कहिये कि आपसे उससे क्योंकर मिलाप हुआ और उसने कुछ कहला तो नहीं भेजाहै यह सुन कर नारदजी बोले कि पहिले मैं तुमसे राजा हरिश्चन्द्र का माहात्म्य कहता हूं राजा हरिश्चन्द्र बड़ा बलवान् और सब राजाओं का सम्राट् था और सब राजा उसकी आज्ञा में रहते थे १ । ११ उसने सुवर्ण से भूषित रथपर चढ़के शस्त्र के प्रताप से जंबू, कुश, शाक, क्रौंच, शाल्मलि, गोमेद और पुष्कर आदि सातों द्वीपों को जीता था इस प्रकार से सब पृथ्वी को पहाड़ और वनों सहित जीतकर उसने राजसूय यज्ञ रचा था उस यज्ञमें सब राजा लोग धन ले ले कर उसके पास आये थे और ब्राह्मणों को भोजन कराने पर नियत किये गये थे राजा हरिश्चन्द्रने याचकों को उनके मांगने से पांच २ गुणा धन दिया था और अग्नि के विसर्जन होनेपर उसने देश २ से आये हुये ब्राह्मणोंको नाना प्रकार के धन दे दे कर तृप्त किया था उन ब्राह्मणों ने राजा के दियेहुये भोजन द्रव्य और नाना प्रकार के रत्नों से तृप्त होकर राजाको आशीर्वाद दिये थे इस कारण से राजसूय यज्ञ करनेपर राजा हरिश्चन्द्र दूसरे राजाओं से अधिक तेजस्वी और यशस्वी होगया था और इसी कारण से वह सहस्रों स्वर्गवासी राजाओं से अधिक पदवी को पहुँचा है राजसूय यज्ञ करने के पीछे राजा हरिश्चन्द्रने साम्राज्य पदवी पाई इसी प्रकार से जो दूसरा राजा भी राजसूय यज्ञ करेगा वह भी इन्द्रके साथ आनन्द करेगा और जो मनुष्य संग्राम में भागता नहीं है वहीं सम्मुख लड़कर मरजाता है उसको भी वही लोक प्राप्त होता है और जो अपने शरीर को तपस्या करके त्याग करते हैं उनको भी वही गति मिलती है १२ । २२ हे युधिष्ठिर ! तुम्हारे पिता राजा पांडुभी हमको मिले थे और उन्होंने हमको नरलोक में आते हुये जानकर राजा हरिश्चन्द्र के विभवको देखकर हमसे कहा था कि जो आप नरलोक में जाइये तो हमारे पुत्र युधिष्ठिर से कहना कि वह सब पृथ्वी को जीत सक्ता है और भाई उसके आज्ञाकारी हैं इससे वह भी राजसूय यज्ञ करे उसके राजसूय यज्ञ करने से हम को भी राजा हरिश्चन्द्रके सदृश इन्द्रलोक में रहनेको वास मिलेगा यह सुनकर

हमने राजा पांडुसे कहा कि बहुत श्रेष्ठ ऐसाही होगा जब हम नरलोकमें जा-यँगे तब युधिष्ठिर से राजसूय यज्ञ करने को कहेंगे इससे हे युधिष्ठिर तू अपने पिताके कहनेके अनुसार राजसूय यज्ञ कर उसके करने से तुमको भी इन्द्रलोक मिलेगा और तुम वहां अपने पुरुषाओं के साथ रहोगे यह यज्ञ बहुत बड़ा है इसमें विघ्न भी बहुतसे होते हैं और यज्ञ के नाश करनेवाले ब्रह्मराक्षस यज्ञ में छिद्र ढूंढ़ा करते हैं और क्षत्रीकुलका नाशक और पृथ्वीका क्षय करने वाला युद्ध होता है और इसमें कोई२ कारण ऐसा भी होजाता है जो क्षयका करने वाला होता है इससे हे युधिष्ठिर! तुम चारोंवर्ण की रक्षा सावधानी से करते हो विचारकर जैसा उचित जानो तैसा करो और मुझको अब आज्ञा दो मैं द्वारका-पुरी जाना चाहता हूं परमेश्वर करे तुम ऐश्वर्यवान् हो वृद्धि पाओ आनन्द करो और ब्राह्मणों को धन से तृप्त करो २३। ३२ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! नारदजी पांडवों से बिदा होकर उन ऋषियों सहित जिनके साथ आये थे चले गये और युधिष्ठिर अपने भाइयों से राजसूय यज्ञ करनेकी सलाह करने लगा ३३। ३४॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि द्वादशोऽध्यायः १२॥

तेरहवां अध्याय।

युधिष्ठिरका धर्म से राज्य प्रबन्ध करना और अपने भाई सम्बन्धी ऋषि और श्रीकृष्णजी से राजसूय यज्ञ करने की सलाह करना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! नारदजी के चले जाने पर राजा युधिष्ठिर श्वास ले ले कर राजसूय यज्ञ करने का विचार करनेलगा और महात्मा राजर्षियों का माहात्म्य और यज्ञद्वारा उनको अच्छे लोक मिलना और उन सबमें हरिश्चन्द्रका विशेष वैभव होना सुनकर उसनेभी यज्ञ करनेकी इच्छाकी और उसीके विचारमें वह बेचैन रहनेलगा इसके पीछे युधिष्ठिरने अ-पने सभासद राजा आदिकों का आदर सत्कार करके और उन सबसे आपभी पूज्यमान होकर राजसूय यज्ञ करनेके लिये तैयारी करनेका दृढ़ निश्चय किया और धर्म करने की चिंता करने में यह विचार करनेलगा कि ऐसा क्या काम कियाजावे जिससे सब लोकोंका हित होवे और अपनी प्रजापर अनुग्रह करके उनके हितकी यह बात कहने लगा कि सबको जो वस्तु जिसके योग्य हो देना चाहिये क्योंकि धर्म सबसे श्रेष्ठहै युधिष्ठिर के इसप्रकारसे विचारने पर सब

प्रजा उसको पिताके समान माननेलगी और युधिष्ठिर के परिग्रह भीमसेन के प्रजापालन अर्जुन के शत्रुनाश करने सहदेवके धर्म शासन करने और नकुल के नम्रस्वभाव होने से उनका संपूर्ण देश कलहरहित निर्भय और धर्ममें निरत होगया १ । ११ वर्षा सब राज्य में इच्छानुसार होनेलगी और व्याज की जीविका यज्ञों की सामर्थ्य, गोकी रक्षा और बनियोंके व्यापारने बड़ी वृद्धि पाई राज्य का प्रबंध अच्छीतरहसे होनेलगा दरिद्रियोंसे पिछले वर्षका कर मांगना और प्रजा को पीड़ा देना और प्रजापर कर बढ़ाना बंद करदियागया सब प्रजा रोग और अग्नि के भय से विमुक्त होगई युधिष्ठिर के इस प्रकार से धर्मयुक्त होनेपर चोर और ठगोंकी पीड़ा और परस्पर मृषाकर्म करना फिर सुनने में नहीं आया राजालोग युधिष्ठिर को प्रसन्न करने उसके पास बैठने वार्षिक कर देने और संधिविग्रह आदि छै गुणों में व्यापारियों के तुल्य होगये और उसके राज्यकी बड़ी वृद्धि हुई राजा युधिष्ठिर जिस २ देश का अधिकारी होता था उस २ देश के राजाओं में पितृगुण अर्थात् नीति शिक्षा और मातृगुण अर्थात् वात्सल्यता आदि गुण होजाते थे इस कारण से गोपाल से लेकर ब्राह्मणों तक सब प्रजा युधिष्ठिर से बड़ी प्रीति मानने लगी वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इस प्रकार से राज्यप्रबन्ध होने पर युधिष्ठिर ने एक दिन सब मंत्री और भाइयों से राजसूय यज्ञ करने की सलाह पूछी उसकी बातको सुनकर मंत्रियों ने कहा कि जिसप्रकारसे राजसूय यज्ञकरके वरुणने सब जलको जीतकर साम्राज्य पदवी पाई थी उसी प्रकार से राजा भी सब पृथ्वी को जीतकर सम्राट् होने की इच्छा करताहै सो आपकोभी आपके सब सुहृद् सम्राट् होनेके योग्य जानकर राजसूय यज्ञ करने के योग्य समझते हैं १२ । २२ क्षत्रियों की सत्रसंपत्ति आपके वश में है इससे आप उस यज्ञ को कीजिये जिसमें ब्राह्मणलोग छै अग्नि स्थापन करते हैं और राजा प्रथम दर्वीहोम करके फिर सब यज्ञों को करता है और यज्ञ के अंत में सब को जीतने के कारण से राजा का अभिषेक होता है आप समर्थ हैं और हम सब आपके आज्ञाकारी हैं आप तो थोड़ेही समय में यज्ञ कर सकेंगे इसके पीछे सब सुहृदों ने भी युधिष्ठिर से कहा कि आप राजसूय यज्ञ कीजिये उन सबकी बातको सुनकर युधिष्ठिर ने उस यज्ञ के करने का निश्चय विचार करने को अपने भाई मन्त्री और ऋत्विजों सहित धौम्य और व्यास आदि ऋषियों को बुलाकर मन्त्र किया और उनसे कहा कि मेरी इच्छा सम्राट्

के योग्य राजसूय यज्ञ करने की है इससे आप लोगों से पूछता हूं मेरी वह इच्छा क्योंकर पूरी होवै यह सुनकर उन सब ऋषियोंने कहा आप राजसूय यज्ञ करने के योग्य हैं कीजिये इसपर उसके मन्त्री और भाइयों ने भी सम्मत दिया परंतु युधिष्ठिर लोक के हित करने की इच्छा से अपनी सामर्थ्य, धन का संचय, देश और व्यतीत और आनेवाले काल को विचारने लगा क्योंकि जो राजा इन बातों का पहिले से विचार करलेता है उसको दुःख कभी नहीं होता है और यह सोचकर कि अपने ही मन्त्र से यज्ञ करना ठीक नहीं है उस काम के करने का निश्चय करने के लिये उसने श्रीकृष्ण जी को सबसे श्रेष्ठ जगत्कर्त्ता जगन्मय जगदीश और योग्य जानकर उनका ध्यान किया और इन्द्रसेन नाम दूत को उनके बुलाने के लिये द्वारकापुरी को भेजा वह दूत जल्दी चलनेवाले रथ में बैठ कर शीघ्र द्वारकापुरी में पहुँचा और श्रीकृष्ण जी को वन्दना करके उन्हें युधिष्ठिर का संदेशा सुना दिया श्रीकृष्ण जी युधिष्ठिर को अपना दर्शनोत्सुक जान कर द्वारका से उस दूत को साथ लिये हुये चलदिये और अनेक देशों को नांघते हुये इन्द्रप्रस्थ में शीघ्र जा पहुँचे युधिष्ठिर और भीमसेन ने उनका पूजन किया और अर्जुन नकुल और सहदेव ने उनकी उपासना गुरु के तुल्य की और जब वह अपनी फूफी कुन्ती से मिलकर कुछ देर विश्राम करचुके तब युधिष्ठिर उनके पास जाकर अपना प्रयोजन कहनेलगे २३।४५ कि हे श्रीकृष्णजी! मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूँ उसके करने के लिये जो जो बातें होनी चाहियें उन सब को आप जानते हैं अर्थात् राजसूय यज्ञ वही मनुष्य करसक्ता है जो सब राजाओं का स्वामी हो और जिसकी सब जगह मानता हो हमारे सुहृद्लोग तो हमको राजसूय यज्ञ करने के योग्य बताते हैं परन्तु मैं अपनी योग्यता और अयोग्यता को आपके मुखसे सुना चाहता हूं क्योंकि ये सब लोग तो कोई संबंध कोई स्वार्थ कोई किसी प्रयोजन और कोई २ स्नेह के कारण से दोष को नहीं बताते हैं जैसे हम कहते हैं वैसाही सब सम्मत दे देते हैं आप इन सब बातों और काम क्रोध को छोड़कर जो बात श्रेष्ठ और करने के योग्य हो उसे कहिये ४६।५१॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः १३॥

चौदहवां अध्याय ।

श्रीकृष्णजी का युधिष्ठिर से राजसूय यज्ञ करने के लिये पहिले जरासंध राजा के मारने का उपदेश करना ॥

युधिष्ठिर की उक्त बात को सुनकर श्रीकृष्णजी बोले कि तुम सब प्रकार से राजसूय यज्ञ करने के योग्य हो और सब बातों को जानते हो परन्तु मैं कुछ विशेष कहता हूं जिस समय परशुरामजी ने क्षत्रियों का नाश किया था उस समय जो क्षत्री लोग भाग गये थे और परशुराम जी ने नहीं मारे थे उनसे यह क्षत्रीवंश फिर से हुआ है और उनकी बढ़ोतरी होने पर सब ने संकल्प किया था कि हम में से जो क्षत्री सबको जीतलेवै वह सम्राट् होवै हम जानते हैं कि पुराने लोगों से तुमने भी यह सुना होगा सब क्षत्री लोग इला और इक्ष्वाकु वंशकी प्रकृति को मानते हैं अर्थात् इला के पुत्र पुरूरवा आदि जिनसे चन्द्रवंश हुआ और इक्ष्वाकु के पुत्र नाभागआदि जिनसे सूर्यवंश चला है दोनों की यही प्रकृति थी कि वे लोग सब राजाओंको जीत २ कर साम्राज्य पदवीको पहुँचेथे इन्हीं दोनों वंश के राजा लोग कुलीन गिने जाते हैं और ययाति वंश में भोजकी संतान अपने गुणों से यहां तक बढ़ी कि चारों दिशाओं में फैलगई और सब राजा उनकी उपासना करने लगे परन्तु अब आजकल राजा जरासंध उन सब राजाओं की लक्ष्मी को तिरस्कार करके अपने बलसे उन सबको जीतकर उनके मस्तक पर स्थित अर्थात् सम्राट् होरहा है वह सब प्रकार से समर्थ है जगत् उसके वशमें होरहा है और वह सम्राट् होनेवाला है देखो राजा शिशुपाल सब प्रकार से उसके आधीन रहकर उसका सेनापति होगया है और शिष्य की तरह उसके पास बना रहता है और करूप करभ और मेघवाहन देशों का राजा दंतवक्र जो मस्तक पर दिव्य मणि धारण करने से अद्भुतमणि भी विख्यात है और बड़ा पराक्रमी और माया से लड़ने वाला है और हंस और डिभकनामी दोनों बड़े पराक्रमी राजा जरासंध के आधीन रहते हैं और मुरु नामी यमनों का राजा जो पश्चिम दिशा में वरुण के समान बलवान् है और राजा भगदत्त जो राजा पांडुका मित्र है और हमसे पिता की तुल्य प्रीति मानता है और पश्चिम दिशा में पृथ्वी के दक्षिण देश के अंत तक का राजा है दोनों जरासंध के वश में रहते हैं तुमसे हित मानने वाला उस दिशा में केवल कुंतिभोज नाम तुम्हारा मामा है और चन्देरी देशका राजा पुरुपोत्तम जो अपनी दुर्बुद्धिसे अपने को पुरुपोत्तम मान-

कर मेरे चिह्न अर्थात् शंख चक्र आदि को धारण करता है राजा जरासंध का आज्ञाकारी है मैंने पहले इसको मारते २ छोड़ दिया था और बंग और पुंड्र देशों का राजा पौंड्रक वासुदेव और भोजवंशी राजा भीष्मक जो बड़ा बली और इन्द्रका मित्र है और जिसने अपनी विद्या के बल से पांड्य, क्रथ और कैशिकदेशोंको जय किया था दोनों जरासंध के भक्त होरहे हैं राजा भीष्मकका भाई आकृति नामी परशुरामजी के समान शूरवीर था अब वह अपने कुलकी शूरता को भूलकर जरासंधके वशमें होरहा है और हम सब अपने संबन्धियों से द्वेषभाव रखकर हमारा बुरा चीता करता है यद्यपि हम सब सम्बन्धी उसका प्रिय करते रहते हैं १। २४ और राजा भोज के वंश के अठारह कुल जो उत्तर दिशा में राज्य करते थे जरासन्ध के भय से अब पश्चिम दिशा को भाग गये हैं और शूरसेन, भद्रकार, बोध, शाल्व, पटच्चर, सुस्थल, सुकुट्ट, कुलिंद, कुन्ति, शाल्वायन, कोशल जो पांचाल और कुन्तिदेशोंका अधिपति था मत्स्य और सन्यस्तपाद आदि राजा भी उसीके डरसे उत्तर दिशाको छोड़ २ कर दक्षिण दिशा को चलेगये हैं और पांचाल देश के सब राजा लोग भी जरासंध के डरसे अपने २ देशों को छोड़कर जहां तहां भाग गये हैं राजा उग्रसेन के कंस नामी पुत्रने यादवों को जीतकर अपना विवाह जरासन्ध की अस्ति और प्राप्ति नाम दोनों पुत्रियों से किया था और उसके बलसे मोहित होकर वह अपने जातिवालोंको महादुःख देने लगा था उस समय उन स्वजातियोंने दुःखी होकर मेरा स्मरण किया और मैंने बलदेवजी को साथ लेकर कंस को उसके साथियों सहित मारकर जातिवालों की रक्षा की यह सुनकर जरासन्ध बड़ी भारी सेना लेकर हमारे ऊपर चढ़ आया उसकी सेनाको देखकर हम सब अपने मंत्री पुरोहित आदि से सलाह करनेलगे कि जो हम इसकी सेना को अस्त्र शस्त्रों से मारना चाहें तो तीनसौ वर्ष में भी न मार सकेंगे क्योंकि वह हंस और डिम्भक नामी राजाओं से रक्षितहै जो देवताओं के समान बली योद्धा हैं और शस्त्रसे अवध्य हैं यह दोनों और तीसरा जरासन्ध मिल कर तीनों लोकोंको जीतसक्ते हैं यही सलाह और २ राजा लोगों ने दी इस के पीछे जरासन्ध की सेनामें एक हंस नामी बड़ा राजा था वह बलदेवजी के हाथसे मारा गया उसको देखकर किसीने डिम्भक से जाकर कह दिया कि हंस मारागया वह यह सुनकर हंसके विना अपना जीना व्यर्थ जानकर यमुना

में डूबकर मरगया पीछे यह हाल हंसको मालूम हुआ और वह भी डिम्भक के शोकमें यमुनामें डूबमरा जरासंध उन दोनोंका मरना सुनकर शून्यचित्त होकर लौटगया २५। ४४ उसके जानेपर हम लोग मथुराजी में सुखपूर्वक रहनेलगे इसके पीछे जरासन्धकी दोनों बेटियां अपने पिताके पास गईं और अपना दुःख उससे कहकर कहा कि तुम हमारे पति के मारनेवालेको मारो इस पर जरासन्ध बड़ी सेना लेकर हमपर चढ़ आया सब लोग पहिलेकी सदृश विचार करके उसके भयके मारे सब भाई बंधु और कुटुम्ब सहित आवश्यक धन लेकर मथुरासे पश्चिम दिशाको चलेगये और कुशस्थली नाम पुरी में रहने लगे और वहां हमलोगों ने एक किला बनवालिया कि उस किले के कारणसे विष्णुवंशी योद्धाओं की तो क्या बातहै स्त्रियां भी लड़सक्ती हैं वहां हमलोग निर्भय होकर रहने लगे और उस पुरी के समीप रैवत नाम पहाड़ को देखकर जहांसे जरासन्धको जय करना कुछ बड़ा काम नहीं है सब मधुपुरीवासी बहुत प्रसन्न हुये वह पहाड़ इक्कीस योजन लम्बा और एक योजन ऊंचा है और उस में तीन शिखरहैं और प्रति योजन के अंतमें शतद्वारहैं और उन द्वारोंपर अष्टा-दशावर नाम क्षत्री जो युद्धमें बड़े दुर्मदहैं रहकर रक्षा करतेहैं ४५। ५५ हमारे कुल में सब भाई अठारह सहस्रहैं और आहुकके सौ पुत्र देवताओं के समान बलवान्हैं और हम सात रथी हैं अर्थात् चारुदेष्ण १ चारुदेष्णका भाई २ चक्रदेय ३ सात्यकि ४ बलदेवजी ५ साम्ब ६ और मैं ७ और इनके सिवाय कृतवर्मा, अनाधृष्टि, शमीक, समितिंजय, कंकु, शंकु और कुंति ये महारथी हैं और अंधक भोजके दो पुत्र और वृद्धिराजा आदि दश महारथी जिनके शरीर वज्रके तुल्यहैं और बड़े पराक्रमी हैं मध्यदेश की याद कर करके वृष्णियों में रहते हैं इससे हे युधिष्ठिर! तुममें यद्यपि साम्राज्य पदवीके गुण मौजूदहैं और क्षत्रियोंके ऊपर सम्राट् होने के योग्य हो परंतु मेरी मतिसे जब तक राजा जरासन्ध जीता है तबतक तुम राजसूय यज्ञ नहीं करसक्ते हो उसने सब राजाओंको जीतकर पहाड़की कंदरामें बन्द करके इस प्रकारसे रोक रक्खा है जैसे सिंह बलवान् हाथियोंके मार्गको रोक देताहै उसने महादेवजी का तप करके सब राजाओं को सेना सहित जीत २ कर बांध रक्खाहै और अपनी प्रतिज्ञाको पूरा करने के लिये अब उन सब राजाओं को बलि देकर महादेव जीकी पूजा करना चाहताहै इसी कारणसे जरासन्धके भयसे हम भी भागकर

द्वारकापुरी में जा बसे हैं इससे जो तुम राजसूय यज्ञ किया चाहते हो तो पहिले जरासन्धको मारकर सब राजाओं को छुटानेका यत्न करो नहीं तो किसी उपाय से तुम राजसूय यज्ञ नहीं करसकते हो मेरी बुद्धि में जो कुछ बात आई सो मैं कहचुका अब जैसी तुम्हारी सलाह हो वैसा करो ५६।७०॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः १४॥

पन्द्रहवां अध्याय।

युधिष्ठिर भीमसेन और कृष्णचन्द्रका जरासन्ध को मारकर
साम्राज्य पदवी पानेका विचार करना॥

श्रीकृष्णजीकी उक्त बात को सुनकर युधिष्ठिर कहने लगा कि आपके सिवाय संशयके दूर करनेवाले ऐसे वचन कौन कहे सब राजा लोग अपने अपने घरोंमें अपने को श्रेष्ठ जानते हैं परन्तु सम्राज्यपदवीको पहुँचना बड़ा कठिनहै जो मनुष्य दूसरे के प्रभाव को नहीं जानताहै वह अपनी बड़ाई क्यों-कर करसक्ताहै यह पृथ्वी रत्नों से पूर्ण बहुत लंबी चौड़ी पड़ीहुई है मनुष्य जब तक दूर २ नहीं जाताहै तबतक उसको घर बैठे २ अपना कल्याण नहीं दीखता है मेरी समझमें यज्ञ करके पारमेष्ट्य पाना कठिनहै इससे शम अर्थात् इन्द्रियों को रोककर रहना अच्छाहै मेरा कल्याण इसी में होगा ये हमारे कुलमें उत्पन्न सभासद् मनुष्य यह जानते हैं कि इनमेंसे कोई न कोई श्रेष्ठही होगा परन्तु अब तो हमको भी जरासन्धसे डर होगया क्योंकि हमको तो बड़ा बल भरोसा आपही का था सो आपभी उसके डरके मारे द्वारकापुरी जा बसे हैं सो अब आप यह बताइये कि आप बलदेवजी भीमसेन और अर्जुन के सिवाय और कौन ऐसा है जो जरासन्ध को मारसकै हमको तो आपही की बात प्रमाण है यह सुनकर भीमसेन बोला कि १।१० जो राजा विना उद्योग के किसी कामको करता है वह राजा बल्मीकि की तरह दुःख पाता है और उद्योगके साथ काम करने वाला राजा दुर्बल भी बलवान् शत्रुको जीत लेता है और उद्योग में आलस्य न करके नीतिपूर्वक अपने इष्टकाम को सिद्ध करलेता है सो श्रीकृष्णजी नीतिमें निपुणहैं मुझमें बल मौजूद है और अर्जुन जीतनेके योग्य है इससे हम तीनों मिलकर जरासन्धको इस प्रकारसे साधन करेंगे जैसे तीनों अग्नि यज्ञकी साधना करती हैं यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले कि बालक फल को विना देखे अपने अर्थका आरंभ करदेता है इससे बालक और स्वकार्यतत्पर मनुष्य बलवान्

शत्रुका कुछ विचार नहीं करतेहैं हमने सुना है कि युवनाश्वका पुत्र राजा मान्धाता शत्रुओं को जीतकर राजा भागीरथ प्रजा को पालन करके कार्त्तवीर्य तप करके राजा भरत अपने बलसे और मरुत अपनी ऋद्धि से साम्राज्य पदवी को पहुँचे थे सो हे युधिष्ठिर ! तुममें ये पांचो गुण विद्यमान हैं तुमको साम्राज्य पद क्यों नहीं मिल सक्ताहै जरासन्ध ने सत्पुरुषों में सुकृत साध्य विचार करके धर्म अर्थ और नीतिसे साम्राज्य पदवी पाईहै उसके सम्मुख एक सौ कुल के राजा नहीं पड़ते हैं उसने यह पदवी केवल अपने बलसेही पाई है सब रत्नों के भोगनेवाले राजालोग उसकी आज्ञामें रहते हैं परन्तु वह अपनी अज्ञानता और अनीति के कारण से उस पदवीसे भी तृप्त नहीं होता है ११ । २० बड़े २ मूर्द्धाभिषिक्त राजाओं को वह बलसे पकड़कर अपने वशमें करलेता है हमने तो किसी मूर्द्धाभिषिक्त राजाको उससे जीतते नहीं देखा है दुर्बल राजा की किनमें गिनती है उसने बड़े बड़ोंको अपने वशमें कियाहै जैसे बलि करने वाले मनुष्य की प्रीति बलि के पशु से नहीं होती है इसी प्रकार से और राजा लोग भी उससे प्रीति नहीं मानतेहैं क्षत्री वही सत्कृत होताहै जो शस्त्रसे मारा जाताहै इसी कारण से हम जरासन्ध को मारना चाहते हैं उसने छियासी राजाओं को पकड़कर कैद कररक्खाहै और जो १४ और राजा रहगये हैं उनको भी स्ववश करना चाहताहै उसकी इच्छा क्रूरकर्म करनेकी है जो कोई उसके काम में विघ्न करसकैगा उसको बड़ा यश संसार में मिलेगा और जो मनुष्य उसको जीतलेगा उसके साम्राज्य पदवी पाने में कुछ संशय नहीं है २१।२६॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः १५ ॥

सोलहवां अध्याय ।

अर्जुन का जरासंध को मारकर साम्राज्य पदवी लेने का मंत्र देना ॥

श्रीकृष्णजीकी उक्त बातको सुनकर युधिष्ठिर बोले कि मैं अपने स्वार्थ के लिये तुम लोगों को वहां नहीं भेजसक्ता हूं भीमसेन और अर्जुन दोनों मेरे नेत्रहैं और तुम मेरे मनहो मन और नेत्रों के विना मनुष्य क्योंकर जी सक्ता है राजा जरासन्ध बड़ा बलवान्‌है उसको यमराज भी नहीं जीत सक्ता है मुझको इस स्वार्थ में अनर्थ दिखाई देताहै इससे मेरे मनमें यह विचार आता है कि राजसूय यज्ञ करने की इच्छा को त्याग करदूं क्योंकि यह इच्छा मुझको दुःख देरही है वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! उसी समय अर्जुन

श्रेष्ठ धनुष अक्षय तर्कस धारण कियेहुये और कपिध्वज रथपर सवार सभा में आया और युधिष्ठिर से कहने लगा कि देखो मुझे यह श्रेष्ठ धनुष आदि प्राप्त होगये हैं ये मनवांछित फल के देनेवाले और हरएकको मिलना कठिनहै और श्रीकृष्णजी हमारी रक्षा करनेवाले मौजूद हैं इसके सिवाय सब विद्वान् पुरुष हमारे श्रेष्ठकुलमें उत्पन्न होनेकी सराहना करतेहैं इससे मुझको तो अपने कुल के अनुसार पराक्रमही करना अच्छा जान पड़ता है हां जो मनुष्य पराक्रमी कुलमें उत्पन्न हो परन्तु आप पराक्रमहीन हो वह कुछ नहीं करसक्ता है परन्तु जब पराक्रमी कुलमें पराक्रमी ही होवै तब क्योंकर पराक्रम न करै और क्षत्री तो वही है जिसकी बुद्धि सदा शत्रुओं के विजय करने में रहै और ऐसाही मनुष्य गुणहीन होनेपर भी शत्रुओंको जीत सक्ताहै १।१० जो मनुष्य सब गुण युक्त होवै परन्तु शत्रुओं को विजय करने का उत्साह उसको न होवै तो उससे क्या होसक्ता है पराक्रम ऐसा पदार्थ है कि सब अवगुण उसमें छिप जाते हैं निर्बल मनुष्यमें दीनता होना और बलवान्में मोह होना दोनों नाशकारक हैं जो राजा जय चाहै वह ऐसे मनुष्यों का त्याग करदे मुझे तो इससे श्रेष्ठ और कुछ नहीं दिखाई देता है कि हम यज्ञके अर्थ जरासन्ध को मारकर सब राजाओं को छुटावें जो काम निश्चय करनाहै उसको न करना बड़ा अवगुण है आप हम लोगों में निस्संदेह गुण होने पर अपने को असमर्थ क्यों जानते हैं मुझको युद्ध करके साम्राज्य पदवी लेना ऐसाही सुलभ दीखता है जैसा शम चाहनेवाले मुनियों को संन्यास लेना ११ । १७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि षोडशोऽध्यायः १६ ॥

सत्रहवां अध्याय।

श्रीकृष्णजी का युधिष्ठिर से जरासन्ध के उत्पन्न होनेकी कथा कहना ॥

श्रीकृष्णजी बोले हे युधिष्ठिर! भरत कुलमें उत्पन्न और कुंती के पुत्र की जैसी बुद्धि होनी चाहिये वैसी बुद्धि अर्जुनकी है हमने विना उमरके पूरी होने के रात या दिन में किसीको मरते नहीं देखाहै और न हमने यह सुना है कि देवतालोग युद्ध करने नहीं जातेहैं हर मनुष्यको इतना विचार तो आवश्यक है कि शत्रुपर चढ़ाई विना नीति और अच्छे मंत्रके नहीं होती है क्योंकि विना नीति और उपाय के युद्ध करनेमें बड़ी क्षय होतीहै और कदाचित् दोनों पक्षवाले समान होवें अर्थात् दोनों युद्ध करनेवाले उपाय और नीति से रहित होवें तो

उसमें जय न होने का संशय रहताहै भला यह कैसे होसकताहै कि हमलोग नीतिपूर्वक शत्रुके पास पहुँचकर उसको नाश न करसकें कहीं नदीके किनारे के वृक्षभी नदीके पास पहुँचनेपर बचसक्ते हैं क्योंकि हमलोग अपने छिद्रों को छुपाने और शत्रु के छिद्रों को जान लेनेवाले हैं बुद्धिमान् मनुष्यों की यह मतिहै कि प्रबल शत्रु से व्यूह रचित सेनासे न लड़े वही मति मुझको भी अच्छी जान पड़ती है हमारी समझ में हम ऐसे स्वरूपसे शत्रुके पास चलें जिससे वह हमको जानने न पावे और उसके पास पहुँचने पर अपने कार्य का साधन करें जो घट घट में व्यापक अंतरात्मा सबमें है उसकी क्षय कभी नहीं होतीहै इससे कदाचित् हम लोग जरासंध के हाथसे अपने स्वजातियों के कार्य करने में मारेभी जावेंगे तोभी हमारा बड़ा यश होगा और हमको स्वर्ग मिलेगा १ । १० यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि यह जरासंध कौन है और इतना पराक्रम इसमें क्योंकर हुआ है जो अग्निसदृश आपको मिलने पर शलभ की समान भस्म नहीं होगया यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले कि जरा-सन्ध का बल और पराक्रम जिसके कारण से वह सबका अप्रिय करताहै और सब उससे डरतेहैं इस कारणसे है कि मगधदेशमें बृहद्रथ नाम एक बड़ा युद्ध दर्पित और तीन अक्षौहिणी सेना रखनेवाला राजा था वह स्वरूपवान् श्री-मान् अतुलपराक्रमी और दूसरे इन्द्रके तुल्य था उसका तेज सूर्य, क्षमा पृथ्वी, क्रोध यम और धन कुबेरके समान था और ऐसा गुणवान् था कि उसके गुणों की प्रशंसा पृथ्वीपर इस प्रकारसे फैलगई थी जैसे सूर्यकी किरणें सब स्थानों में व्याप्त होजाती हैं उसका विवाह राजा काशीकी दो पुत्रियों से जो बड़ी स्वरूपवान् और एक साथ उत्पन्न हुई थीं हुआ उन दोनोंसे उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम दोनोंको एकसां बर्तूंगा और विवाह होजाने पर वह उन दोनोंके साथ प्रतिज्ञापूर्वक रमण करने लगा और उनके साथ इस प्रकार से शोभायमान हुआ जैसे गंगा यमुना से समुद्र उसी आनन्द में उस राजाका यौवन व्यतीत होगया परंतु पुत्र की कामना से बहुत यज्ञ आदि करने पर भी उसके वंशका चलानेवाला कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ ११ । २१ इसके पीछे एक समय ऐसा हुआ कि काक्षीवत गौतम ऋषिका बड़ा तपस्वी चंडकौशिक नाम पुत्र अपनी इच्छासे उस राजाके नगरमें आया और एक वृक्षके नीचे उसने वास किया उसके आने का हाल सुनकर राजा अपनी स्त्री सहित उस

के पास गया और उसे रत्न आदिक देकर प्रसन्न किया उस समय उस उत्तम ऋषिने राजासे कहा कि मैं तुम्हारी सेवासे प्रसन्न हुआ जो कुछ तुमको इच्छा हो सो वर मांगो यह सुनकर राजा बृहद्रथ अपनी स्त्री सहित आंखों में आंसू भरकर विनयपूर्वक बोला कि महाराज मैं मंदभागी संतानहीन हूं आपसे क्या वर मांगूं मैं तो राज्य छोड़कर तपोवनमें जानेवाला हूं मुझे वर अथवा राज्य लेकर क्या करना है श्रीकृष्णजी बोले हे युधिष्ठिर! राजाकी बात को सुनकर उन मुनीश्वर का चित्त क्षोभित होगया और वह उसी वृक्षके नीचे बैठगये और ध्यान करने लगे उसी समय उस वृक्षपरसे जो आम का था एक आम टूटकर मुनीश्वरकी गोदी में आपड़ा उन्होंने उस फलको अभिमंत्रित करके राजा को देदिया और कहा कि लो इस फल के प्रभाव से तुम्हारे पुत्र होगा अब तुम अपने घरको जाओ यह सुनकर राजा मुनीश्वर को दंडवत् करके घरको चला आया २२। ३१ और अपने नियम के अनुसार उस फलको अपनी दोनों स्त्रियों को देदिया उन दोनों स्त्रियों ने आधा आधा करके उसे खा लिया और मुनीश्वर के वरदान के प्रभाव से उस फलके खाने पर उन दोनों स्त्रियों को गर्भ रहा राजा यह देखकर बहुत प्रसन्न हुआ जब गर्भ का समय पूरा होगया तब उन दोनों रानियों के आधे २ शरीर रखनेवाले दो पुत्र हुये अर्थात् एक शरीर की दो फांकें जिनमें एक नेत्र एक भुजा एक पैर और आधा पेट आदि अंग थे उत्पन्न हुये रानियां उनको देखकर कांपने लगीं और दोनों ने उन दोनों आधे २ शरीरों को जो सजीव थे त्याग दिया दाइयां उनको ढककर महलके बाहर लेगईं और कहीं डालकर चलीआईं इसके पीछे एक जरा नाम राक्षसी जो मांस और लोहू खाया करती थी वहां आई और उन दोनों आधे २ शरीरों को उठाकर लेजानेकी इच्छा की दैवयोग से उसने उन दोनों आधे २ शरीरोंको एक में मिला दिया कि मिलातेही वे दोनों आधे २ शरीर जुड़गये और वह एक लड़का होगया यह देखकर वह राक्षसी अचरजमें आगई और प्रसन्नता से उस बालकको उठाने लगी परंतु वह बालक उससे न उठा उस समय वह बालक अपने लाल हाथ की मुट्ठी बनाकर मुखमें देकर बादलकी गरज के समान रोने लगा उस शब्दको सुनकर राजसभा से सब मनुष्य राजा सहित बाहर निकल आये और वे दोनों रानियां भी जो पुत्रकी ओरसे निराश हो गई थीं और जिनकी छातियां दूधसे भरीहुई थीं सहसा उठकर वहां चलीगईं

उसको देखकर वह राक्षसी चिंतित हुई और कहनेलगी ३२। ४६ कि मैं इस राजाके राज्यमें बसती हूं और यह राजा पुत्र चाहता है इससे मुझे इस बालक को मारना उचित नहीं है यह कहकर उस राक्षसी ने अपना स्वरूप स्त्री का रखकर उस बालक को उठा लिया और राजाके पास जाकर बोली कि यह तेरा पुत्रहै ब्राह्मणकी कृपासे यह तेरी दोनों रानियों के उत्पन्न हुआ था परन्तु रानियों ने इसको त्याग दिया था अब मैं इसे तुझे देती हूं तू इसको ले यह सुनकर राजाकी दोनों रानियों ने उस बालकको ले लिया और प्रेम सहित रोने लगीं और राजा ने प्रसन्न होकर उस राक्षसी से जो मनुष्यरूप में थी पूछा कि तू कौनहै जो मुझको तैंने यह पुत्र दियाहै मेरी समझ में तो तू कोई देवकन्या है ४७। ५२॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि सप्तदशोऽध्यायः १७॥

अठारहवां अध्याय।

राजा बृहद्रथसे जरा नाम राक्षसीका अपना वृत्तान्त कहना और उसके द्वारा पुत्र मिलनेके कारणसे अपने पुत्रका नाम जरासंध रखना॥

राजाकी उक्त बातको सुनकर वह राक्षसी बोली कि मैं जरा नाम राक्षसी हूं तेरे महलमें मैं बहुत दिनोंसे वास करतीहूं और मैं सब मनुष्योंके घरमें नित्य रहती हूं ब्रह्माजीने मुझे गृहदेवी नाम से उत्पन्न कियाहै जो कोई स्त्री पुत्र सहित मेरी मूर्त्ति भीतपर लिखकर भक्ति सहित पूजा करती है उसके कुलकी वृद्धि होती है और जो ऐसा नहीं करती है उसका कुल क्षय होजाता है हे राजा! तेरे घरमें मेरी पूजा बहुत अच्छीतरहसे हुआ की है मेरे स्वरूपको भीतपर पुत्रोंसहित लिख लिखकर गंध पुष्प धूप और नैवेद्य से तेरी रानियां पूजा किया करती थीं इस से तेरा उपकार करने को मुझे नित्य चिंता रहती थी सो आज तेरे इस पुत्रके शरीरकी दोनों फांकोंको यहां पड़ा हुआ देखकर मैंने उठा लिया और दोनोंको मिलाने पर दैवइच्छा से यह लड़का होगया मैं तो इसमें केवल हेतुमात्रही हूं और मुझे मेरुपर्वतको भक्षण करनेकी भी सामर्थ्य है तेरे इस पुत्रको मुझे मारना कितनी बड़ी बात है परन्तु मैंने तेरी गृहपूजा से प्रसन्न होकर तुझे तेरा पुत्र दिया है १। ८ श्रीकृष्णजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! वह राक्षसी उक्त प्रकार से कहकर वहीं अंतर्द्धान होगई और राजा उस पुत्रको लेकर अपने घर को आया और उसके जातकर्म आदि संस्कार कराये और अपने

देश में उस राक्षसीकी पूजाका बड़ा भारी उत्सव आरम्भ कराया और जरा राक्षसी के द्वारा मिलने के कारण से उस पुत्रका नाम जरासंध रक्खा और वह शुक्लपक्षके चन्द्रमा के समान बढ़कर बड़ा तेजस्वी होगया ६। १२॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वण्यष्टादशोऽध्यायः १८॥

उन्नीसवां अध्याय।

चंडकौशिक मुनिका मगधदेश में जाना राजा बृहद्रथका उनकी पूजा करना मुनीश्वरका जरासंधको आशीर्वाद देना और बृहद्रथका जरासन्धको राज्य देकर तपस्याको चला जाना॥

श्रीकृष्णजी बोले कि हे युधिष्ठिर! थोड़े दिनों में चंडकौशिक मुनि फिर मगध देशमें आये उनके आनेका हाल सुनकर राजा बृहद्रथ अपने मंत्री पुत्र और रानियों सहित उनके पास गया और पाद्य अर्घ्य आदिसे उनका पूजन करके अपना राज्य पुत्र सहित निवेदन किया वह ऋषि राजा की पूजा को अंगीकार करके प्रसन्नतापूर्वक बोले कि हमको दिव्य दृष्टिसे तुम्हारे पुत्रकी सब व्यवस्था मालूम होगई थी यह तुम्हारा पुत्र बड़ा पराक्रमी और स्वरूपवान् होगा और इसके घरमें लक्ष्मीका बड़ा प्रकाश होगा इसके पराक्रमके आगे सब राजा लोग इस प्रकारसे अस्त होजायँगे जैसे गरुड़के सामने पक्षी होजाते हैं और इसके सब शत्रु नाश होजायँगे और जैसे नदीका वेग पहाड़को कुछ पीड़ा नहीं देसक्ताहै ऐसेही देवताओंके भी छोड़े हुये अस्त्रों से इसको पीड़ा न होगी और जितने अभिषेकित राजालोग हैं सबका यह मुकुटमणि होगा और उन लोगों का तेज इसके सामने ऐसे अस्त होजायगा जैसे सूर्यके उदय होनेपर सब तारागण क्षीण पड़जाते हैं और जैसे शलभ अग्निमें नाश होजातेहैं उसी प्रकारसे अनेक राजालोग सेना सहित इसके सम्मुख आ आकर नाश होजायँगे और सब राजाओंकी लक्ष्मी ढुल ढुलके इस प्रकारसे इसके घरमें आवैगी जैसे वर्षाऋतु में सब नदियों का पानी समुद्र में चलाजाता है और जैसे पृथ्वी सब खेती और शुभाशुभको धारण कररही है इसी प्रकारसे यह चारों वर्णके मनुष्यों का पालन करैगा और सब राजालोग इसके वश में इस प्रकारसे रहेंगे जैसे वायुके वशमें प्राण रहते हैं और इसको महादेवजीके दर्शन होंगे १। १५ इस प्रकार से कहकर उन मुनीश्वरने राजाको बिदा किया और राजा सब साथियों सहित अपने घर को चला आया और थोड़े दिनों पीछे जरासंध को राज्य

देकर अपनी दोनों रानियों सहित तपोवन को चला गया और जरासंध ने राज्याभिषेक पाकर अपने पराक्रम से सब राजाओं को जीतकर अपने वश में कर लिया वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा बृहद्रथ बहुत दिनों पीछे तपोवन में अपनी दोनों रानियों सहित मरकर स्वर्गवासी हुआ और जरासंधने कौशिक मुनिके कहनेके अनुसार सब राज्यका पालन किया जब कंस श्रीकृष्णजीके हाथसे मारागया तब उसका वैर श्रीकृष्णजीके साथ होगया और उसने अपनी गदाको सौ बार घुमाकर व्रजके ऊपर फेंकी वह गदा मथुराजीमें जो वहांसे एक कम सौ योजन परहै आकर पड़ी पुरवासियोंने उसको लेकर श्रीकृष्णजीको निवेदन किया और वह स्थान मथुराके निकट जहां वह गदा आकर पड़ी थी गदावसान नामसे विख्यात हुआ १६। २५ जरासंधके हंस और डिम्भक नाम दो सेनापति जिनकी मृत्यु शस्त्रसे नहीं होती थी और दोनों मंत्र और नीतिशास्त्र के परमज्ञाता थे उनका हाल मैं पहिले तुमसे कह चुका हूं कि वे दोनों तीसरे जरासंध सहित तीनोंलोकोंको जीत सक्ते थे इसी बात को जानकर कुकुर, अंधक और वृष्णिवंशी क्षत्रियों ने यह विचार किया था कि जरासन्ध से लड़ना नहीं चाहिये २६। २८॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वण्येकोनविंशोऽध्यायः १६॥

बीसवां अध्याय।

श्रीकृष्णजी का अर्जुन और भीमसेन को साथ लेकर जरासन्ध को मारने के लिये मगध देश को जाना॥

श्रीकृष्णजी बोले हे राजा युधिष्ठिर! अब हंस और डिंभक दोनों यमुनामें डूबकर मरगये और कंस अपने सब साथियों सहित मारागया केवल यह जरासन्ध रह गया है सो इसके मरनेका भी समय अब आन पहुँचा है युद्धमें तो इसको सब असुर और देवता भी नहीं जीतसक्ते हैं परन्तु इसकी मृत्यु मल्लयुद्ध से होगी सो हम ऐसाही उपाय करेंगे हम नीति अच्छी तरह जानते हैं और जैसा भीमसेन बली है वैसाही हम दोनोंकी रक्षा करनेवाला अर्जुन है हम तीनों मिलकर जरासन्धके वधका साधन इसप्रकार से करेंगे जैसे तीनों अग्नि यज्ञ का साधन करती हैं अकेले में मिलनेपर और युद्ध मांगने पर वह निस्संदेह बल के गर्वसे हमको विना सेना के देखकर भीमसेन से मल्ल युद्ध करेगा सो भीमसेन उसको इसप्रकार से मारसक्ता है जैसे मत्यु बड़े लोक को भी नाश करदेती है इससे

हे युधिष्ठिर ! जो तुमको मेरा विश्वास है तो अपने दोनों भाइयों को मेरे साथ करदो वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! श्रीकृष्णजीकी उक्त बातको सुनकर युधिष्ठिर ने अर्जुन और भीमसेन को प्रसन्नचित्त देखकर कहा कि हे अच्युत ! आप ऐसी बात न कहिये आप तो पांडवों के नाथहैं और हम सब आपही के आश्रितहैं अब आप शीघ्र ऐसा यत्न कीजिये जिससे जरासन्ध मारा जाय राजालोग कारागार से छूटें और हमारा राजसूय यज्ञ सिद्ध होवै तुम तीनों के विना मुझको अपना जीना रोग जान पड़ताहै १। १३ जहां आपहैं वहां अर्जुन है और जहां अर्जुन है वहीं आपहैं और भीमसेन बड़ा बलवान् है तुम दोनों के साथ रहकर ऐसा कौनसा कामहै जिसको भीमसेन नहीं कर सक्ताहै हम जानते हैं कि सब उत्तम कार्य बहुतसी आज्ञाकारी सेना से सिद्ध होजाता है परंतु कोई चतुर मनुष्य उसको शिक्षा करने को चाहिये क्योंकि सेना को अन्धा और जड़रूप कहते हैं और चतुर मनुष्य उसको इस प्रकार से लेजाकर अपना अर्थ सिद्ध करते हैं जैसे धीमरलोग जलको उसी राह से लेजाते हैं जिधर निचान अथवा छिद्र होताहै इसीप्रकार से हे श्रीकृष्णजी ! आप नीतिविधानमें चतुरहैं हम लोग आपके पीछे २ उसी प्रकार से चलेंगे जिस प्रकारसे आप आज्ञा करेंगे और अपने सब कामों में आप ही को आगे रक्खेंगे क्योंकि आप नीति बुद्धि और उपायके बल से युक्त हैं सो आगे आगे आप चलिये आपके पीछे अर्जुन और अर्जुनके पीछे भीमसेन चलैगा इस प्रकार से नीति, जय और बल तीनों के एक जगह होने पर हमारा काम सिद्ध होगा वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इस प्रकार से सब भाई सम्मत करके भीमसेन और अर्जुन श्रीकृष्णजी के साथ २ मगध देश की ओर चलदिये तीनों ने ब्राह्मणों केसे वस्त्र पहनकर अपना वेष बदललिया और अपने जातिवालों के कामको विचारकर क्रोधके कारण से तीनों का शरीर सूर्य चन्द्रमा और अग्निकी समान झलकने लगा १४। २३ मनुष्योंने उन दोनों एक रूप कृष्ण और अर्जुनको जो धर्म और काम के कार्यों में प्रवृत्त होनेवाले थे भीमसेन के आगे २ जाते हुये देखकर जरासन्धको मरा हुआ समझ लिया वे तीनों कुरुजांगल देश से चलकर पद्म सरोवर और कालकूट पर्वत और गण्डकी, महाशोण, सदानीरा, एक पर्वतकी नदियां सरयू, कोशला, मिथिला, माला और चर्मण्वती आदि नदियों पर होते हुये गंगा और शोणभद्र

नदियों को उतरकर पूर्वदिशा की ओर चलेगये और मगधपुर के समीप जा पहुँचे और वहां गोरथ पर्वत पर चढ़कर उस नगरको देखने लगे जो बहुतसी गाय और नाना वृक्षों से सुशोभित था २४। ३०॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि विंशोऽध्यायः २०॥

इक्कीसवां अध्याय।

श्रीकृष्णजीका अर्जुन और भीमसेन सहित मगधपुर में पहुँचना और जरासन्ध से प्रश्नोत्तर होना॥

श्रीकृष्णजी कहनेलगे देखो अर्जुन यहां से मगध देशकी सेनाका रहने का स्थान कैसा प्रकाशित दीखरहा है यहांपर जल और पशु सदैव बने रहतेहैं और यह देश वैहार, वृषभ, ऋषि और चैत्यक नाम पांच पहाड़ों से जो एक दूसरे से मिले हुये और ऊंचे २ शिखर और सुन्दर वृक्षों से शोभित होरहे हैं घिरा हुआहै इन पहाड़ों पर पुष्पित और सुगंधित वृक्षों के वन लगे हुये हैं और यहीं पर गौतम ऋषिसे एक शूद्रा स्त्री और राजा उशीनरकी पुत्री के काक्षीवान् आदि पुत्र उत्पन्न हुये थे गौतम के अनुग्रह से यहां के रहनेवाले क्षत्रिय लोग मनुवंशी कहलाते हैं पहिले समयमें गौतम के घरमें अंग और वंग देशों के राजाभी आकर रहे थे और जो ये सामने पिप्पल और लोध्र वृक्षों के वनों की पंक्तियां दिखाई देती हैं वे गौतम ऋषिही के स्थान के निकटहैं इसी स्थानपर अर्बुद, शक्रवापी, स्वस्तिक, मणिनाग और कौशिक नागोंके रहने के स्थानहैं और वे सदैव यहां रक्षा किया करते हैं मनुजीने इस देशको ऐसा बनाया है कि यहां सब कालोंमें वर्षा रहतीहै १। १० जरासन्ध ऐसे रक्षित और रमणीक नगर के पानेही के कारण से अपनेको अर्थ सिद्ध मानता है सो हम मिलकर उसके इस घमंडको तोड़डालेंगे ११ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसप्रकार से कहकर श्रीकृष्णजी वहांसे भीमसेन और अर्जुनके साथ २ मगधपुर की ओर चलदिये और वहां पहुँचकर वहां के प्रसन्नचित्त और पुष्ट मनुष्यों को जो उत्सव के कारण से अच्छे २ वसन और आभरण पहिरेहुये थे देखतेहुये पहाड़ों के समान ऊंचे नगर के द्वारपर जो बृहद्रथवंशी मनुष्य और पुरवासियों से शोभित होरहा था पहुँचकर मगधदेश के रुचिर यज्ञस्थान के समीप जा पहुँचे और वहां के कँगूरे गिरा दिये उसी स्थानपर राजा बृहद्रथ ने वृषासुर दैत्यको मारकर उसके चमड़ेकी तीन भेरियां बनवाकर रखवादी थीं और पुष्प आदि

से अलंकृत करके बजाई जाती थीं इन तीनों वीरोंने उनको फोड़डाला और वहां से चैत्यप्राकार अर्थात् यज्ञस्थान के परकोटे के द्वार के सम्मुख चल दिये और वहांपर जो एक बड़ा मोटा और जरासन्धसे पूजित शिखर था उसको अपनी भुजाओं के बलसे गिरादिया और जरासन्धके देखनेकी इच्छा से उसके नगर में प्रवेश किया १२।२१ इसी अवसरमें ब्राह्मणों ने बहुतसे दुष्ट शकुन देखकर राजा जरासन्धको दिखलाये और पुरोहितों ने उसको हाथी पर चढ़ा कर उससे चारों ओर अग्नि फिराकर फेंक दी और राजाने उन दुष्ट शकुनों की शांतिके लिये दीक्षित होकर उपवास किया उसी समय वे तीनों वीर जरासन्धके नगरको भक्ष्य माला आदि संपूर्ण पदार्थों से समृद्धिमान् देखकर नगरके बाजार में से माला और सुन्दर भूषण वसन और कुण्डल बरजोरी ले कर उनसे अपनेको अलंकृत करके जरासन्ध को मारनेकी इच्छा से विना शस्त्र लियेहुये जरासन्ध की सभामें इसप्रकारसे पहुँचे जैसे हिमालय पहाड़ के सिंह गोशालाओं को ढूंढ़तेहुये जातेहैं उनकी भुजा जो तालवृक्ष के समान लम्बी और चन्दन अगरु आदि से चर्चित थीं और हाथियों के से ऊंचे कन्धे और चौड़ी छाती को देख २ कर सब मगधपुरवासी मनुष्य आश्चर्य करने लगे और वे तीनों व्यथारहित तीनों कक्षाओं को नांघकर अहंकार सहित जरासन्धके पास पहुँचे जरासन्ध ने उन्हें पाद्य अर्घ्य से पूजा और गऊ भेंट करने के योग्य देखकर उनका सत्कार किया २२।३१ और यह कहके कि तुम्हारा आना शुभ हो उनसे कुशल प्रश्न पूछी तब अर्जुन और भीमसेन ने कुछ उत्तर न दिया चुपके होरहे उस समय श्रीकृष्णजी बोले कि ये दोनों नियम में स्थित हैं आधीरात तक किसी से नहीं बोलते हैं आधीरातके पीछे तुम से बातचीत करेंगे यह सुनकर जरासन्ध उन तीनोंको यज्ञशाला में टिका कर राजमन्दिर को चलागया और आधीरात के बीतने पर उन तीनों वीरोंके पास आया और उनके अपूर्व वेषको देखकर उनके पास विस्मित होकर बैठगया उसका यह नियम कि वह स्नातक ब्राह्मणों से आधीरात को भी मिलता हैं पृथ्वीपर विख्यात होगया वे तीनों वीर राजा जरासन्ध को अपने समीप आयाहुआ देखकर बोले कि तेरा कल्याण और कुशल हो यह सुनकर जरासन्ध ने उन तीनों छलवेषधारियों को बैठनेकी आज्ञा दी और वे चारों इस प्रकारसे बैठगये जैसे बड़े यज्ञ में लक्ष्मी सहित तीनों अग्नि स्थापित होती

हैं ३२।४१ बैठने के पीछे जरासन्धने उन तीनों से कहा कि तुम कहते हो कि हम स्नातक ब्राह्मण हैं सो स्नातक ब्राह्मण विना समावर्तन कर्म किये माला और चन्दन धारण नहीं करते हैं ऐसी कोई बात संसार में नहीं है जो मैं न जानताहूं इससे आप सत्य सत्य कहिये कि आप कौनहैं आपका वेष ब्राह्मणों कासा है परन्तु आप क्षत्रियों कासा तेज धारण किये हैं और आपकी भुजाओं पर ज्याघातका चिह्न बनाहुआ है और आपने विना समावर्तन कर्म किये चित्र विचित्र वस्त्र माला और चन्दन क्यों धारण किये हैं राजाओं के सामने सत्य बोलना श्रेष्ठ होता है इससे हमसे सत्य २ कहो कि तुम द्वार छोड़ कर चैत्यक पहाड़ की शिखर को तोड़कर राजा के अपराध से निडर होकर दूसरी राहसे क्यों आये हो ब्राह्मणों का वचन बलवान् होता है कर्म ब्राह्मणों का बलवान् नहीं होता है सो तुम्हारा कर्म भी तुम्हारे वेषके विपरीत है और तुमने हमसे विधिपूर्वक पूजन क्यों नहीं लिया यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले कि हम स्नातक ब्राह्मण हैं स्नातकव्रत केवल ब्राह्मण ही नहीं करते हैं किन्तु क्षत्रिय और वैश्य भी करते हैं इनमें से कोई तो विशेष नियम और कोई अविशेष नियम को लेनेवाला क्षत्रिय लक्ष्मी पाता है और पुष्प धारण करनेवालों को निश्चय लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है इस कारण से हम भी पुष्पधारी हैं यह सत्य है कि क्षत्रियके पास बाहुबल होता है वचनबल उसके पास नहीं होता है ४२। ५१ इसी कारण से क्षत्रियका कहाहुआ वचन अप्रगल्भ होता है धाताने क्षत्रियों की भुजाओं में अपना बल दिया है जो उस बलको तुम्हारी देखनेकी इच्छा होगी तो देखोगे धीरवान् पुरुष शत्रुके घरमें अद्वार से और हितूके घरमें द्वार से प्रवेश किया करते हैं इस कारण से द्वार धर्म को समझकर हमने तुम्हारे पुरमें अद्वार से प्रवेश किया था और हम शत्रुके घरमें पहुँचकर शत्रुकी पूजा को ग्रहण नहीं करते हैं हमारा यही व्रत है इससे हमने तुम्हारी पूजा ग्रहण नहीं की ५२। ५४॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वण्येकविंशोऽध्यायः २१॥

बाईसवां अध्याय।

श्रीकृष्णजीका जरासन्ध के वध करने का उद्योग करना॥

श्रीकृष्णजीकी उक्त बातको सुनकर जरासन्ध बोला कि मुझे याद नहीं पड़ती है कि मेरा आपसे कभी वैर हुआ था या नहीं और न मुझे तुम्हारा कोई

अपकार करनेकी यादहै आपलोग मुझ अनपराधी को अपना शत्रु क्यों बताते हैं सत्पुरुषों की यह मर्यादा नहीं है मैंने आजतक कभी अर्थ और धर्म का उपघात नहीं कियाहै न जानें आप किस हेतुसे मुझे अपना शत्रु बताते हैं जो मनुष्य विना बाधा के अपराध लगाता है उसका कल्याण कभी नहीं होता है और उसको पापियोंकी सी गति मिलती है क्षत्रियके धर्मसे शुभकर्म करनेवाले मनुष्यों का कल्याण होता है और धर्म जाननेवाले क्षत्रिय धर्मसे परे दूसरे धर्म की प्रशंसा नहीं करते हैं आप लोग मुझको प्रमाद से ऐसा बताते हैं मैं जिते-न्द्रिय रहकर अपने धर्म में स्थित हूं और प्रजाका अपराध नहीं करता हूं यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले कि हमलोग तुम्हारे पास एक ऐसे मनुष्य के कहने से आये हैं जो कुलका पालन और कुल के कार्य का करनेवाला है जो राजा श्रेष्ठ होता है वह दूसरे साधु राजाओं को नहीं मारता है तुमने सब संसारके राजाओं को पकड़कर बांध रक्खा है और उनको शिवजीकी पूजामें बलि दिया चाहते हो ऐसा कर्म करने पर भी तुम अपने को अनपराधी जानते हो जो तुम यह काम करोगे तो हमको भी पाप लगेगा क्योंकि हम धर्म करनेवाले मनुष्यों के धर्मकी रक्षा करने में समर्थ हैं १।१२ हमने आजतक मनुष्यों को देवता के अर्थ बलि चढ़ाना कहीं नहीं सुना है न जानें तुम शिवजी को मनुष्योंका बलि क्यों देना चाहते हो भला तुम्हारी सी खोटी बुद्धि किस की होगी जो तुम अपने सवर्ण अर्थात् हमजिन्सोंको पशुसंज्ञा जानकर बलिप्रदान किया चाहते हो जो मनुष्य जिस २ अवस्थामें जैसा जैसा कर्म करता है उसी उस अवस्था में वह वैसाही फल पाता है हम लोग दुःखी मनुष्योंके दुःख को दूर करनेवाले हैं इससे हमलोग जातिकी वृद्धि करने के लिये तुमको जाति क्षयके अपराधसे दूषित जानकर मारने आये हैं तुम अपने मनमें यह जानते हो कि मेरे समान संसारमें दूसरा क्षत्रिय नहीं है सो यह तुम्हारी बुद्धि की मंदता का कारण है भला ऐसा कौन क्षत्रिय होगा जो रण करके स्वर्ग न जाना चाहे और जातिवालों को न छुड़ाना चाहे जो क्षत्रिय युद्धरूपी यज्ञमें दीक्षित होताहै वह स्वर्ग में रहकर सम्पूर्ण लोकों को अपने वशमें करलेता है वेद पढ़ना बड़ा यश लेना तप करना और युद्ध में व्यभिचार रहित मरना स्वर्ग की योनि अर्थात् स्वर्ग देनेवाले हैं युद्ध में मृत्यु होने से मनुष्य को इन्द्र के भोगने के पदार्थ मिलते हैं और इन्द्रभी इसीसे असुरों को जीतकर जगत् की रक्षा करता

है स्वर्ग का मार्ग मिलने के लिये तुम्हारे समान वैर करनेवाला और कौन होगा तुमको अपने बल और सेना के घमण्ड से दूसरे का अपमान करना उचित नहीं है क्योंकि मनुष्य २ का पराक्रम अलग २ होताहै बहुतसे इस संसार में तुम्हारी समान और बहुतसे तुमसे अधिक बल रखनेवाले होंगे १३।२२ तुम जबतक इस बातको नहीं जानते हो तभीतक ऐसा समझ रहे हो इससे तुम अपने समान पुरुषों के बीच में मान और गर्व करना छोड़ दो और अपने पुत्र और मन्त्रियों सहित यमलोक को मत जाना चाहो देखो दम्भोद्भव कार्तवीर्य उत्तर और बृहद्रथ आदि राजालोग अपने कल्याण का अपमान करने के कारण से नाश होगये हम लोग तुमसे युद्ध चाहने वाले ब्राह्मण नहीं हैं किंतु क्षत्रिय हैं मैं इन दोनों के मामा वसुदेवजी का पुत्र हूं नाम मेरा कृष्ण है और ये दोनों अर्जुन और भीमसेन नामी पांडुनंदन हैं इससे हम तुमसे फिर यही कहते हैं कि या तो तुम सब राजाओं को छोड़ दो नहीं तो हम से स्थिर होकर युद्ध करके यमलोक को चले जाओ यह सुनकर जरासंध बोला कि हमने किसी राजा को विना जीते नहीं पकड़ा है बताओ ऐसा कौनसा है जो हमसे हारा हुआ नहीं है क्षत्रिय का यही धर्म और उपजीवन है कि शत्रु को बलसे अपने वशमें करके इच्छानुसार कर्म करे सो मैं क्षत्रियों के धर्म को स्मरण करके देवता के निमित्त किये हुये राजाओं को भय के कारण से नहीं छोड़सक्ता हूं हां सेना के साथ सेना लेकर अथवा मैं अकेला तुम तीनोंसे पृथक् २ अथवा सबसे एक साथही लड़सकता हूं२३।३० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा जरासंध ने उक्त प्रकार से कह कर अपने पुत्र सहदेव को राज्याभिषेक किये जाने की आज्ञा दी और अपने कौशिक और चित्रसेन नामी सेनापतियों को जो पूर्व जन्म में हंस और डिंभक नामी जरासंध के सेनापति थे याद किया उस समय समर्थ और सत्य-प्रतिज्ञ श्रीकृष्णजी यह विचारने लगे कि यह पराक्रमी जरासंध यादवों से अवध्यहै क्योंकि जब हमने पहिले युद्धमें इसको मारना चाहा था उस समय यह आकाशवाणी हुई थी कि जरासंध का काल तुम्हारे हाथ से नहीं है इस को भीमसेन मारेगा हमने इसको यह आकाशवाणी सुनकर छोड़ दिया था ३१।३६॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि द्वाविंशोऽध्यायः २२॥

तेईसवां अध्याय।

जरासंध और भीमसेनके मल्लयुद्ध होनेका वृत्तान्त ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! श्रीकृष्णजी उक्त रीतिसे विचार करके युद्धका निश्चय करनेके लिये जरासंधसे कहनेलगे कि तुम हम तीनोंमें से किसके साथ युद्ध करोगे जिससे तुम युद्ध करो वही तुमसे लड़नेको तैयार होजावै यह सुनकर वह तेजस्वी जरासंध बोला कि मैं भीमसेन से युद्ध करूंगा इसके पीछे जरासंधने ब्राह्मणोंसे स्वस्त्ययन सुनकर क्षत्रियधर्मको स्मरण करके अपना किरीट मुकुट उतार डाला और बालोंको बांधकर समुद्रके समान मर्यादा के साथ खड़ा होकर भीमसेनसे बोला कि मैं तेरे साथ युद्ध करूंगा तेरे साथ लड़ने से हारेपर भी मेरा यश होगा यह कहकर जरासन्ध भीमसेनके सम्मुख जाकर इस प्रकार खड़ा होगया जैसे बलि नाम असुर इन्द्रके सम्मुख जाकर खड़ा हुआ था उस समय जरासंधका पुरोहित माला आदिक अनेक मांगल्य पदार्थ और दुःख और मूर्च्छा के समयपर सुख और संज्ञा करनेवाली ओषधियों को लेकर जरासंध के समीप जा खड़ा हुआ इसके पीछे भीमसेन श्रीकृष्णजी से मंत्र करके और स्वस्त्ययन सुनकर जरासंधके सामने युद्ध करनेको गया और वह दोनों भुजारूपी शस्त्रों से युद्ध करनेवाले और परस्पर जय चाहनेवाले गुरुको दंडवत् करके आपस में हाथ मिलाये और खंब ठोककर एक दूसरे के कन्धे पर हाथ रखके अंगसे अंग मिलाकर लड़ने लगे और दोनों चित्रहस्त अर्थात् मुट्ठी बांधना, कक्षाबंध, गुलगंडाभिघात और बाहुपाश आदि अनेक मल्लयुद्ध के पेचोंको कर २ के एक दूसरे के छाती और शिरपर घूसा मारने लगे १। १४ और हाथ मरोड़कर पीड़ित करनेलगे कभी वह उसके चपेटा मारता कभी वह उसको पकड़कर खींच लेजाता कभी वे दोनों एक दूसरे के हाथ मार २ कर पीड़ित होजाते और कभी अपनी भुजाओंसे कमरको लपेट २ कर एक दूसरे को गिरा देते और दोनों अच्छीप्रकारसे शिक्षा पानेके कारण से अपनी २ देह को सकोड़ लेते और सवारी और कमरपेचा आदि दांवों को करके उदर के नीचे हाथ डालकर कमर पकड़ लेते और कंठ और छाती तक उठा २ कर एक दूसरेको पटक देते कभी पीठको पृथ्वी से रगड़ते कभी उदरमें घूसा मारकर एक दूसरे को मूर्च्छित करदेते इस प्रकारसे वे दोनों एक जगह घूसा मारना दिखलाकर उस जगहको छोड़कर दूसरी जगह घूसा मार मारकर

और हाथ मरोड़ २ कर युद्ध करनेलगे १५ । २० उस समय वहां ब्राह्मण क्षत्री वैश्य और शूद्र आदि सहस्रों पुरवासी स्त्री पुरुष बालक और वृद्ध आकर युद्ध देखने लगे और उन दोनों के भुजासे भुजा लड़ाने और निग्रह अर्थात् ग्रीवा पकड़कर नीचे को दबा देना और प्रग्रह अर्थात् पट्टे खींचकर चित गिरा देना और २ दांवोंके करनेसे ऐसा भयानक शब्द होनेलगा जैसा पहाड़पर बिजुली गिरने से होता है दोनों प्रसन्नचित्त और परस्पर जय करने की इच्छासे लड़ते थे मनुष्य जिधर २ वे दोनों लड़ते २ जाते थे उधरही उधरसे हट जाते थे और उन दोनों का युद्ध उस रणभूमि में इन्द्र और वृत्रासुर की समान होनेलगा कभी आगे कभी पीछे कभी तिरछे कभी सामने एक दूसरे को खींच लेजाता और एक दूसरे को घुड़क घुड़क कर पत्थर मारने के समान घोंटू आदि से प्रहार करता था और दोनों की भुजा मारने का शब्द ऐसा होता था जैसे लोहे के परिघाओं को मारने से होता है उन दोनों का युद्ध कार्त्तिक बदी प्रतिपदा से प्रारम्भ हुआ और विना आहार और विश्राम के तेरसतक युद्ध हुआ किया चतुर्दशीकी रात्रिको जरासन्ध थककर बैठगया उस समय श्रीकृष्णजी ने भीमसेनको सम्बोधन किया कि थका हुआ शत्रु पीड़ा नहीं दे सकता है और सुगमता से मारा जा सकता है इससे तुम इससे बराबर युद्ध किये जावो यह सुनकर भीमसेन ने जरासन्ध को उस अवस्था में मारना विचारा और क्रोध करके उग्र रूप होगया २१ । ३५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि त्रयोविंशोऽध्यायः २३ ॥

चौबीसवां अध्याय ।

भीमसेनका जरासन्ध को मारडालना और श्रीकृष्णजीका सब राजाओंका बन्धनसे छुटाकर पांडवों सहित इन्द्रप्रस्थको आना और पांडवों से बिदा होकर द्वारकाको चलाजाना ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! भीमसेन ने जरासन्ध को मारना विचार कर श्रीकृष्णजी से कहा कि महाराज इस पापी की कमर वस्त्र से दृढ़ बँधी हुई है इससे यह मेरे बल से रुकता नहीं है यह सुनकर श्रीकृष्णजी जरासन्ध को मरवाने की इच्छा से शीघ्रता से बोले कि तुममें जो देवता सम्बन्धी वायुका बल है उसको अब जरासन्ध पर प्रकट करो यह सुनकर भीमसेन ने जरासन्ध को पकड़ कर उठा लिया और सौ बार घुमाकर पृथ्वीपर पटककर

पीठ में घोंटू अड़ाकर उसे रगड़ रगड़कर गर्जने लगा और हाथों से दोनों टांगों को पकड़कर चीड़कर बीचमें से दो करडाला उन दोनों की गर्जना से स्त्रियों के गर्भ गिर पड़े और मगधपुरवासी मनुष्य भयभीत होकर कहने लगे कि क्या हुआ हिमालय पर्वत फटता है या पृथ्वी फट गई है १।१० इसके पीछे वे तीनों वीर जरासन्ध के मृतक शरीरको उसके घरके द्वारपर डालकर रात्रि मेंही बाहर चलेगये और जरासन्ध के पताकाधारी रथ को जोतकर उस पर बैठकर वहां गये जहां जरासन्ध ने सब राजाओं को बँधुआ कर रक्खा था वहां जाकर उन्होंने उन राजाओं को कैद से छुटा दिया उन राजाओं ने श्री कृष्णचन्द्रको रत्न आदि भेंट दिये और अर्जुन श्रीकृष्ण और भीमसेन सहित उस सुन्दर और दुर्जय रथपर बैठकर राजाओं को साथ लिये हुये नगर के बाहर आया यह रथ वही था जिसपर चढ़कर इन्द्र और विष्णु ने तारकासुर युद्ध में दैत्योंको मारा था उस रथकी प्रभा तपाये हुये सुवर्णके समान थी और शब्द बादल की गरजके सदृश था और वह रथ शत्रुनाशक और जय का दाता था इन्द्रने इसी रथपर सवार होकर दानवों की निन्यानबे सेना नाश की थीं उस रथ को पाकर पांडव और श्रीकृष्णजी बहुत प्रसन्न हुये और उनको उक्त प्रकार से सब राजाओं सहित देखकर सब मगधदेशवासी चकित होगये ११।२० उस रथ में वायु के समान जल्दी चलनेवाले घोड़े जुते हुये थे और एक ध्वजा देवताओं की बनाई हुई उसपर विना आधार के लगी हुई थी प्रभा उस ध्वजाकी बिजुलीके समान थी और वह एक योजनसे दिखलाई देती थी उस समय श्रीकृष्णजी ने गरुड़जी को स्मरण किया और वह उसी क्षण वहां पहुँचकर उस ध्वजा पर जिसपर भयानक शब्द करनेवाले जीव बैठे थे बैठ गये उनके बैठनेके कारण से वह ध्वजा चैत्य वृक्ष की तरह ऊंची खड़ी होगई उस समय गरुड़जी का प्रकाश दोपहरके सूर्य के तुल्य था और मनुष्य उनकी ओर कष्ट से देख सक्ता था वह ध्वजा न वृक्षों में अटकती थी न शस्त्रसे कटती थी और मनुष्य उसको अच्छे प्रकारसे देखसक्ते थे यह रथ राजा वसुको इन्द्रने दिया था वसुने राजा बृहद्रथको दिया और बृहद्रथ से राजा जरासन्ध ने पाया था श्रीकृष्णजी उस रथ पर बैठे हुये गिरिव्रजदेश अर्थात् पहाड़ी पृथ्वी से चलकर समान पृथ्वी पर आकर ठहर गये वहां श्रीकृष्णजी के पास ब्राह्मण आदि सब नगरवासी आदर करते हुये गये २१।३० और बंधन से छूटे

हुये राजा लोगोंने श्रीकृष्णजीकी पूजा की और विनय युक्त बोले कि आपने हम लोगों को जो दुःखरूपी कीच में फँसे हुये थे धर्मका पालन करके बाहर निकाला है यह आपकी कुछ आश्चर्य की बात नहीं है आप इसी योग्य हैं हमलोगों को मोक्ष करने से आपको संसार में बड़ा यश मिला अब हम सब आपके आधीन हैं जो कुछ आप आज्ञा दें सो ही हम करें जो कठिनता से भी हो सकैगी तो भी हम लोग आपकी आज्ञा का प्रतिपालन करेंगे यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले कि राजा युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करके साम्राज्य पदवी प्राप्त करना चाहता है सो तुम सबलोग उस यज्ञ में राजा युधिष्ठिर की सहायता करो यह सुनकर उन राजा लोगों ने प्रसन्न होकर कहा कि बहुत अच्छा हम सब ऐसा ही करेंगे और श्रीकृष्णजी को रत्न आदि भेंट किये श्रीकृष्णजी ने उन सब राजाओं पर दया करके उनकी दी हुई भेंटों को अंगीकार किया इसके पीछे जरासंधका बेटा सहदेव बड़े २ मोलके रत्न आदि पदार्थों को आगे २ लेकर अपने मंत्री और पुरोहितों सहित श्रीकृष्णजी के पास नम्रतायुक्त आया श्रीकृष्णजी ने उसकी दी हुई भेंट को अंगीकार किया और उसे अभय करके उसी स्थान पर उसके राजतिलक अपनी ओर से कर दिया और वह श्रीकृष्णजी के साथ सखाभाव मानकर पांडवों से सत्कृत होकर पुरोहित आदि सहित अपने नगर को लौट गया ३१ । ४४ हे राजा जनमेजय ! इस प्रकार से श्रीकृष्णजी वहां से जरासन्ध को मारकर और भेंटों का बहुतसा धन लेकर पांडवों सहित उक्त रथपर बैठकर इन्द्रप्रस्थ में पहुँचे और युधिष्ठिर से मिलकर कहने लगे कि तुम्हारे भाग्य से भीमसेन ने जरासन्ध को मार डाला और सब राजा लोग बंधन से छुटा दिये गये और तुम्हारे दोनों भाई कुशलपूर्वक लौटकर घर आगये यह सुनकर युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी की विधिपूर्वक पूजा की और अर्जुन और भीमसेन को छाती से लगा लिया और जरासन्ध से विजय पाकर आनन्द करने लगा इसके पीछे राजा युधिष्ठिर उन सब आये हुये राजा लोगों से अवस्था के अनुसार यथायोग्य मिले और आदर सत्कार करके सबको विदा कर दिया वे राजा लोग युधिष्ठिर से आज्ञा पाकर छोटी बड़ी सवारियों में बैठ २ कर अपने २ देश को चले गये इस प्रकार से हे राजा जनमेजय ! श्रीकृष्णजी अपने शत्रु जरासन्ध को पांडवों से मरवाकर युधिष्ठिर, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा,

भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और धौम्य पुरोहित से यथायोग्य मिलकर युधिष्ठिर के दिये हुये उसी रथमें बैठकर जो मनके समान जल्दी चलने वाला था द्वारकापुरी को चले चलते समय पांडवों ने श्रीकृष्णजी की परिक्रमा की और उनके चलेजानेके पीछे युधिष्ठिरने उस पाये हुये यशको अपने धर्म युक्त प्रजापालन आदि कर्मोंसे बढ़ाया और द्रौपदी के साथ प्रीति बढ़ाई ४५।६०॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि चतुर्विंशोऽध्यायः २४॥

पच्चीसवां अध्याय।

अर्जुन भीमसेन नकुल और सहदेवका चारों दिशाओं के राजाओं को विजय करके बहुतसा द्रव्य लाना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे अर्जुनने एक दिन युधिष्ठिर से कहा कि महाराज मुझको श्रेष्ठ धनुष, शस्त्र, बाण, बल, पक्ष, पृथ्वी और सेना प्राप्त होगई है कि जिनका मिलना दूसरेको दुर्लभ है इससे अब मेरी यह इच्छा है कि मैं अभिजित् मुहूर्त और अच्छी तिथि में कुबेरसे पाली हुई उत्तर दिशाको जाकर विजय करूं और सब राजालोगों से कर लूं यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि अच्छा अब तुम ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन सुनकर शत्रुओंको दुःख और मित्रों को आनन्द देनेवाली यात्रा करो तेरी विजय निश्चय होगी यह सुनकर अर्जुन बड़ी सेनाको साथ लेकर अग्निके दियेहुये दिव्य रथमें बैठकर उत्तर दिशाको चलदिया इसी प्रकारसे युधिष्ठिरसे पूजित हो होकर भीमसेन पूर्व दिशा नकुल पश्चिम दिशा और सहदेव दक्षिण दिशाको बहुत सी सेना साथ ले लेकर चल दिये और चारों ने चारों दिशाओं को विजय किया १।१० राजा युधिष्ठिर उन चारों के लाये हुये द्रव्य से बड़ा लक्ष्मीवान् होगया ११॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि पञ्चविंशोऽध्यायः २५॥

छब्बीसवां अध्याय।

अर्जुन का उत्तर दिशामें राजाओं को जीतकर राजा भगदत्त को युद्ध करके जीतना॥

उक्त कथा को सुनकर राजा जनमेजय ने वैशम्पायनजीसे कहा कि महाराज चारों दिशाओं के विजय करने का वृत्तांत विस्तार सहित वर्णन कीजिये मेरा चित्त पांडवों के चरित्रको सुनने से तृप्त नहीं होताहै यह सुनकर वैशंपायन जी बोले कि चारों पांडवों ने इस पृथ्वीको एकही साथ विजय किया था परन्तु हम पृथक् २ दिशाकी विजयका वृत्तांत कहने के निमित्त पहिले अर्जुन की

विजय का हाल कहते हैं अर्जुन पहिले कलिंद देशमें गया और वहांके राजा को उसने बड़ी सुगमता से अपने वश में करलिया इसके पीछे उसने आनर्त्त, कालकूट, कलिंद और सुमंडल देशके राजाओं पर चढ़ाई की और उन सब को सेना सहित जीतलिया उपरांत वह उन सब जीते हुये राजाओं सहित शाकद्वीप आदि सप्त द्वीपों में गया और वहां के प्रतिविंध्य आदि बड़े धनुर्धारी राजाओं से तुमुल युद्ध करके सबको जीतलिया और उन सबको साथ लिये हुये प्राग्ज्योतिष नाम देश में गया वहां का भगदत्त नामी राजा किरात चीन सागर और अनूपवासी योद्धाओं से युक्त होने के कारण बड़ा पराक्रमी था उससे अर्जुन का आठ दिनतक बड़ा युद्ध हुआ उपरांत वह अर्जुन से कहने लगा १।१० कि हे अर्जुन! तुम इन्द्रके पुत्रहो इससे तुममें इन्द्रकासा पराक्रम होना योग्यहै मैं भी इन्द्रका मित्र हूं परन्तु अब मेरी सामर्थ्य तेरे साथ युद्ध करने की नहीं है इससे जो कुछ तुम्हारी मनोकामना हो सो कहो मैं वैसाही करूंगा तुम मेरे पुत्र के समान हो यह सुनकर अर्जुन बोले कि धर्मज्ञ और सत्यवादी राजा युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ में बड़ी दक्षिणा देकर साम्राज्य पदवी प्राप्त करना चाहता है सो मैं उसके निमित्त चाहता हूं कि आप अपना हाथ मुझको दीजिये आप मेरे पिता के सखा हैं और मुझसे भी प्रीति मानते हैं इससे मैं आपका करदान प्रीतिपूर्वक मांगता हूं यह सुनकर भगदत्त बोला कि जैसे तुम हमारे पुत्रकी समान हो उसी प्रकारसे राजा युधिष्ठिरभी हैं मैं तुम्हारे कहने के अनुसार सब करूंगा परन्तु करदानके सिवाय और जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो सो हमसे कहो ११। १६॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि षड्विंशोऽध्यायः २६॥

सत्ताईसवां अध्याय।

अर्जुन को उत्तर दिशामें आगे जाना और युद्ध करके पहाड़ी राजाओंको विजय करना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा भगदत्त की उक्त बात को सुनकर अर्जुन ने कहा कि आपका करदान देनाही सब कुछ है इसके पीछे अर्जुन वहां से उत्तरकी ओर आगे चला और अन्तर बाहर और उपगिरि आदि देशों के सब पहाड़ी राजाओं को जीतकर और उनसे धन लेकर उलूकवासी राजा बृहंत के देशमें गया और उस देशको मृदंगों के शब्द रथोंकी झंझना-

हट और हाथियों की चिग्घारसे कंपित कर दिया राजा बृहंत उसको सुनकर अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर शीघ्र नगर के बाहर चला आया और अर्जुन से युद्ध करने लगा पहिले तो उन दोनों में बड़ा युद्ध हुआ परन्तु अन्त में राजा बृहंत अर्जुनके पराक्रम को न सहकर और उसको अत्यन्त पराक्रमी जानकर बहुतसे रत्न लेकर अर्जुन के समीप चलाआया अर्जुन ने वे रत्न ले लिये और उस राजा को उसके राज्यपर स्थापित करके उलूक सहित आगेको गया और राजा सेनाबिन्दुको युद्धमें पराजय किया १ । १० इसके पीछे अर्जुन ने मोदापुर, वामदेव, सुदामा, सुशंकुल और उलूक आदि देशों के राजाओंको बुलाया और उनकी सहायता से पंचगण नाम देशों को विजय किया इसके पीछे उसने राजा सेनाबिंदु के देवप्रस्थ नाम नगरको जीता और वहां से सब राजाओंको साथ लियेहुये राजा विश्वगश्व पौरव के सम्मुख गया और युद्ध करके उसके अति रक्षित नगरको जीतलिया उसको जीतकर अर्जुन ने पर्वतवासी चोर और उत्सव संकेत नामी गणोंको विजय किया और वहां से चलकर काश्मीरी वीर क्षत्रिय और दशमंडल सहित लोहित को विजय किया उनके विजय होनेपर त्रिगर्त्त, दार्व और कोकनद आदि देशों के क्षत्रिय लोग अर्जुन के समीप चले आये फिर अर्जुन ने आगे चलकर अभिसारी नाम नगरी को जो बड़ी रमणीक थी और उरगावासी और रोचामान को विजय किया और वहां से सिंहपुर नाम नगर में जाकर जो चित्र आयुधों से रक्षित था युद्ध किया और वहां के राजाको जीतलिया ११ । २० इसके पीछे अर्जुन सेना सहित कुक्ष और चोलनाम देशों में गया और वहां के राजाओं को जीत कर वाह्लीक, काम्बोज और दरद देशों के राजाओं को विजय किया और वहां से ईशान दिशा की ओर जाकर उन चोरोंको जो वन में वहां रहा करते थे मारकर पराजय किया इसके उपरांत अर्जुन ने लोहपरम काम्बोज ऋषिक आदि उत्तर देशके राजाओं को विजय किया ऋषिक देशके राजा से अर्जुन तारकामय युद्ध के समान युद्ध हुआ अन्तमें ऋषिक देशी राजा हारगये और अर्जुन ने उन से आठ घोड़े जिनका वर्ण तोते के उदरके समान और बहुतसे मोरकासा वर्ण रखनेवाले कर में लिये इसके पीछे अर्जुन हिमवंत और विष्कुट पर्वतवासी राजाओं को जीतकर श्वेतपर्वतपर गया और वहां जाकर ठहरगया २१ । २६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि सप्तविंशोऽध्यायः २७ ॥

अट्ठाईसवां अध्याय।

अर्जुन का संपूर्ण उत्तर दिशाको जीतकर इन्द्रप्रस्थको आना और युद्ध में लाये हुये पदार्थों को युधिष्ठिर को निवेदन करना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! अर्जुन श्वेत पर्वत से चलकर किम्पुरषावास देशको गया और वहां द्रुमके पुत्रको बड़ा युद्ध करके जीतकर उससे कर लिया और फिर आगे चलकर हाटक नाम देशको जो गुह्यक से रक्षित था सत्वसे जीतलिया और वहांसे मानसरोवर पर पहुँचा जहां अनेक मुनियोंके आश्रम थे वहां से चलकर अर्जुनने गंधर्वों के देशको विजय किया और गन्धर्वों से तित्तिर, कल्माप और मंडूक नामी घोड़े कर में लिये उपरान्त वहां से भी आगे चला और हरिवर्ष में पहुँचकर उस देशको जीतना चाहा उस समय अर्जुन के पास वहांके द्वारपालक जो बड़े पराक्रमी और दीर्घकाय थे आये और कहने लगे कि यह नगर मनुष्यों से किसी प्रकार से नहीं जीता जासक्ता है तुम अपना कल्याण चाहो तो अब लौट जावो क्योंकि इस नगर में जो घुसता है वही मरजाता है हम तुमसे प्रसन्न हैं इससे तुम अपनी जीतही समझो १ । १० यह देश उत्तर कुरुदेश कहलाता है यहां युद्ध नहीं होता है और न कोई पदार्थ इस देशमें जाने से दिखलाई देता है जिसको जीत कर लिया जावै मनुष्य देह से कोई मनुष्य यहां के पदार्थों को नहीं देखसक्ता है इससे जिस बात की तुमको इच्छा हो सो हमसे कहो हम तुम्हारी इच्छाको पूरी करेंगे यह सुनकर अर्जुन बोले कि हम राजा युधिष्ठिरका साम्राज्य किया चाहते हैं सो हम तुम्हारे कहने के अनुसार इस देशमें प्रवेश नहीं करेंगे परन्तु तुम हमको युधिष्ठिर के लिये कर दो यह सुनकर उन द्वारपालकों ने अर्जुनको दिव्य वस्त्र दिव्य आभरण दिव्य मणि और मृगचर्म आदि दिये अर्जुन उनको और अन्य नाना प्रकारके रत्न और घोड़ोंको जो उसने सम्पूर्ण उक्त राजाओं से करमें लिये थे लेकर सम्पूर्ण उत्तरदिशाको विजय करके और राजाओंको सदैव कर देने के नियम में स्थिर करके इन्द्रप्रस्थको लौट आया और सब लाये हुये पदार्थों को राजा युधिष्ठिर को देदिया और युधिष्ठिर से आज्ञा पाकर अपने घर में चलागया ११ । २१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि अष्टविंशोऽध्यायः २८ ॥

उन्तीसवां अध्याय।

भीमसेनका पूर्वदिशाको विजय करना और चंदेरी के राजा से कर लेकर आगे को जाना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जिस समय अर्जुन उत्तर दिशाको गया था उसी समय बलवान् भीमसेन युधिष्ठिर से आज्ञा पाकर अपने साथ बड़ी भारी हाथी घोड़े और रथों सहित सेनाको लेकर पूर्वदिशाको गया था उसने पहिले पांचालदेशके राजाओंको अनेक उपायों से वशमें किया उपरांत गण्डक, विदेह और दशार्ण देशों के राजाओं को विजय किया दशार्ण देशका राजा सुधर्मा नामी था उसने विना शस्त्र के भीमसेन से बड़ा युद्ध किया परन्तु भीमसेनने उसको विजय किया और उसके बलको देखकर उसे अपना सेनापति बनाया इसके पीछे भीमसेन पूर्वदिशामें आगे गया और अश्वमेध देशके रोचमान नाम राजाको सहायकों सहित विजय किया उसको जीतने के पीछे भीमसेनने सम्पूर्ण पूर्वदिशाको बड़ी सुगमतासे विजय करलिया और वहांसे दक्षिणकी ओर जाकर पुलिन्दनामी बड़े नगर को और सुमित्र और सुकुमारनामी राजाओंको वशमें किया १। १० भीमसेन वहां से चलकर युधिष्ठिर की आज्ञा से चंदेरी देशमें गया वहां का राजा शिशुपाल उसके आने की खबर पाकर बाहर चला आया और भीमसेन से आदरपूर्वक मिला और दोनोंने आपसमें क्षेम कुशल पूछकर चंदेरी के राजाने अपना राज्य भीमसेनको निवेदन किया और पूछा कि तुम दिग्विजय क्यों करते हो यह सुनकर भीमसेनने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ करने का वृत्तान्त कहा उसको सुनकर राजा शिशुपालने भीमसेनको कर देदिया और वह वहां तेरह दिन रहकर शिशुपाल से सत्कृत होकर सेना सहित आगे को चला ११। १६॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि एकोनत्रिंशोऽध्यायः २९॥

तीसवां अध्याय।

भीमसेनका दिग्विजय करके बहुतसा धन लेकर इन्द्रप्रस्थ को लौटना और सब द्रव्य युधिष्ठिर को निवेदन करदेना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भीमसेन चंदेरीसे चलकर कुमार और कोशलादेशोंमें गया और वहांके श्रेणिमन्त और बृहद्बल नाम राजाओंको जय किया वहांसे वह अयोध्यामें पहुँचा और वहां के दीर्घयज्ञ नामी राजाको सुग-

मतासे जीतलिया इसके पीछे भीमसेनने आगे चलकर गोपालकक्ष और उत्तर कोशल देशोंको विजय किया और मल्लों के स्वामी राजाको भी पराजय किया वहांसे भीमसेन हिमालयके पार्श्व में चलागया वहांके सम्पूर्ण जलोद्भव देशों को थोड़ेही कालमें अपने वशमें किया इस प्रकारसे भीमसेनने बहुतसे देशोंको विजय करके शुक्तिमंत नामी पहाड़को जो भल्लाट के समीप है विजय किया वहांसे चलकर उसने काशी के सुबाहु नामी राजाको जो युद्ध से विमुख नहीं होता था युद्ध करके पराजय किया और सुपार्श्व के समीप रहनेवाले क्रथ नाम बड़े पराक्रमी राजाको जीतकर मत्स, मलद, अनघ, अभय और पशुभूमि आदि देश और मदधार पहाड़पर रहनेवाले राजाओं को युद्ध कर २ के अपने वश में किया इनको जीतकर भीमसेन उत्तर की ओर चलदिया और वहां वत्सभूमि और भर्ग निषाद और मणिमत आदि बहुत से राजाओं को विजय किया १ । ११ वहां से चलकर उसने दक्षिण मल्ल और भोगवन्त पर्वतको सुगमतासे विजय किया और शर्मक वर्मक राजाओं को सांत्वनापूर्वक जीतकर आगे को गया और जनकवंशी जगतीपति और वैदेहिक राजाओं को जीत-कर शक और वर्षकों को थोड़े ही प्रयास से विजय करलिया और वहां से वैदेह देश में इन्द्रपर्वतके समीप जाकर किरातों के सात राजाओं को अपने वश में किया इसके पीछे भीमसेन, सुह्य, प्रसुह्य और सपक्षों को जीतकर मगधदेश को गया और वहां के दण्ड और दण्डधार राजाओं को जीतकर गिरिव्रज देश में पहुँचा और वहां के राजा सहदेव नामी जरासन्ध के पुत्र से सांत्वनापूर्वक वचन कहकर दण्ड लिया और उसको और दंडधार राजाओं को साथ लेकर सेना सहित कर्णपर चढ़गया और उसको घोर युद्धपूर्वक जीतके पहाड़ी राजाओं को अपने वश में किया १२ । २० इसके पीछे भीमसेन ने मेदागिरिके सब बली राजाओं को बाहुबल से मारडाला और पुंड्र देश के राजा वासुदेव और कौशिकीकच्छ में रहने वाले राजाओं को जो बड़े परा-क्रमी थे युद्ध में जीतकर राजा वंग के सम्मुख चलागया और समुद्रसेन, चन्द्र-सेन, ताम्रलिप्त, कर्वट देश के राजा सुह्य और सागर में रहनेवाले सब म्लेच्छों के गणों को विजय किया इस प्रकार से भीमसेन बहुत से देशों को जीतकर और वहां के राजाओं से दण्ड लेकर लौहित को गया और वहां से सागर और अनूप देशों में जाकर वहां के म्लेच्छ राजाओं को विजय किया और

सबसे कर लिया उन राजाओं ने भीमसेन को चन्दन, अगरु, वस्त्र, मणि, मोती, कम्बल, दुशाले, सोना, चांदी और मूंगा आदि कोटिन रत्न दिये भीमसेन उनको लेकर इन्द्रप्रस्थ को लौट आया और सब धन युधिष्ठिर को निवेदन करदिया २१। ३०॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि त्रिंशोऽध्यायः ३०॥

इकतीसवां अध्याय।

सहदेवका संपूर्ण दक्षिण दिशा को विजय करके इन्द्रप्रस्थ लौटकर आना और सब लाये हुये धनको युधिष्ठिर को निवेदन करना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! अब हम सहदेवकी दिग्विजय का वृत्तांत कहते हैं जो राजा युधिष्ठिर की आज्ञा से चतुरंगिणी सेना लेकर दक्षिण दिशाको गया था उसने पहिले शूरसेन और मत्स्य देशके राजाओं को युद्ध करके वश में किया फिर राजा दंतवक्र को जो सब राजाओं का अधिपति था जीता और उससे कर देनेका निबंध करके फिर उसे राजगद्दीपर बैठादिया और सुकुमार, सुमुनि और पटच्चरों सहित मत्स्यों को विजय किया वहां से चलकर सहदेव ने निषाद भूमि गोशृंग पर्वत और राजा श्रेणिमंतको पराजय किया और नाराष्ट्र देशको जीतकर कुंतिभोजके समीप गया उसने सहदेव के शासन को अंगीकार किया फिर वहां से चलकर चर्मरावती नदी के किनारे पहुँचा जहां जंभक का पुत्र जिसको वासुदेवजीने पहिले मारते २ छोड़ दिया था राजा था सहदेव उसको युद्ध में जीत उससे कर लेकर दक्षिण दिशा को चलदिया वहां उसने युद्ध करके सेकों और अपरसेकों से कर लिया और उनको साथ लेकर नर्मदा नदीके समीप पहुँचा वहां उसने अवंति देशके विंद और अनुविंद नाम राजाओं को विजय किया और वहां से रत्नादिक लेकर भोजकट नाम नगरको गया वहां सहदेव से राजाओं ने दो दिन बराबर युद्ध किया उपरांत उसने राजा भीष्मक, राजा कोशला, राजा वेणुतट, राजा कांतार, पूर्व कोशला देशके राजालोग, नाटक के राजा, राजा हेरंबक, राजा मारुध, राजा रम्यग्राम, राजानीच और राजा आनर्बुक आदिको युद्धमें पराजय किया १।१४ फिर उसने आटविक नाम राजाओं को जीतकर राजा वाताधिप को अपने वशमें किया और राजा पुलिंदको विजय करके दक्षिण ओर को चलागया वहां एक दिन राजा पांडुसे युद्ध हुआ सहदेव उसे जीतकर किष्किन्धा नाम

गुफाके समीप पहुँचा और वहांपर वानरों के मयन्द और द्विविद नाम राजाओं से सात दिनतक युद्ध हुआ उपरांत उन दोनों वानरोंके राजाओं ने सहदेव से प्रसन्न होकर कहा कि लो ये संपूर्ण रत्न लेकर तुम चलेजावो हमको युधिष्ठिर के यज्ञ में विघ्न करना अभीष्ट नहीं है १५ । २० यह सुनकर सहदेव रत्न लेकर माहिष्मती पुरीको चलागया और वहां उससे राजा नीलसे बड़ा भयानक सेना का क्षय करनेवाला और प्राणोंको संशय देनेवाला युद्ध हुआ अग्निदेव ने उस युद्ध में राजा नीलकी सहायता की और युद्ध करते २ एक साथ सहदेव की सेनाके रथ घोड़े और हाथी जलने लगे सहदेव यह देखकर संभ्रान्तमन होगया और उसको कुछ न कहसका २१ । २५ यह सुनकर राजा जनमेजय ने वैशंपायनजी से पूछा कि महाराज सहदेव तो अग्निमें ही यज्ञ करने के लिये यत्न कर रहाथा फिर किस कारणसे अग्नि ने सहदेव की सेना को जलाया था यह सुनकर वैशंपायनजी बोले कि हमने सुना है कि अग्निदेव माहिष्मती पुरी में पहिले से परदाररत थे अर्थात् राजा नील के एक बड़ी स्वरूपवती कन्या थी राजा उसको अग्निहोत्र के समय अपने पास लेकर इस कारण से बैठाकरता था कि जबतक वह कन्या अपने होठों से फूंक नहीं मारती थी तबतक पंखे की भी वायु से अग्नि नहीं जलती थी अग्निदेव उस कन्याके स्वरूप पर कामासक्त होगये और एक दिन सुन्दर ब्राह्मणका स्वरूप धरकर उस कन्यासे रमण करने की इच्छा से कहा कि मेरे साथ संग कर उस कन्याने वह अंगीकार किया और अग्निदेव उसके साथ रमण करने लगे एक दिन राजाने अग्निदेव को उस कन्या से ब्राह्मणस्वरूप से रमण करते हुये देखलिया और उनको केवल ब्राह्मण जानकर आज्ञा दी कि इसको शास्त्र के अनुसार दण्ड दो यह देखकर अग्निदेव प्रज्वलित स्वरूप होगये राजा उनके स्वरूप को देखकर डरगया और दंडवत् प्रणाम करने लगा और समय के आनेपर उस कन्या का विवाह अग्निदेव के साथ करादिया २६ । ३२ अग्निदेव उस कन्या को पाकर बहुत प्रसन्न हुये और राजा नील पर कृपा करके कहने लगे कि जो कुछ इच्छा हो सो वरदान मांगो यह सुनकर राजा नील ने कहा कि महाराज मेरी सेनाको किसीका भय न रहै अग्निदेवने राजा को वह वरदान देदिया और उस समय से जो कोई राजा विना जाने उस पुरी को जीतने की इच्छा से जाता है उसको सेना सहित अग्निदेव भस्म

कर देते हैं अग्निदेव ने वहां की स्त्रियों को यह वरदान दिया कि यहां की सब स्त्रियां आज से स्वैरिणीकी तरह स्वेच्छाचारिणी रहैं तब से वहां की स्त्रियां स्वैरिणी रहती हैं और राजालोग अग्नि के भय से उस पुरीके विजय करने को नहीं जाते हैं सो हे जनमेजय ! सहदेव अपनी सेना को अग्नि में जलतीहुई देखकर कम्पित नहीं हुआ किन्तु शुद्ध होकर आचमन करके अग्नि की स्तुति करने लगा ३४ । ४० कि हे अग्निदेव ! मैं तुमको नमस्कार करता हूं मैंने यह विजय करनेकी इच्छा तुममेंही यज्ञ करने के लिये की है तुम देवताओंका मुख और यज्ञ हो तुम्हारा नाम पवित्र होनेके कारण से पावक और हव्यको धारण करने से हव्यवाहन है और तुम्हारेही अर्थ वेदोंके प्रकट होनेसे तुमको जातवेदस कहते हैं तुम्हारे नाम चित्रभानु, सुरेश और अनल भी हैं तुम स्वर्गके द्वारके देनेवाले हुतके भोजन करनेवाले और ज्वलनस्वरूप हो तुम्हीं वैश्वानर पिंगेश और प्लवंग हो और स्वामिकार्त्तिक को उत्पन्न करनेवाले रुद्र गर्भ और सुवर्ण उत्पन्न करनेवाले हो हे अग्निदेव ! तुम मुझको अपना तेज दो वायु मुझको प्राण दे पृथ्वी बल दे और जल कल्याण देवे सो हे अग्निदेव ! हे जलगर्भ ! हे पराक्रमी ! हे जातवेदस ! हे देवेश ! हे अग्नि ! मुझको पवित्र करो तुम ब्राह्मण, देवता, ऋषि और असुरों के यज्ञका कारण हो तुम धूमकेतु, शिखि, पापनाशक, सब प्राणियोंमें स्थित और वायुसे प्रकट होनेवाले हो मुझको अपने सत्य से पवित्र करो हे महाराज ! मैं प्रीतिपूर्वक आपकी स्तुति करता हूं आप मुझे बुद्धि, प्रीति, ज्ञान और सुख दीजिये वैशम्पायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय ! सहदेव ने इस आग्नेय मन्त्राष्टक से अग्नि की स्तुति की जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर इन मन्त्रों से अग्नि में हवन करता है उसके सब पाप दूर होजातेहैं ४१ । ५० स्तुति करने के पीछे सहदेव अग्निदेवसे बोला कि आपको यज्ञमें विघ्न करना योग्य नहीं है और फिर सेना के मुखपर कुशका आसन बिछाकर विधिपूर्वक बैठगया यह देखकर अग्नि आगे को इस प्रकार से नहीं बढ़ी जैसे समुद्र अपनी मर्यादा से आगे को नहीं बढ़ता है और फिर अग्निदेव ने उसके पास आकर सांत्वनापूर्वक धीरेसे कहा कि हे सहदेव ! उठ खड़ा हो मैं तेरे और युधिष्ठिर के अभिप्राय को जानता हूं परन्तु इस पुरी की रक्षा करना मुझको उस समय तक अवश्य है जबतक राजा नील का यहां वंश रहेगा तू उठ मैं तेरी मनोकामना को पूरा करूंगा यह सुनकर सहदेव

प्रसन्न हुआ और हाथ जोड़कर नम्रता से उसने अग्नि का पूजन किया इस पर अग्नि निवृत्त होगई और अग्निदेव की आज्ञासे राजा नील सहदेव के पास आया और उसकी सत्कार सहित पूजा की इसके पीछे सहदेव उससे कर लेकर दक्षिण दिशाको चलदिया और त्रैपुर पौरवेश्वर और प्राकृत कौशिकाचार्य को अपने वशमें किया ५१। ६१ इसके पीछे सहदेव ने सुराष्ट्र देश के राजा को जीता और उस देश में भोजकटपुर के राजा रुक्म और राजा भीष्मक के पास जो इन्द्रका मित्र था अपना दूत भेजा उन दोनों ने श्रीकृष्णजी के प्रभावको समझकर उसके शासनको अंगीकार किया इसके पीछे सहदेवने शूर्पारक, तालाकटक, दंडक, सागर द्वीपवासी राजा जो म्लेच्छयोनि से उत्पन्न निषाद, पुरुषाद, कर्ण, प्रावरण, कालमुख जिनकी उत्पत्ति नर और राक्षस से है, कोलगिरि, सुरभीपट्टन, ताम्राह्वयद्वीप, रामाकपर्वत, तिमिंगिल, एकपादपुरुष, केरलवनवासी, संजयंती नगरी, पाषंड, करहाटक, पांड्य, द्रविड़, उड्र, अंध्र, तालवन, कलिंग, उष्टिकर्णिक, आटवी नाम रम्य पुरी और यवनोंके नगर आदि देशोंके राजाओं को विजय किया और सबसे दंड लेकर कच्छदेश को चलागया और वहां से पुलस्त्यवंशी राजा विभीषणके पास अपना दूत भेजा विभीषणने उसके शासनको प्रीतिपूर्वक अंगीकार किया और उस बातको होनहार जानकर और कुछ नहीं किया इसके पीछे सहदेव विभीषण के भेजेहुये नानाप्रकार के रत्न, चन्दन, अगर, दिव्य आभरण, बड़े मोलवाले वस्त्र और मणि आदि को लेकर और सब राजाओं को कर देने के नियम में स्थापित करके वहांसे लौटकर इन्द्रप्रस्थ को आया और सब धन युधिष्ठिर को निवेदन करके सुखपूर्वक रहनेलगा ६२। ७८॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि एकत्रिंशोऽध्यायः ३१॥

बत्तीसवां अध्याय।

नकुल का पश्चिम दिशाको विजय करना और वहांसे लाये हुये धनको युधिष्ठिर को दे देना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! अब नकुलके पश्चिम दिशा के विजय करने का वृत्तान्त सुनो इस दिशा को पिथ्या वासुदेव ने भी विजय किया था नकुल राजा युधिष्ठिर से विदा होकर अपने साथ बड़ी भारी सेना लिये हुये पश्चिम दिशाको चल दिया उसकी सेना में योद्धाओं की गर्ज

और रथोंकी झंझनाहट से बड़ा भयानक शब्द होता था पहिले वह रोहीतक पर्वत पर जो धनयुक्त रमणीक गौओं से शोभित और कार्त्तिकेयजीका प्रिय स्थान था पहुँचा वहां उससे मत्तमयूर नाम शूरवीरों से बड़ा युद्ध हुआ अन्त में उसने उन दोनों को और मरुभूमि शैरीषक और महेत्थ पहाड़ों के राजाओं को जीतकर वश में किया इसके पीछे नकुलने बड़ा युद्ध करके आक्रोश नाम राजऋषि को वश में किया और दशार्ण नाम देशों के राजाओं को विजय करके वह आगे चलागया और शिवी, त्रिगर्त, अम्बष्ठ, मालव, पंचकर्पट, मध्यमकेय, वाटवधान और द्विजों को जीतकर उसने पुष्करवनवासियों को अपने वशमें किया और वहां से चलकर उसने उत्सवसंकेत नाम गण समुद्र के किनारे बसनेवाले ग्रामणीय अभीर गण जो सरस्वती के किनारे पर बसते थे और मत्स्यदेशके राजाओंकी आज्ञामें रहते थे और सब पर्वतवासी राजाओं को विजय किया १। १० और वहांसे आगे बढ़कर पंचनद अर्थात् पंजाब देश और अमर पर्वत और उत्तर ज्योतिष देश और कटपुर के राजाओं को वशमें किया और रामठ, द्वारपाल, हारहूण आदि पश्चिमदेशी राजाओं को जीत कर वासुदेवजीके पास अपना दूत भेजा उन्होंने नकुल के शासनको अंगीकार किया और वह वहां से चलकर शाकल मद्र देशों की राजधानी पुरभेदन नाम नगर में पहुँचा और प्रीतिपूर्वक अपने मामा राजा शल्यको वशमें किया और वहां से सादर सत्कार पाकर शल्यके दिये हुये रत्नोंको लेकर समुद्रकी ओर मुड़पड़ा और वहांके रहनेवाले म्लेच्छ, पल्हव, वर्बर, किरात, यवन और शकों को विजय करके दशसहस्र ऊंटोंपर रत्न आदि पदार्थों को लादकर इन्द्रप्रस्थ को लौट आया और सब धन युधिष्ठिर को निवेदन करदिया हे राजा जनमेजय! इस प्रकारसे नकुल वासुदेव से निर्जित पश्चिम दिशा को विजय करके अपने घर लौट आया ११। २०॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि द्वात्रिंशोऽध्यायः ३२॥

तेंतीसवां अध्याय।

युधिष्ठिर का यज्ञ की सब सामग्री मँगाकर यज्ञ करने को दीक्षित होना और सब राजा और ब्राह्मण आदि को निमन्त्रण भेजना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! युधिष्ठिरके प्रजापालन सत्य और शत्रुओंके नाश करने से सब प्रजा अपने २ कर्मों को करने लगी और धर्म के

अनुसार शासन करने और कर लेने से मनमानती वर्षा होने लगी कि उसके कारण से उसके राज्यमें बड़ी वृद्धि हुई लोग गौओं की रक्षा खेती और व्यापार को अच्छे प्रकार से करने लगे और उसके राज्य में चोर ठग और राजवल्लभ अर्थात् मंत्री आदिका परस्पर मिथ्या उपचार सुनने में नहीं आया और वर्षा न होना अथवा अत्यन्त वर्षा होना और आग लगना आदि उपद्रव स्वप्न हो गये और राजालोग युधिष्ठिर के पास कर देने अथवा उसका प्रियकाम करने या पास बैठने को आया जाया करते थे कभी कोई राजा युद्ध आदि की इच्छा से नहीं आता था और धर्मसे लायेहुये धनसे युधिष्ठिरका खजाना इतना बढ़गया कि सैकड़ों वर्षोंमें भी वह खर्च नहीं होसक्ता था जब युधिष्ठिरने अपने कोष को धन धान्य और वस्त्र से इतना बढ़ा हुआ देखा तब उसने यज्ञ करने का विचार किया और उसके सब सुहृदों ने भी उसे यही सम्मत दिया कि अब तुम्हारे यज्ञ करने का समय है उसी समय वहां श्रीकृष्णजी भी जो ऋषि पुराण और वेदों के आत्मा, जगत्कारण, जगन्मय, जगदीश, अव्यय, केशी दैत्यके मारने वाले, १।११ यादवों की रक्षा करनेवाले, आपत्तिमें अभय करनेवाले, पुरुषोत्तम सब राज काज वसुदेवजीको सौंपकर रथमें बैठकर अपने साथ बहुतसी सेना और असंख्य धन लेकर इन्द्रप्रस्थमें आन पहुँचे और सब धन युधिष्ठिर को देदिया और उसका सब प्रकार से भराहुआ खजाना उस समुद्ररूपी धन के आने से परिपूर्ण होगया कि जिसके देखने से पांडवों के शत्रुओं के मन में शोक उत्पन्न होगया और पुरवासी श्रीकृष्णजीको आयाहुआ देखकर इस प्रकारसे उत्पन्न हुये जैसे सूर्य और वायुरहित स्थानसे निकलेहुये को सूर्य के दर्शन और वायु के स्पर्श से सुख होता है युधिष्ठिरने श्रीकृष्णजीसे आदर सहित मिलकर और यथायोग्य सत्कार करके कुशल क्षेम पूछी उपरांत बैठने पर व्यासजी और धौम्य आदि ऋत्विज यथा भीम और अर्जुन आदि भाइयों सहित उनसे कहने लगे कि हे श्रीकृष्णजी ! आपकी कृपा से सब पृथ्वी मेरे वश में है और धन भी बहुत सा इकट्ठा होगया है अब मेरी इच्छा उस सब धनको विधिके अनुसार ब्राह्मणों और अग्नि के निमित्त देनेकी है इस कारण से मैं आपको और अपने छोटे भाइयोंको साथ लेकर यज्ञ किया चाहता हूं आप मुझको आज्ञा दीजिये और अपने को दीक्षित कीजिये आपके यज्ञ करने से मेरे सब पाप दूर हो जायँगे और जो आप की इच्छा न हो तो मुझे छोटे भाइयों सहित यज्ञ करनेकी आज्ञा दीजिये मैं ही

यज्ञ करूंगा १२।२२ यह सुनकर श्रीकृष्णजीने युधिष्ठिरकी प्रशंसा की और कहा कि इस साम्राज्य पदके देनेवाले राजसूय यज्ञको करना तुम्हींको उचित है तुम्हारे यज्ञ करने से हमभी कृतकृत्य हो जायँगे हम तुम्हारा कल्याण चाहनेवाले हैं इससे हम तुम्हारे पास स्थित हैं तुम अपनी इच्छाके अनुसार यज्ञ करो और हमको भी कोई काम बताओ हम तुम्हारी आज्ञा के अनुसार तुम्हारा काम करेंगे यह सुन कर युधिष्ठिर बोले कि मुझको आपके आने से निश्चय विश्वास होगया कि मेरा संकल्प सुफल और यज्ञ सिद्ध होगा वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे श्रीकृष्णजीसे आज्ञा पाकर राजा युधिष्ठिर यज्ञकी सब चीजें इकट्ठा करने लगे सहदेव को मंत्रियों सहित यज्ञकी सामग्री संचय करने की आज्ञा देकर कहा कि तुम जो जो सामग्री धौम्य ऋषि कहैं सो सो लेआवो और इन्द्रसेन विशोक और पुरु नाम सारथी इनको आज्ञा दी कि तुम सब अन्न रस और गंधमय चारों प्रकारके भोजन जो ब्राह्मणों को अच्छे लगते हैं इकट्ठा करो २३। ३१ इसके पीछे सहदेव ने आकर युधिष्ठिर से कहा कि यज्ञकी सब सामग्री आगई तब व्यासजीने मूर्तिमान् वेदोंकी तुल्य ब्राह्मण और ऋत्विजों को बुला लिया उस यज्ञमें व्यासजी आप ब्रह्मा और धनंजयगोत्री सुसामा ऋषि सामवेदी और याज्ञवल्क्यजी अध्वर्यु और वसुका बेटा पैल और धौम्य ऋषि होता और इन सबके पुत्र और शिष्य होत्रिक हुये उन सबों ने तब वेदविधि के अनुसार पुण्याहवाचन पढ़ा और ऋत्विजोंने उस यज्ञ स्थानमें शिल्प विद्या जाननेवालोंसे अर्थात् संगतराशोंसे विधिके अनुसार कुण्ड और वेदी और देवताओं के स्थानोंके सदृश सुगंधित स्थान बनवाये इसके पीछे युधिष्ठिरने सहदेव को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम जल्दी चलनेवाले दूतोंको भेजकर न्योता भेज दो सहदेवने यह आज्ञा पाकर दूतों को बुलाया और कहा कि तुम सब देशों में जा जाकर ब्राह्मण राजा लोग वैश्य और मान्यशूद्रोंको निमन्त्रण देकर सबको बुलावा देआवो ३२। ४१ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! वे दूत आज्ञा पाकर तुरन्त चल दिये और थोड़ेही काल में न्योता देकर लौट आये इसके पीछे समय के आनेपर ब्राह्मणों ने राजा युधिष्ठिर को यज्ञ करने के लिये दीक्षा दी और वह दीक्षित होकर सहस्रों ब्राह्मण, अपने सब भाई, जातिवाले, सुहृद्, मंत्री और नानादेशों से आयेहुये क्षत्रिय और राजाओं सहित यज्ञशालाको गया सब विद्याओं में परिपूर्ण और वेदांगों के जाननेवाले ब्राह्मणलोग

वहां अनेक २ देशों से आकर इकट्ठे हुये शिल्पियों ने उनके लिये राजा की आज्ञा से पृथक् २ ऐसे स्थान बना दिये जिनमें सब ऋतुओं में सुख रहे और उन सब स्थानों में अन्न और वस्त्र आदि सब आवश्यक पदार्थ रखवा दिये गये ब्राह्मणलोग उन स्थानोंमें अनेक २ कथा कहते और नट आदि नाचनेवालों की कृत्य अर्थात् तमाशा देखते हुये रहनेलगे ब्राह्मणों के खाने बोलने और प्रसन्न होने में बड़ा भारी शब्द होने लगा जहां देखो तहां यही सुनाई देताथा इनको दो उनको दो भोजन करो राजा युधिष्ठिर ने उस यज्ञ में गोशयन और सुवर्ण की स्त्रियां एक लाख पृथक् २ दान कीं और वह यज्ञ इस पृथ्वीपर ऐसा हुआ जैसा इन्द्रका यज्ञ स्वर्ग में हुआ था इसके पीछे युधिष्ठिर ने नकुल को भीष्म, द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र, विदुर, कृपाचार्य और सब भाइयों को हस्तिनापुर जाकर लाने की आज्ञा दी ४२ । ५५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३ ॥

चौंतीसवां अध्याय ।

निमंत्रण पानेपर युधिष्ठिरके यज्ञमें सहस्रों ब्राह्मणों और राजाओंका आना और राजा युधिष्ठिरका उनको सुंदर घरोंमें टिकाकर सत्कार करना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर नकुल हस्तिनापुर को गया और भीष्म और धृतराष्ट्र आदि को निमंत्रण दिया तब वहां से द्रोणाचार्य आदि सबलोग ब्राह्मणोंको आगे करके यज्ञशाला को चल दिये और सैकड़ों मनुष्य यज्ञकी खबर पा पाकर प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रप्रस्थ में चले आये और बहुतसे क्षत्रियलोग युधिष्ठिर और उसकी सभाको देखने के लिये वहां पर आये और राजा धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, दुर्योधन आदि सब भाई सुबल, शकुनि, अचल, वृषक, कर्ण, शल्य, वाह्लीक, कौरव, सोमदत्त, भूरिभूरिश्रवा, शल, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, राजा जयद्रथ, यज्ञसेन, राजा शाल्व अपने पुत्र सहित राजा भगदत्त, पहाड़ी सब राजा जिनके साथ सागर और अनूपवासी म्लेच्छभी थे, राजा बृहद्बल, पौंड्रक, वासुदेव, वंगदेश का राजा, कलिंगदेश का राजा आकर्ष, कुंतल, मालवदेश के राजा लोग, आंध्रक, १ । ११ द्राविड़, सिंहल, राजा काश्मीरका, राजा कुंतिभोज, राजा गौरवाहन, वाह्लीकदेशके राजालोग, दोनों पुत्रों सहित राजा विराट, मावेल्ल, नाना देशके राजालोग और राजपुत्र, पुत्र सहित राजा शिशुपाल, बलदेवजी,

अनिरुद्ध, सारण, कंक, गद, प्रद्युम्न, साम्ब, चारुदेष्ण, उल्मुक, मिषठ, आगावह और वृष्णिवंशी और मध्यदेशवासी राजा लोग अनेक २ प्रकार के रत्न ले लेकर उस युधिष्ठिर के यज्ञमें आये राजा युधिष्ठिरने उन सबका सत्कार यथा योग्य किया और उन सबको पृथक् २ घर रहनेको बता दिये जिनमें कुयें खुदे हुये और वृक्ष लगे हुयेथे और अनेक प्रकार की भोजन की सामग्री रक्खी हुईथी राजा लोग युधिष्ठिर से सत्कार पाकर उन घरोंमें जा टिके ये घर कैलासके शिखरके समान इतने ऊंचे थे कि चार कोस से अच्छे प्रकारसे दिखाई देते थे और सुडौल बने हुये द्रव्य से भूषित और सुवर्ण के जालों से अंकित थे पृथ्वी अर्थात् फर्श उन घरोंका मणिजटित था ऊपर चढ़नेको सुन्दर सीढ़ियां बनी हुई थीं और बड़े २ बिछौने को आसन और फूल माला और अगर आदि सुगंधित पदार्थ वहां स्थापित थे रंग उन घरोंका हंस और चन्द्रमाकी समान श्वेत था सब अंग उनके अनेक २ धातुओं से जटित थे मनुष्योंको वहां रहने से किसी बात की पीड़ा नहीं होती थी राजा लोग उन घरों में विश्राम करके राजा युधिष्ठिर को जो बहुतसे सदस्यों सहित यज्ञशाला में बैठा हुआ था देखने को गये और वह सभा उन सब राजा महर्षि और ब्राह्मणोंसे ऐसी शोभायमान होगई जैसे स्वर्ग देवताओं से सुशोभित होता है १२ । २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४ ॥

पैंतीसवां अध्याय ।

युधिष्ठिरका पृथक् पृथक् कामोंपर पृथक् पृथक् मनुष्यों को नियत करके यज्ञ करना ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! सब ब्राह्मण और राजालोगों के जुड़ने पर युधिष्ठिर अपने बाबा भीष्म और गुरु द्रोणाचार्य के पास गया और दंडवत् करके उनसे और कृपाचार्य दुर्योधन और विविंशतिसे कहा कि आप लोग मेरे ऊपर अनुग्रह करके ऐसा काम कीजिये जिससे मेरा कल्याण होवे यह कहकर युधिष्ठिरने उन सबको पृथक् २ अधिकारों पर नियुक्त किया अर्थात् खाने पीने के प्रबन्ध के लिये दुःशासन को ब्राह्मणों के परिग्रह के निमित्त अश्वत्थामा को राजाओं का सत्कार करने के लिये संजयको और बिना तैयार पदार्थों को देखने के लिये भीष्मजी और द्रोणाचार्य को रत्न और सुवर्ण आदि को देखने और दक्षिणा बांटने पर कृपाचार्य को और अन्य कामों पर और २

मनुष्यों को नियत किया और वाह्लीक, धृतराष्ट्र, सोमदत्त और जयद्रथ जिनको नकुल आप जाकर लायाथा वहांपर स्वामी अर्थात् मालिक की तरह रहने लगे उस यज्ञ में सब खर्च विदुरजी करते थे और जो भेंट राजालोग लाते थे उनको दुर्योधन लेता था और उत्तम फल पाने की इच्छा से श्रीकृष्णजी ब्राह्मणों के चरण धोते थे १ । १० युधिष्ठिरको किसी राजाने उस यज्ञ में एक सहस्र से कम भेंट नहीं दी और यह विचार करके कि किसी प्रकार हमारा यह कौरव कुल का राजा रत्नोंको दान देकर राजसूय यज्ञ करै सबोंने रत्न दे दे कर युधिष्ठिर के रत्नोंकी वृद्धि की और जो राजालोग ईर्षी थे उन्होंने भी धन भेंट किया उस समय युधिष्ठिर की सभा उन भवनों से जो रत्नरूपी ऋद्धि ब्राह्मण और बड़े बड़े लक्ष्मीवान् और प्रतापवान् राजाओं से भरेहुये थे और उनके ऊपर इन्द्र आदि लोकपालों के विमान छारहे थे अत्यन्त सुशोभित होगई तब युधिष्ठिरने जिसकी ऋद्धि वरुण के समान थी उस यज्ञ में स्थापित कीहुई छः अग्नियों में हवन किया और सब मनुष्योंको उनकी कामना के अनुसार तृप्त किया उस यज्ञमें इडाआज्य नाम होनकी आहुतियों के मंत्रोंको जाननेवाले महर्षियों के द्वारा सब देवता और दक्षिणा अन्न और बहुत धनके दानोंसे ब्राह्मण लोग और अन्य २ वर्ण के मनुष्य तृप्त होगये ११ । १६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि पंचत्रिंशोऽध्यायः ३५ ॥

छत्तीसवां अध्याय ।

राजा युधिष्ठिर का यज्ञस्नान करना और भीष्मजीके कहनेसे श्रीकृष्णजीको अर्घ देना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! अभिषेक अर्थात् यज्ञस्नानके दिन सत्कार के योग्य ब्राह्मण और राजालोग जो महाऋषि थे अन्तरवेदी के भीतर गये उस समय नारदादिक ऋषिलोग उन राजऋषियों के समीप अन्तरवेदी में बैठे हुये ऐसे मालूम होते थे मानो ब्रह्माजी के भवन में देवता और देवऋषि बैठे हुये हैं जब यज्ञस्नान होचुका तब ब्राह्मणलोग आपस में शास्त्र का विचार करनेलगे उनमें बहुत से ब्राह्मण जो वितण्डावादी थे कहने लगे कि यह ऐसेही है तुम कहते हो तैसे नहीं है दूसरे बोले कि यह अन्यथा नहीं होसक्ता है जैसे हम कहते हैं वैसेही है बहुत से ब्राह्मणों ने अनेक हेतु दिखाकर और शास्त्र का प्रमाण दे देकर प्रबल अर्थ को दुर्बल और

दुर्बल को प्रबल कर दिखाया बहुतसे पण्डितों ने अनेक अर्थ अनुमानसे ऐसे खैंचलिये जैसे आकाश में श्येन पक्षी मांस खैंचकर लेजाता है इस प्रकार से वे ब्राह्मणलोग जिनमें कोई कोई धर्म के अर्थों के और कोई कोई भाष्य आदि के जाननेवाले थे शास्त्रविनोद करते रहे और वह वेदी उन सबसे और महाऋषियों से ऐसी प्रकाशमान होगई जैसे आकाश तारागणोंके निकलने से होजाताहै और उस वेदीके पास युधिष्ठिर के बैठने पर कोई शूद्र या अव्रती मनुष्य नहीं जानेपाया नारदजी युधिष्ठिर की लक्ष्मी और यज्ञको देखकर प्रसन्न हुये १।१० उस समय नारदजीको क्षत्रियोंका समागम देखकर वह बात याद आई जो पहिले ब्रह्माजी की सभामें सब देवताओंके पृथ्वी पर अपने २ अंशसे अवतार लेनेके विषयमें हुईथी और विचार करनेलगे कि श्रीहरि भगवान् जो असुरों को नाशकरनेवाले और समर्थ हैं उन्होंने क्षत्रियोंके कुल में जन्म लियाहै उन्होंने देवताओंसे कहा था कि तुम सब जन्म लेकर परस्पर मारकर फिर स्वर्गमें चलेआना सो उस जगदीश्वरने देवताओं से उक्त रीतिसे कहकर आप यदुकुल में जन्म लिया है और उस वंश में इस प्रकार से लक्ष्मी सहित शोभायमान हैं जैसे नक्षत्रों से चन्द्रमा सुशोभित होता है जिस देवता को इन्द्रादिक सब देवता उपासना करतेहैं वही विष्णुभगवान् अब इस क्षत्रियकुल में प्रकट होकर सब क्षत्रियों को अपने रूपमें लय करना चाहते हैं यह बड़ा आश्चर्य है यह समझकर नारदजी उस यज्ञशाला में युधिष्ठिरके समीप बैठे हुये चिन्ता करने लगे कि ११।२१ इसी अवसर में भीष्मजी राजा युधिष्ठिर से बोले कि तुमको सब आयेहुये राजाओं की यथायोग्य पूजा करनी उचित है क्योंकि आचार्य, ऋत्विज्, श्वशुर आदि सम्बन्धी स्नातक ब्रह्मचारी मित्र और राजा इन छःको अर्घ देना और इनकी पूजा करना जो वर्षदिन पीछे अपने पास आवे तो उचितहै सो ये लोग तो हमारे पास बहुत दिनों में आये हैं इन प्रत्येक को तुम्हें अर्घ देना उचितहै और इनमें जो श्रेष्ठ और समर्थहैं उनको पहले अर्घ देना चाहिये यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि बहुत श्रेष्ठ है परन्तु अब आप यह बताइये कि इनमेंसे हम पहले अर्घ किसको दें आप किसको सबमें श्रेष्ठ जानतेहैं यह सुनकर भीष्मजी बोले कि हमारी समझमें श्रीकृष्णजी सबसे श्रेष्ठ हैं पहिले उनका पूजन होना उचितहै क्योंकि इन सबके बीच में श्रीकृष्णजी अपने तेज और पराक्रम से इस प्रकारसे प्रकाश कर रहे हैं जैसे ज्योतियोंमें सूर्य प्रकाश

करताहै और यह हमारी सभा उनके यहां होने से ऐसी प्रकाशित और प्रसन्न है जैसे सूर्य और वायु रहित स्थानमें रहनेवाला मनुष्य सूर्य के प्रकाश और वायुके स्पर्श से प्रसन्न होताहै इसके पीछे भीष्मजीकी आज्ञा से सहदेवने उठकर श्रीकृष्णजीको विधिपूर्वक अर्घ दिया और श्रीकृष्णजीने उसको अंगीकार किया परन्तु इस बातको चन्देरीका राजा शिशुपाल न सहसका और वह युधिष्ठिर और भीष्मपितामहके पास आकर श्रीकृष्णजी की निन्दा करने लगा २२।३२॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ३६ ॥

सैंतीसवां अध्याय।

राजा शिशुपालका श्रीकृष्णचन्द्रजीकी पूजा होना देखकर युधिष्ठिर भीष्म और श्रीकृष्णजी की निन्दा करना ॥

शिशुपाल बोला हे युधिष्ठिर ! तुमको इस वृष्णिवंशी कृष्णकी पूजा महात्मा राजाओं को छोड़कर राजाओं के समान करना उचित न था तुम राजा पांडुके पुत्र हो तुम्हारा यह आचार तुम्हारे योग्य न था तुम सब अभी बालक अर्थात् अज्ञानी हो धर्मकी गति बड़ी सूक्ष्महै और इस गंगापुत्र भीष्मको वृद्धावस्था के कारणसे शास्त्रका सिद्धांत स्मरण नहीं रहाहै भीष्मसे अधर्मी मनुष्यकी जो अपनी इच्छापूर्वक काम करताहै कौन ऐसा होगा जो निन्दा न करैगा वृष्णि-वंशियों में कोई राजा नहीं होताहै उसी वंशका यह कृष्ण भी है फिर राजाओं में उसकी पूजा राजाओं की तरह होना क्योंकर योग्य है जो तुमने कृष्ण की पूजा वृद्ध जानके की है तो उसके पिता वसुदेव के यहां होनेपर उसकी पूजा होना उचित न था जो कृष्ण को तुमने अपना प्रिय करनेवाला समझकर पूजा है तो भी उसकी पूजा होना न चाहिये क्योंकि राजा द्रुपद तुम्हारे सम्बन्धी मौजूद हैं और जो कहो कि श्रीकृष्ण आचार्य हैं तो द्रोणाचार्य के होतेहुये उसकी पूजा करना क्योंकर ठीक है यदि श्रीकृष्णको तुमने ऋत्विज् जानकर पूजा है तो व्यासजी के होतेहुये ऐसा करना तुमको कब उचित था १।९ हे युधिष्ठिर ! श्रीकृष्ण न ऋत्विज् है न आचार्य है न राजा है फिर किस कारण और प्रयोजन से तुमने भीष्म, अश्वत्थामा जो सब शास्त्रों में पण्डित है दुर्योधन, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, राजा भीष्मक, राजा रुक्म, राजा एकलव्य, मद्र-देश के राजा शल्य और कर्ण को जो परशुरामजी का शिष्य है और जिसने अपने पराक्रम से सब राजाओंको जीता है छोड़कर इसकी पूजा की है जो

तुमको कृष्णही की पूजा करनी थी तो हम सब को बुलाना क्या आवश्यक था हमने तुमको कर कुछ तुम्हारे भय या लोभ या तुमसे साम अर्थात् सुलह रखने के लिये नहीं दिया था केवल तुम्हारी प्रीति से और तुमको धर्ममार्ग में प्रवृत्त जानकर दिया था सो तुमने हम सबमें से एकको भी न मानकर कृष्ण की पूजा की १०।२० भला इस अपमान से बढ़कर और क्या होगा कि सब तिलकधारी राजाओं को तिरस्कार करके एक ऐसे मनुष्य की पूजा उन्हीं राजाओं में की जो राजचिह्नों से अत्यन्त हीन था हे युधिष्ठिर! संसार में तुम्हारा यश तो यह होरहाहै कि युधिष्ठिर बड़ा धर्मात्माहै परन्तु अब वह धर्म तुम्हारा कहां गया भला ऐसा कौन धर्मी होगा जो इसकी पूजा करेगा जिसने वृष्णि-वंश में उत्पन्न हो अपने राजाको मारा और जरासन्धको अन्यायसे मरवाया इससे हे युधिष्ठिर! हम जानते हैं कि अब तुम्हारी धर्मात्मता जाती रही और तुम कोकृपणता ने घेर लिया है सिवाय इसके जो तपस्वी पांडवों ने भय और कृप-णता के कारण से ऐसा भी किया तो हे कृष्ण! तुमको यह समझना उचित था कि मैं इस पूजा के योग्य हूं या नहीं तुमने पूजाके अयोग्य होनेपर इन कृपण पांडवों से अपनी पूजा क्यों कराई है तुम्हारा ऐसा अयोग्य करना ऐसा है जैसे निर्जन स्थानमें हविष्को कुत्तेका निडर होकर खाना इससे तुम यह न समझना कि राजाओं का अपमान हुआ है पांडवों ने पूजा के बहाने से यह तुम्हारी हँसी की है यह तुम्हारी पूजा होना इस प्रकार से है जैसे नपुंसक का विवाह करना अंधेको कुछ दिखाना और जो राजा नहीं है उसको राजा के समान पूजना हम युधिष्ठिर भीष्म और तुम तीनों को देख चुके ये तीनों जैसे हैं तैसे हैं यह कहकर शिशुपाल उस सभा में से उठकर अपने पक्षके राजाओं सहित बाहर चलागया २१।३१॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः ३७॥

अरतीसवां अध्याय।

राजा युधिष्ठिर का शिशुपाल को समझाना और भीष्मजी का श्रीकृष्णजीकी महिमा कहकर उनका पूजन होना योग्य बताना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! शिशुपाल के उठकर जाने पर राजा युधिष्ठिर उसके पास गया और सांत्वना के साथ कहनेलगा कि हे शिशु-पाल! तुमको ऐसा कहना उचित नहीं है परुष वचन बोलना बड़ा अधर्म और

निरर्थकहै तुम कहतेहो कि भीष्मजी धर्म नहीं जानते हैं यह बात कदापि नहीं है तुमको ऐसा अयोग्य अपमान करना उचित नहीं है देखो तुमसे बड़े २ बृद्ध राजालोग यहां बैठेहुये हैं जैसे वे श्रीकृष्णजी की पूजा में तर्क नहीं करते हैं ऐसेही तुमभी मत करो भीष्मजी श्रीकृष्णजी को तत्वपूर्वक जानते हैं तुम उनको उस प्रकार से नहीं समझते हो इतने में भीष्मजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! यह सांत्वना वचन कहने के योग्य नहीं है क्योंकि यह श्रीकृष्णकी पूजाको जो लोकके बृद्धतम हैं नहीं देख सकताहै जो क्षत्रिय युद्धमें क्षत्रियको जीतकर छोड़ देताहै वह हारेहुये का गुरु अर्थात् बड़ा होता है सो मैं इन सब बैठेहुये राजाओं मेंसे एकको भी ऐसा नहीं देखताहूं जिसको कृष्ण न जीतसकें ये श्रीकृष्ण अच्युतहैं इनका पूजन करना केवल हमको ही उचित नहीं है किन्तु ये तीनों लोकके पूज्यहैं श्रीकृष्णजीने बहुतसे श्रेष्ठ क्षत्रियोंको रणमें जीता है और सम्पूर्ण जगत् इन्हींके शरीरमें व्याप्त है १ । १० इसी कारण से हमने इनको सबसे श्रेष्ठ जानकर इनकी पूजा की है तुमको ऐसा कहना तुम्हारी बुद्धिके योग्य नहीं है हमने बहुत से ज्ञानियोंका सत्संग किया है और उन सबसे श्रीकृष्णजी के बालपनसे लेकर आज तकके चरित्र सुने हैं उन चरित्रोंको बहुतसे श्रेष्ठ पुरुष मानते हैं सो जैसा तुम कहते हो हमने उनकी पूजा किसी कामना के कारण से नहीं की है और यह पूजा किसी प्रकार सम्बन्ध अथवा उपकारको समझकर नहीं हुई है केवल श्रीकृष्णजीके यश, शूरता और जयको मानकर हमने की है इन सब राजाओंमें कोई ऐसा बालक भी नहीं है जिसकी परीक्षा हमने न करली हो सो हमने इनको पूज्यतम बृद्धोंको छोड़कर इनके गुणोंके कारण से माना है ब्राह्मणों में अधिक ज्ञानी क्षत्रियोंमें अधिक बलवान् वैश्योंमें अधिक धनी और शूद्रों में अधिक आयु रखनेवाला पूजन योग्य होताहै सो श्रीकृष्णजीको हमने दो गुणों के कारण से पूज्य मानाहै एक तो श्रीकृष्णजी सबसे बलवान् हैं दूसरे सब वेद और वेदके अंगोंको जानते हैं इनसे बड़ा मनुष्य संसारमें कौन है इनमें धन, चतुराई, शास्त्र, शूरता, लज्जा, कीर्ति, उत्तम बुद्धि, नम्रता, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि और तुष्टि आदि सब गुण मौजूदहैं ११।२० इससे इनको चाहे तुम गुरु समझो चाहे आचार्य और पिता ये सब प्रकारसे पूजनके योग्य हैं तुमको इनके पूजन में शंका करना उचित नहीं है ऋत्विज्, गुरु, स्नातक, ब्रह्मचारी, राजा और मित्र सबकी सम्भावना इनमें होसकती है

इसीसे इनकी पूजा प्रथम की गई है ये श्रीकृष्ण जगत्की उत्पत्ति का कारण, अविनाशी, चराचरमय, अव्यय, सनातन और सब से परे हैं बुद्धि, मन, वायु, तेज, जल, आकाश और पृथ्वी और चारों प्रकारके जीव और सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, दिशा और विदिशा सब इन्हींकी शक्ति से स्थित है वेदों में अग्निहोत्र, वेदके छन्दों में गायत्री, मनुष्यों में राजा, नदियोंमें समुद्र, नक्षत्रों में चन्द्रमा, तेजोंमें सूर्य, पर्वतों में मेरु, पक्षियोंमें गरुड़ और जगत्की ऊँची नीची और तिरछी गति और देवताओं और लोकों में श्रीकृष्णजी प्रधान हैं सो यह शिशुपाल अपने अज्ञानके कारण से ऐसा कहता है यह नहीं जानता है कि श्रीकृष्ण सर्वव्यापी हैं २१। ३० इसकी बुद्धिकी गति धर्मके देखने में उतनी नहीं है जितनी बुद्धिमान् और धर्मको जाननेवालेकी होती है भला महात्मा राजाओंमें चाहे बालक हो चाहे वृद्ध ऐसा कौन होगा जो श्रीकृष्ण के पूजन को योग्य न बतावेगा अथवा उनकी पूजा न करेगा और जो यह शिशुपाल उनकी पूजा होनेको खोटा काम बताता है तो इस पापका जो फलहै वह इसको शीघ्र मिलेगा ३१। ३३॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि अष्टत्रिंशोऽध्यायः ३८॥

उन्तालीसवां अध्याय।

श्रीकृष्णजीकी पूजा होनेपर सब राजाओंका क्रोध करके यज्ञ विध्वंस करने की सलाह करना और युद्धके लिये उपस्थित होना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भीष्मजी उक्त रीतिसे कहकर जब चुपके होरहे तब सहदेव क्रोध करके बोला कि हमसे पूज्यमान कृष्णकी पूजा को जो राजा न सह सकैगा उसके शिरपर हम लात रक्खेंगे जिस किसीको हमारी इस बातका उत्तर देना हो सो देवै हम उसीको मारडालेंगे हमने श्री कृष्णजी की पूजा पितर, गुरु, आचार्य और सब प्रकारसे बड़ा जानकर की है यह सुनकर सब मानी और बलवान् राजा चुपके बैठरहे किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया तब सहदेवके ऊपर आकाशसे फूलों की वर्षा हुई और साधु २ कह कर आकाशवाणी अन्तरिक्षमें गूंजनेलगी उस समय नारदजी ने जो संशय के दूरकर्ता और सब लोकों के जाननेवाले थे कहा कि जो मनुष्य कमलनयन कृष्णकी पूजा नहीं करता है वह मृतक के समान है और उससे बात करना योग्य नहीं है वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे सहदेवने

सब पूजायोग्य ब्राह्मण और क्षत्रियों की पूजा करके उस कर्मको समाप्त किया उस समय श्रीकृष्णजी की पूजा होना देखकर राजा शिशुपाल क्रोधसे लाल २ आँखें करके राजाओं से कहने लगा कि कहो तुम सब लोगों की क्या इच्छा है मेरी समझमें हम सब मिलकर पांडव और यादवों से युद्ध करें और इनके यज्ञको विध्वंस करदें यह सुनकर सब राजा क्रोधसे विवर्ण होगये और शिशुपालके पास जाकर कहने लगे कि ऐसा करो जिसमें युधिष्ठिरका अभिषेक और कृष्णकी पूजा न होने पावै ऐसा निश्चय करके वह सब क्रोधसे मूर्च्छित हो गये और उनका शरीर ऐसा दीखने लगा जैसे मांससे हटाये हुये सिंह गर्जते हैं उस समय श्रीकृष्णजी को यह हाल मालूम हुआ कि समुद्र के समान सब राजाओं के समूह सेना सहित युद्ध करने के लिये उपस्थित हुये हैं १।१८॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ३९॥

चालीसवां अध्याय।

युधिष्ठिर का सब राजाओं को युद्धके लिये तय्यार देखकर भीष्मजी से उपाय पूछना और भीष्मजीका श्रीकृष्णकी महिमा कहकर युधिष्ठिरका भय दूर करना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा युधिष्ठिर उस क्रोध भरे हुये सागररूपी राजमंडल को युद्धके लिये प्रतिज्ञा करते हुये देखकर अपने कुलके वृद्धपितामह भीष्मजीसे इस प्रकारसे पूछने लगा मानो इन्द्र बृहस्पतिसे पूछता है कि हमको अब इस समय क्या करना उचित है जिससे हमारा यज्ञ विध्वंस न हो और सब प्रजाका हित होवे १।४ यह सुन भीष्मजी बोले कि तुम किसी बात का भय मत करो कहीं कुत्तेभी सिंहको मार सकते हैं मैंने तुम्हारे कल्याण की राह पहलेही से विचार रक्खी है ये सब श्वानरूपी राजा जभीतक भूक रहे हैं जबतक सिंहरूपी कृष्ण सोरहे हैं जिस समय श्रीकृष्ण जागैंगे उस समय ये सब राजा कुत्तों की तरह यहां से भागैंगे मेरी समझ में शिशुपाल इन सब राजाओं को यमलोक को पहुँचाना चाहता है और श्रीकृष्णजी इस शिशुपाल के शरीर के तेज को खींचना चाहते हैं शिशुपाल सहित इन सब राजाओं की बुद्धि का नाश होना और कुछ नहीं है केवल इन श्रीकृष्णजीकी वैष्णवी माया है जिस २ मनुष्य को ये अपने में लय करना चाहते हैं उसकी बुद्धि ऐसेही होजाती है जैसी शिशुपालकी बुद्धि इस समय होगई है सो हे युधिष्ठिर!

तुम भय मत करो इस संसार में चारों प्रकार के जीवों के उत्पन्न और नाशकर्ता श्रीकृष्णजी हैं वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! राजा शिशुपाल भीष्मजी की उक्त बातको सुनकर रूखेपनसे कहने लगा ५। १५॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि चत्वारिंशोऽध्यायः ४०॥

एकतालीसवां अध्याय।

राजा शिशुपाल का भीष्मजी के प्रतिकी निंदा करना॥

शिशुपाल बोला कि हे भीष्म ! तुम कुल के नाश करनेवाले हो तुमको वृद्ध होकर राजालोगों को बहुत से डर दिखानेवाली बातें कहते हुये लज्जा नहीं आती है तुम तो कौरवों में सब से उत्तम हो इस तीसरेपन में तुमको ऐसी अधर्म की बात कहना उचित नहीं है तुमको आगे करके इस कौरवकुल की गति ऐसी है जैसे नाव नावके पीछे और अंधा अंधेके पीछे चले अर्थात् तुम अज्ञानी हो और तुम्हारे पीछे चलनेवाले सब कौरव भी ऐसे ही हैं तुमने इस श्रीकृष्ण के पूतनावध आदि जो कर्म कहे उनमें क्या ऐसा है जिससे यह ब्रह्म समझा जावै बड़े दुःखकी बात है कि कृष्णके गुणों को ब्रह्मके समान कहने पर तुम्हारी जीभके सौ टुकड़े नहीं होते हैं १। ५ जिस कृष्ण की निंदा बालकों को भी करना उचित है उसकी प्रशंसा तुम वृद्ध और ज्ञानी हो कर कहते हो इसने जो बालकपन में बकासुर, केशी और वृषासुर दैत्यों को जो युद्ध करना नहीं जानते थे मारा है उसमें क्या आश्चर्य की बात है और जो इसने अपने पावँसे शकटको जो जड़ पदार्थ है गिरा दिया उसमें क्या अद्भुत बात इसने की इसने जो बाल्मीकि के समान पहाड़ को उठाकर सात दिनतक अपने हाथ पर धारण किया है उसमें तुमको क्या विचित्र बात जान पड़ती है और जो इसने बालकपन में गोवर्धन पहाड़ पर बहुतसा अन्न खाया है उसमें कौनसी बात आश्चर्यकी है ६। १० जिसके अन्न को खाकर यह बलवान् हुआ था उसी कंस को इसने मार डाला इस निंदित कर्म के करने में भी कोई अद्भुत बात नहीं है हे भीष्म ! तुम अधर्मी और अपने कुलमें अधम हो तुमने अभी संतों का मत नहीं सुना है उसको हम कहते हैं कि मनुष्यको स्त्री, गौ, ब्राह्मण, अन्नदाता और जिसके पास रहै इन पांचों पर शस्त्र चलाना उचित नहीं है संतलोग सबको यही शिक्षा करते हैं परन्तु तुम्हारा आचरण हमको इस धर्म के विपरीत दीख पड़ता है तुम कौरवोंमें नीच हो बेर २ कृष्ण

को वृद्ध और ज्ञानवृद्ध कहते हो मानों मैं कृष्ण को जानताही नहीं हूं हे भीष्म ! यह कृष्ण गौ अर्थात् वृषासुर और स्त्री अर्थात् पूतना का मारनेवाला है इसकी तुमने पूजा की है ऐसे खोटे काम करने पर यह पूजाके योग्य क्योंकर हो सक्ता है तुम्हारी प्रकृति नीच और बुद्धि अशुद्ध है तुम्हारे ही सत्संग से पांडवों की भी बुद्धि पाप करनेवाली होगई है भला जिन पांडवों के तुमसे उपदेशक और कृष्णसे पूज्य होवें वे पांडव सत्पुरुषोंके मार्गसे भ्रष्ट क्योंकर न होवें ११।२० ऐसा कौन ज्ञानी होगा जो अपने को धर्म का अधिकारी जान कर ऐसा काम करै जैसा तुमने धर्मदर्शी होने पर किया है तुम कहते हो कि हम धर्म को जानते हैं और हमारा बहुत कुछ जाना हुआ है तो तुम राजा काशी की अंबा नाम कन्या को जो दूसरे राजा से अपनी प्रीति रखती थी क्यों हरकर ले आये थे विचित्रवीर्य सत्पुरुषों के मार्ग पर चलनेवाला था जिसने उस तुम्हारी लाई कन्या को अंगीकार नहीं किया और तुम्हारे देखते २ उसकी स्त्रियों के दूसरे मनुष्यों से संतान उत्पन्न हुई तुम्हारा धर्म कुछ नहीं है और ब्रह्मचर्य भी तुम्हारा वृथा है क्योंकि इस ब्रह्मचर्य व्रत को तुमने क्लीब और मोह होनेके कारण से धारण कर रक्खा है मुझको तुम में धर्म का लेशमात्र भी होना नहीं दिखाई देता है और तुम्हारे इस प्रकार से धर्म के कहने से जान पड़ता है कि तुमने वृद्धों की सेवा नहीं की है मनुष्य कहते हैं कि यज्ञ करना, दान देना, वेद पढ़ना और ऐसा यज्ञ करना जिस में बहुतसी दक्षिणा खर्च हो पुत्र के होने के सोलहवें भाग की भी बराबर नहीं होते हैं और यह भी उन लोगों का मत है कि बहुत से व्रत और उपवासों के करने का फल संतानहीन मनुष्यों को नहीं मिलताहै सो हमको ऐसा जान पड़ताहै कि अब तुम संतानहीन और वृद्ध होकर अधर्म पर चलने के कारण से हंस की तरह हम सबके हाथों से मारे जाओगे हमने सन इतिहास पहले ज्ञानियों से सुना था तुमसे भी अब उसको कहते हैं २१।३० पहले समय में समुद्र के किनारे पर एक धर्म का उपदेश करनेवाला हंस रहता था वह पक्षियों को तो उपदेश किया करता था परन्तु आप उसके विपरीत चलता था उसके मुख से पक्षी सदैव यह सुना करते थे कि धर्म करो अधर्म मत करो वे पक्षी उसको धर्मके कारण से भक्ष्य और भोजन ला लाकर दिया करते थे एक समय ऐसा हुआ कि वे सब पक्षी अपने अंडोंको उस हंसके पास छोड़ कर चलेगये

और चलते फिरते समुद्र में डूबगये तब वह पापी हंस उन पक्षियों के अंडोंको खागया इसी प्रकार से वह हंस जब पक्षी चले जाते या नष्ट होजाते थे उनके अंडों को खालिया करता था जब बहुत अंडे क्षय होने लगे तब उन पक्षियों में से एक ज्ञानी पक्षी को संदेह हुआ और उसने एक दिन छिपकर उस हंसके खोटे कर्मको देखलिया उसने तब वह हाल दूसरे पक्षियों से कहा जब उन्होंने भी उसके मिथ्या चलन को देख लिया तब सबने मिलकर उस हंसको मार डाला इसी प्रकार से हंस की तरह तुम भी सब जातिवालों के हाथ से मारे जाओगे हे भीष्म ! हम तुमसे अब पुराणों को जाननेवाले मनुष्यों के मतको भी कहते हैं ३१।४० वह यह है कि काम और क्रोध आदि से अंतरात्मा के अभिहत होने पर तुमको धर्म की बातें कहना ऐसी हैं जैसे वह हंस मलिन अंतः-करण होने पर धर्म का उपदेश करता था सो हंस की तरह तुम्हारा अंडोंको खा लेने का कर्म अर्थात् धर्मका उपदेश तो करदेना परंतु उसके अनुसार आप न करना तुम्हारे कहने के विपरीतहै ४१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि एकचत्वारिंशोऽध्यायः ४१ ॥

बयालीसवां अध्याय।

शिशुपालके रूखे वचनों को सुनकर भीमसेनका क्रोध करना और भीष्मका उसके क्रोधको शांत करना ॥

शिशुपाल बोला कि राजा जरासंधने जो बड़ा पराक्रमी और ज्ञानी था कृष्णसे यही जानकर युद्ध नहीं किया था कि यह दास है उसके पीछे उसने भीमसेन और अर्जुन को साथ लेजाकर जरासंध के मारने को जो कर्म किया उसको कौन अच्छा जानता है जो कृष्ण छलसे ब्राह्मणरूप धरकर जिधर राह न थी उस राहसे न जाते तो कदापि जरासंधके प्रभावको न देखसक्ते और यही कारण था कि उसने इस दुरात्मा कृष्ण को पाद्य अर्घ नहीं दिया केवल इस को भीमसेन और अर्जुन के साथ भोजन करने के निमित्तही पूछा था परन्तु इसने वैर के कारण से भोजन करना अंगीकार नहीं किया जो यह कृष्ण जगत् का कर्ता है जैसा तुम अपनी मूर्खता से कहते हो तो इसने छल करके ब्राह्मण स्वरूप क्यों धारण किया अपने स्वरूप से जरासंधके पास क्यों नहीं गया हम को बड़ा आश्चर्य है कि तुमने पांडवों को धर्ममार्ग से हटा दिया है और वे अभीतक उसी को अच्छा जानते हैं परन्तु ऐसा होना भी कुछ बड़ा अद्भुत

नहीं है क्योंकि उनके शिक्षक तो तुम हो जिनका शरीर वृद्ध और धर्म स्त्रियों के समान है १ । ८ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! भीमसेन शिशुपालके उक्त रूखे वचनों को सुनकर अत्यन्त क्रोधित होगया कमल के समान उसकी दोनों आंखें लाल २ होगईं और भृकुटी के टेढ़ेहोने से उस के ललाटपर तीन रेखा ऐसी पड़गईं जैसे त्रिकूट पहाड़ पर गंगाजी तीन धारा होकर बहती हैं उस समय भीमसेन क्रोधसे अपने दांतों को पीसने लगा और उसका मुख ऐसा सबको दिखाई दिया मानों प्रलयकारक काल है इस प्रकार से भीमसेन क्रोधित होकर शिशुपाल के मारने को दौड़ा परन्तु उसको भीष्म ने जल्दी से इस प्रकार से पकड़ लिया जैसे देवताओं का ईश्वर महासेन को पकड़े और नाना प्रकार की बातें कहकर उसके क्रोधको शान्त किया और उसने भी यद्यपि शिशुपाल के मारनेको उठा था अपने बड़ेकी आज्ञाको इस प्रकार से उल्लंघन नहीं किया जैसे समुद्र अपनी मर्यादा से नहीं हटता है भीमसेन के क्रोधको देखकर शिशुपाल जरा भी न डरा और उसको अति क्रोध से बार बार उछलते हुये देखकर हँसकर कहनेलगा कि हे भीष्म ! तुम इसको छोड़दो आने दो अभी सब राजाओं के देखते २ यह मेरे प्रभावसे इस प्रकार से भस्म होजायगा जैसे अग्नि में पतङ्ग जलमरता है यह सुनकर भीष्मजी भीमसेन से कहने लगे ९ । २० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ४२ ॥

तेंतालीसवां अध्याय ।

भीष्मजीका भीमसेनसे शिशुपालकी उत्पत्ति और श्रीकृष्णजी से वरदान पानेका वृत्तान्त कहना ॥

भीष्मजी बोले हे भीमसेन ! यह शिशुपाल राजा चंदेरी के वंशमें जब उत्पन्न हुआ था तब इसके चार भुजा और तीन आंखें थीं उत्पन्न होतेही यह गधेकी समान रेंकने और गर्जने लगा यह देखकर इसके मा बाप और भाई बन्धु डर गये और उन्होंने इसे त्याग करने का विचार किया परन्तु उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि तुमलोग डरो मत यह राजाही का पुत्र है यह बड़ा बलवान् और श्रीमान् होगा तुम इसका पालन करो इसकी मृत्यु और काल नहीं है इसका मारनेवाला केवल महाकाल है कि वह संसारमें प्रकट होचुका है इसपर इसकी माने हाथ जोड़कर विनय की कि जिसने मेरे इस पुत्रके विषय में उक्त बातें कही हैं वह कृपा करके मुझको यह भी बतावे कि देवता आदि किसके

हाथसे इसकी मृत्यु होगी यह सुनकर फिर आकाशवाणी हुई कि जिसकी गोद में जाने से इसकी दो भुजा गिर पड़ें और ललाट का तीसरा नेत्र बैठजाय उसी के हाथ से इसकी मृत्यु होगी १। १० इसके पीछे यह खबर देश २ में पहुँची कि राजा चंदेरी के एक पुत्र ऐसा हुआ है जिसके चार भुजा और तीन नेत्र हैं और उसने उत्पन्न होतेही गधे के समान शब्द किया था यह सुन२ कर सब देशोंके सहस्रों राजालोग इसे देखने को आये और इसके बापने उन सब का आदर सत्कार करके इसे प्रत्येक की गोदमें बैठाया परन्तु किसी की गोदमें बैठने से इसकी न भुजा गिरी न नेत्र बैठा इसके पीछे इस वृत्तान्त को सुनकर बलदेवजी और श्रीकृष्णचन्द्रजी अपनी फूफी अर्थात् इसकी माको देखने को आये और विधिपूर्वक अपने फूफा अर्थात् इसके बापको दंडवत् करके बैठ गये उस समय इसकी माने उन दोनों अपने भतीजों का विशेष आदर सत्कार करके श्रीकृष्णजीकी गोदमें इसको बैठा दिया बैठाते ही इसकी दोनों अधिक भुजा गिर पड़ीं और वह नेत्र भी बैठगया तब इसकी माने भयभीत होकर श्रीकृष्णजी से कहा हे श्रीकृष्ण ! तुम भयसे डरे हुये मनुष्यों को अभय और आसरा देनेवाले हो मैं भी भयसे दुःखी हूं इससे मुझको जो मैं वर माँगूं सो दो यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले ११।२० कि हे फूफी ! तू डरै मत मुझ से तुझको किसी प्रकारका भय नहीं पहुँच सक्ता है जो तू कहै सो वर मैं तुझको दूं जो काम करने के योग्य भी न होगा तो भी मैं करूंगा यह सुनकर इसकी मा ने कहा कि तुम मेरे इस पुत्रके अपराधों को क्षमा करना यही वर मैं तुमसे माँगती हूं तब श्रीकृष्णजी ने कहा कि हे फूफी ! अब तू शोच करना छोड़ दे मैं इसके सौ अपराध यदि ऐसे भी होंगे कि जिनके कारण से इसका वध करना उचित समझा जावै क्षमा करूंगा सो हे भीमसेन ! यही कारण है कि यह मंदबुद्धि शिशुपाल श्रीकृष्ण के वरदान से गर्वित होकर तुझको युद्ध करने के लिये बुलाता है २१। २५॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ४३॥

चवालीसवां अध्याय।

शिशुपालका भीष्मकी और कृष्णकी निंदा करना और शिशुपाल भीष्म और सब राजाओंका आपस में विवाद होना॥

भीष्मजी बोले कि हे भीमसेन ! शिशुपाल यह अच्छा नहीं करता है जो

जगन्नाथ श्रीकृष्णजीकी निंदा करता है और ऐसा कौनसा राजा पृथ्वी पर होगा जो काल के वशमें होकर मेरी निंदा इस प्रकार से करै जैसे यह कुल-कलंक शिशुपाल करता है परंतु कारण इसका यह है कि यह श्रीकृष्णजी का अंश है और श्रीकृष्णजी अपने अंशको अपने में लय करना चाहते हैं और इसी कारण से यह दुर्बुद्धि हम सबकी निंदा निर्भय होकर कर रहा है १। ४ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! शिशुपाल भीष्मजी की उक्त बात को सुनकर सह न सका और अत्यंत क्रोध करके कहने लगा कि हे भीष्म! जिस कृष्णकी स्तुति तुम बंदीजनों की तरह करते हो उसका जो कुछ प्रभाव हो सो मुझ द्वेष करनेवाले पर प्रकट होवै मेरा क्या कर सक्ता है जो तुमको दूसरे की स्तुति ही करना अच्छा लगता है तो तुम इस कृष्ण को छोड़कर जो अन्य राजाओं की स्तुति करो राजा दरद, राजा वाह्लीक जिसके उत्पन्न होनेपर पृथ्वी फटगई थी और राजा कर्ण जो इन्द्रकी समान बलवान् और कुण्डल कवच सहित उत्पन्न हुआ था और जिसने मल्लयुद्ध करके जरासंध को प्रसन्न किया था स्तुति करने के योग्य हैं इनके सिवाय ये दोनों उत्तम और महारथी द्रोणाचार्य तथा अश्वत्थामा कि जो सब संसार को चर और अचर जीवों सहित नाश कर सक्ते हैं और जिनके समान कोई राजा पृथ्वीतल पर बलवान् नहीं है स्तुति क्यों नहीं करते हो राजा दुर्योधन को जिसकी समान इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं है राजा जयद्रथको जो अस्त्र शस्त्रोंका परम वेत्ता है और तुमको जो कि पुरुषोंका आचार्य है छोड़कर इस कृष्ण की क्या स्तुति करते हो ५। १६ और कृपाचार्य जो भरतवंशियोंके आचार्य हैं, राजा रुक्म, राजा भीष्मक, राजा दंतवक्र, राजा भगदत्त, राजा यूपकेतु, राजा जयत्सेन, राजा विराट, राजा द्रुपद, शकुनि, राजा बृहद्बल, अवंति देशके राजा विंदु और अनुविंदु, राजा पांड्य, राजा श्वेत, राजा उत्तम, राजा वृषसेन, राजा विक्रांत, राजा एकलव्य, कलिंगदेश का राजा, राजा शल्य और २ बहुतसे महाबली और महारथी राजा लोग जो यहां बैठेहुये हैं उनको छोड़कर इस कृष्णकी जो राजा नहीं है क्यों प्रशंसा करते हो हां मेरे पास इसका तो अलबत्ता कुछ उपाय नहीं है कि तुमने धर्मवादी और वृद्धों की शिक्षा नहीं सुनी हमने तुम्हीं से सुना है कि अपनी अथवा पराई निन्दा और स्तुति करना अच्छे मनुष्योंका काम नहीं है फिर यह कृष्ण तो किसी प्रकार से स्तुति करने के योग्य नहीं है और जो तुम

इसकी प्रशंसा अपने मोह या भक्ति से करते हो उसको कोई अच्छा नहीं कह सक्ता है १७। २५ सब यादव राजा भोजकी प्रजा हैं फिर इस यादव कृष्ण को जो राजा कंसकी गौओंका पालनेवाला है जगत् की उत्पत्तिका कारण कैसे बताते हो तुम्हारी बुद्धि पृथ्वीके बिलमें सोनेवाले भूलिंग पक्षीके समान डामाडोल है कहते कुछ हो और करते कुछ हो यह पक्षी हिमालय पहाड़के पार्श्व में रहताहै और सदैव यह कहा करताहै कि विना विचारे कोई काम मत करो परन्तु आप विना विचारेही साहस करने लगताहै अर्थात् सिंहकी डाढ़में लगेहुये मांसको खानेकी इच्छा करताहै सो हे भीष्म ! जैसे वह पक्षी दूसरोंको तो साहस न करने का उपदेश करता रहता है और आप सिंहकी डाढ़मेंसे भी मांस निकालने का साहस करता है तैसेही तुम्हारे भी वचनहैं तुम अब केवल इन राजाओंकी ही इच्छा से जीतेहुये बैठेहो तुम्हारी बराबर दुष्ट कर्म का करनेवाला इस संसार में कोई नहीं है वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! भीष्मजी शिशुपालके उक्त कडुवे वचनों को सुनकर कहनेलगे कि जिन राजाओं की इच्छासे तुम हम को जीताहुआ बतातेहो उन सबको हम तृणवत् समझतेहैं २६। ३४ यह सुनकर सब राजा क्रोधित होगये उनमें से कोई २ तो हँसनेलगे कोई भीष्मकी निन्दा करनेलगे और कोई २ यह कहनेलगे कि यह वृद्ध भीष्म विषयों में लिप्त होरहा है क्षमा करने के योग्य नहीं है इसको हम सब मिलकर पशुकी तरह मारडालें और अग्निमें जला दें यह सुनकर भीष्मजी बोले कि मुझको यहां प्रश्न करने और उत्तर देनेका अंत नहीं दीखताहै इससे तुम सब अब कहना सुनना तो छोड़ दो और जैसा कहतेहो उसीप्रकार सम्मुख आकर मेरा वध अग्निमें जलाकर या पशुकी तरह मारकर करो मैं तुम सबके शिर पर लात रखता हूं और ये श्रीकृष्णचन्द्र हमारे और सब जगत् के पूज्य बैठेहुये हैं जिसका काल निकट आगयाहो वह इन चक्र और गदाधारीको युद्धके लिये बुलावै हम जानते हैं कि जबतक ये श्रीकृष्ण इस शिशुपाल को मारकर इसके तेजको अपने में लय नहीं करेंगे तबतक ये राजालोग नहीं मानेंगे ३५। ४२॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४४॥

पैंतालीसवां अध्याय।

श्रीकृष्णजीका शिशुपालको सौ अपराध पूरा होनेपर मारडालना यज्ञका पूरा होना सब राजाओं का अपने २ घर को चलाजाना और सभामें दुर्योधन और शकुनिका रहजाना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! राजा शिशुपाल भीष्म के उक्त वचनोंको सुनकर कृष्णचन्द्र से लड़नेकी इच्छा से बोला कि हे कृष्ण ! आवो मुझसे युद्ध करो अभी तुमको पांडवों सहित मारता हूं तुम्हारे कारण से ये सब पांडव भी वध करने के योग्यहैं क्योंकि इन्होंने सब राजाओंको छोड़कर राजा न होने पर तुम्हारी पूजा की है मेरी मति में जो मनुष्य तुमसे दास, अराजा, दुष्ट बुद्धि और पूजन के अयोग्य मनुष्यकी पूजा करे वह मारडालने के योग्यहै यह कहकर शिशुपाल गर्जनेलगा और श्रीकृष्णजी उसकी बात को सुनकर सब राजाओं से मृदुताके साथ कहनेलगे कि यह शिशुपाल यद्यपि यादवकुलकी माता से उत्पन्न है परन्तु यादवों से द्वेष रखताहै और हिंसकहै इसने भानजा होने पर हम सबके प्राग्ज्योतिषनगरको चलेजाने पर द्वारकामें आग लगादी और रैवत पहाड़ पर क्रीड़ा करतेहुये भोजराज को यह साथियों सहित मार बांधकर लेगया इसके पीछे यह हमारे पिताका अश्वमेध यज्ञ विध्वंस करने को रक्षकों को मारकर घोड़ा हरकर लेगया और तपस्वी बभ्रु की स्त्री को जो सौवीर देशों को जाती थी अधर्म से हरण किया फिर इसने अपने मामा की पोती भद्रा नाम को जो राजा विशालापुरकी बेटी थी और राजा करूष के पास जाती थी करूष का रूप धरकर हरलिया सो ये बातें तो इसने हमारे पीठ पीछे की थीं और अब आज तुम सब लोगों के सामने जो जो इसने कहा है सो सब तुम लोगों ने सुनांही है अबतक मैंने यह सब कष्ट अपनी फूफी अर्थात् इसकी माके कारण से सहा है परन्तु अब इसका अपराध हमसे क्षमा नहीं होसक्ता है इस दुष्टका अब काल आ पहुँचा है इसने पहले रुक्मिणी से अपना विवाह करना चाहा था परन्तु उसको इसने इस प्रकार से नहीं पाया जैसे शूद्र वेदकी श्रुतियों को नहीं पासक्ताहै १।१५ वैशम्पायनजी बोले कि जब कृष्णचन्द्रने उक्त रीति से बहुतसी बातें कहीं तब सब राजा शिशुपाल की निन्दा करनेलगे और शिशुपाल उसको सुनकर खिलखिलाकर हँसउठा और कहनेलगा कि हे कृष्ण ! तुम मुझको रुक्मिणीका पाहिला पति बतलाते हो तुमको ऐसी बात कहते लज्जा

नहीं आती है ऐसी सभा में तुम्हारे सिवाय कौन ऐसा निर्लज्ज होगा जो दूसरे मनुष्यको अपनी स्त्री का पहिला पति बतावे तुम जो फूफी अर्थात् हमारी माका हाल कहतेहो सो हमको उसकी कुछ परवाह नहीं है तुमचाहे क्षमा करो चाहे क्रोध तुम्हारे क्षमा और क्रोध करनेसे मेरा कुछ भला या बुरा नहीं होसक्ताहै यह सुनकर कृष्णचन्द्रने अपनेचक्रको याद किया और उसके हाथमें आनेपर सब राजाओं से पुकारकरकहा कि मैंने इसकी माको यह वरदान दियाथा कि मैं तेरे पुत्रके सौ अपराध तक क्षमाकरूंगा सो अब वह सब अपराध पूरेहोगये अब मैं इसको मारताहूं यह कहकर श्रीकृष्णजीने क्रोध करके चक्रको छोड़दिया और उससे शिशुपाल का शिर कटकर पृथ्वीपर गिरपड़ा १६।२५ तब उस राजाका शरीर इस प्रकार से पृथ्वीपर गिरपड़ा जैसे बिजली के गिरनेसे पहाड़ गिरपड़े और उसके शरीर में से सूर्य के समान चमकता हुआ तेज निकलकर कृष्णचन्द्रको वंदना करके उन्हीं के शरीर में लय होगया यह देखकर सब राजालोग आश्चर्य करनेलगे उससमय आकाशमें से विना बादलके वर्षा होनेलगी बिजली भी पृथ्वी पर गिरी और पृथ्वी कांपनेलगी उससमय बहुतसे राजालोग तो चुपके होकर बैठेहुये कृष्णको देखते रहे बहुतसे क्रोधके कारण से हाथ से हाथ मलनेलगे और बहुत से अपने दांत पीसने लगे उनमें से किसी २ ने कृष्णचन्द्रकी प्रशंसा की किसी २ ने क्रोध किया और कोई कोई मध्यस्थ होगये इसके पीछे महर्षि और महात्मालोग ब्राह्मण और राजाओंसहित श्रीकृष्णजी के पास स्तुति करते हुये गये और उनकी प्रशंसा करनेलगे फिर युधिष्ठिरकी आज्ञासे उसके छोटे भाइयोंने विधिपूर्वक शिशुपाल के शरीर का संस्कार किया और युधिष्ठिरने शिशुपाल के बेटे को सब राजाओं सहित चंदेरीदेशकी गद्दी का राजतिलक दिया २६।३५ इस प्रकारसे युधिष्ठिरका वह यज्ञ जिसका प्रारम्भ सुखपूर्वक हुआथा निर्विघ्न ऋद्धि और धन धान्यसे युक्त समाप्त हुआ श्रीकृष्णजी उस यज्ञकी रक्षा समाप्त होनेतक करतेरहे इसके पीछे युधिष्ठिरके अवभृथ नाम यज्ञ स्नान करनेपर सब राजालोग उसके पास आये और कहनेलगे कि तुमने प्रारब्धसे साम्राज्यपद पाकर अजमीढ़वंशी राजाओं के यशको बढ़ाया तुमने यह बड़ा भारी धर्म कियाहै और हम सबका भी अच्छी तरहसे आदर सत्कार किया अब हम सब अपने २ देशों को जाना चाहते हैं सो आप हमको जानेकी आज्ञा दीजिये यह सुनकर युधिष्ठिरने सब राजाओं की यथायोग्य पूजा की और अपने भाइयों से कहा कि ये

सब राजालोग हमारी प्रीतिके कारणसे यहां आये थे अब ये सब जाना चाहते हैं सो तुम इनके साथ जाकर अपने राज्यकी सीमातक इनको पहुँचा आओ यह सुनकर वे सब प्रत्येक राजाके साथ अपने राज्यकी सीमातक पहुँचाने को गये धृष्टद्युम्न राजा विराटके साथ अर्जुन राजा द्रुपदके साथ भीष्म और धृतराष्ट्रके साथ भीमसेन सहदेव द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा के साथ नकुल राजा सुबल और उसके पुत्रके साथ द्रौपदी और सुभद्राके पुत्र पहाड़ी राजाओं के साथ और क्षत्रिय लोग दूसरे क्षत्रियोंके साथ जाजाकर सबको राज्यकी सीमातक पहुँचा २ आये इसी प्रकारसे सहस्रों ब्राह्मणलोग जो अनेक २ देशों से आये थे चलेगये उनके चलेजानेपर श्रीकृष्णजीने युधिष्ठिर से कहा ३६। ५० कि प्रारब्ध से तुम्हारा राजसूय यज्ञ अब समाप्त हुआ मैं भी अब द्वारकाको जाना चाहता हूं यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि आपकी कृपासे मेरा यज्ञ समाप्त हुआ और आपहीकी कृपा से सब क्षत्रियोंने मेरे वशमें होकर मुझको कर दिया है परन्तु मैं आपको जानेके लिये क्योंकर कहूं आपके विना मुझे आनन्द नहीं रहता है और यह भी मैं जानता हूं कि आपको द्वारकापुरी को भी जाना अवश्यही है यह सुनकर कृष्णचन्द्र प्रसन्नतापूर्वक युधिष्ठिरके साथ २ कुन्ती के पास गये और कहनेलगे कि हे फूफी! तेरे बेटे साम्राज्यपदवीको पाकर सिद्धमनोरथ और धनवान् हुये अब तू प्रसन्न रह और मुझे द्वारका जानेकी आज्ञा दे ५१। ५७ इसी प्रकारसे फिर द्रौपदी और सुभद्रा से मिले उपरांत युधिष्ठिर के साथ महलके बाहर आकर स्नान करके और ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन सुनके दारुकि सारथी के लायेहुये रथपर जिसमें गरुड़ के चिह्नकी ध्वजा लगीहुई थी प्रदक्षिणा करके चढ़े और द्वारकाकी ओर चले युधिष्ठिर आदिक सब भाई उनके साथ २ पैदल हो लिये यह देखकर कृष्णचन्द्र ने अपने रथको रोकलिया और युधिष्ठिरसे कहनेलगे कि तुम सावधान रहकर प्रजाकी रक्षा करते रहना और आपसमें सब भाई प्रीतिपूर्वक इस प्रकारसे रहना जैसे देवता इन्द्रके समीप रहते हैं यह कहकर श्रीकृष्ण और पांडव परस्पर एक दूसरे से पूछ और मिलकर पांडव अपने स्थान को चलेआये और श्रीकृष्णजी द्वारका को चलेगये उनके चलेजाने पर उस युधिष्ठिर की सभामें केवल एक दुर्योधन और सुबलका बेटा शकुनि रहगये ५८। ६७॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ४५॥

छियालीसवां अध्याय।

व्यासजी का युधिष्ठिरसे उत्पातोंका फल कहकर चला
जाना और युधिष्ठिरका शोच करना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उस दुर्लभ राजसूय यज्ञके समाप्त होनेपर युधिष्ठिर के पास व्यासजी अपने शिष्यों सहित आये युधिष्ठिर उनको देखकर भाइयों सहित खड़ा होगया और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके उन्हें बैठने को सुन्दर आसन दिया व्यासजी उस सुवर्ण के आसन पर बैठगये और युधिष्ठिर आदि को बैठने की आज्ञा दी और युधिष्ठिर से कहनेलगे कि तुमने प्रारब्ध से दुर्लभ साम्राज्यपदवी पाई और तुम्हारे कारण से कौरवों की बढ़ोतरी हुई अब मैं जाना चाहता हूं मुझे जानेकी आज्ञा दो यह सुनकर युधिष्ठिरने व्यासजी को उठकर दंडवत् की और फिर पास बैठकर कहा कि महाराज मुझे बड़ा भारी संदेह होगयाहै आपके सिवाय मेरे उस संदेहको और कोई दूर नहीं करसक्राहै मैंने नारदजी से सुनाहै कि तीन उत्पात बड़े भारी होते हैं एक दिव्य अर्थात् वज्रपात आदि, दूसरा अन्तरिक्ष अर्थात् धूमकेतु आदि और तीसरा पार्थिव अर्थात् भूकंप आदि सो ये उत्पात शिशुपालके मारेजानेपर हुये थे उनके होनेका क्या कारण है यह सुनकर व्यासजी बोले १। १० कि इन उत्पातोंका फल यह है कि आज से तेरहवर्ष के बीतनेपर सब क्षत्रियों के कुलका नाश होगा और तुमको कारण बनाकर दुर्योधन के अपराध से सब राजालोग इकट्ठे होकर भीम-सेन अर्जुन के बलसे मारे जायँगे और आज रातको तुमको स्वप्न में नीलकंठ शिवजी के दर्शन जो भव, स्थाणु, कपाली, त्रिपुरांतक, उग्र, रुद्र, पशुपति, महादेव, उमापति, शर्व, वृष, शूली, पिनाकी और कृत्यवास आदि नामों से वि-ख्यातहैं नन्दीपर सवार दक्षिणकी ओर देखतेहुये होंगे सो तुम इस बातका कुछ संदेह मत करो क्योंकि इस संसारमें कालका उल्लंघन कोई नहीं करसक्ताहै अब तुम सावधान रहकर पृथ्वी का पालन करो और मुझको जानेकी आज्ञा दो मैं कैलास पर्वत पर जाना चाहता हूं वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! व्यासजी उक्त रीति से कहकर शिष्यों सहित कैलास को चलेगये उनके जानेपर युधिष्ठिर शोक और चितामें मग्न होकर बार बार गरम गरम श्वास ले लेकर विचारने लगा कि यह भावी अर्थात् होनहार किसी प्रकारसे मनुष्यके उ-पायसे नहीं रुकसकती है व्यासजी का कहना अवश्य होगा ११। २० ऐसा

विचारकर युधिष्ठिरने अपने भाइयोंसे कहा कि तुमने भी जो व्यासजीने मुझसे कहाथा सुनाहै मेरे मनमें अब यह आताहै कि मैं अपने प्राण छोड़दूं क्योंकि कालने मुझको क्षत्रियकुलके नाश होनेका हेतु निर्माण किया है मेरा अब जीना व्यर्थ है यह सुनकर अर्जुन बोला कि आप शोच को छोड़कर जो करना उचितहै वह कीजिये क्योंकि शोच करने से बुद्धि जातीरहती है यह सुनकर युधिष्ठिर व्यासजीकी बातको याद करके कहने लगा कि मेरे जीने से अब कोई अर्थ नहीं है इससे आजसे मैं यह प्रतिज्ञा करता हूं कि तेरह वर्षतक कभी अपने भाई या दूसरे राजाओं से कठोर वचन नहीं कहूंगा और अपने स्वजातियों की आज्ञा मानकर उनकी सेवा करूंगा ऐसा करने से हम सबमें आपसमें फूट न होगी फूटही लड़ाईका घरहै जब मैं लड़ाईके पास न जाऊंगा और ऐसे काम करूंगा जो सबको अच्छे मालूमहों तब लोक में कोई मेरी निंदा न करैगा यह सुनकर युधिष्ठिर के सब भाई भी उक्त बात पर बर्ताव करने लगे २१ । ३० इसप्रकारसे युधिष्ठिर अपने भाइयोंसहित सम्मत करके मंगल स्नान और देवता तथा पितरों को तृप्त करके प्रसन्नतापूर्वक सब राजाओं को बिदा करके अपने भाई पुरोहित और मंत्रियों सहित अपने नगर के भीतर गया और दुर्योधन तथा शकुनि उसी सभा में निवास करते रहे ३१ । ३२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४६ ॥

सैंतालीसवां अध्याय।

दुर्योधनका पांडवोंकी सभा देखना और धोखेसे कई बार गिर २ पड़ने के कारण से भीमसेन आदिका उसकी हँसी करना और पांडवोंके वैभवको देखकर दुर्योधन को बड़ी डाह होना और सब वृत्तान्त शकुनिसे कहना ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! युधिष्ठिर की सभा में रहने पर दुर्योधन और शकुनि धीरे २ सभाको घूमकर देखने लगे और उन्होंने उसमें ऐसी २ दिव्य चीजें देखीं जिनको उन्होंने पहले कभी हस्तिनापुर में नहीं देखाथा फिर एक स्थान पर स्फटिक के स्थलको देखकर दुर्योधनको यह जान पड़ा कि यहां जल है और ऐसा जानकर वह उस स्थल में कपड़े उतारकर गया और वहां जल न देखकर लज्जित होकर आगे बढ़ा और दूसरी जगह फिर स्थलको जल जानकर स्थलपर गिरपड़ा और आगे बढ़कर एक स्फटिक की बावड़ी को जिसमें स्फटिक के समान कमल लगेहुये थे और जल

से भरी थी स्थल समझकर उसमें चलागया और वस्त्रों सहित उसके जल में भीगगया भीमसेन अर्जुन नकुल और सहदेव अपने नौकरोंसहित दुर्योधनकी यह दशा देखकर हँसपड़े यह देखकर दुर्योधन उनकी हँसीको न सहसका और अत्यंत मलिन चित्त होगया युधिष्ठिरकी आज्ञासे दुर्योधनको और सुन्दर वस्त्र पहिरने को दियेगये तब दुर्योधन उन वस्त्रोंको पहिर कर उन हँसनेवालों की ओर न देखकर आगे चला और स्फटिकस्थल को जल जानकर उसके पार जानेकी इच्छा से वस्त्र उठाकर चलने लगा और जल समझकर उसमें कूद पड़ा और स्थलपर जापड़ा यह देखकर सबलोग फिर हँसपड़े तब दुर्योधन फिर लज्जित होकर वहां से आगे चला और एक स्फटिक के द्वारमें जो बन्द था परंतु खुला हुआ दिखाई देता था घुसने लगा और टक्कर लगने के कारण से घूर्मित होगया और आगे चल कर एक ऐसे दरवाजे में घुसने लगा जो खुला हुआ था परन्तु बन्द दिखाई देता था घुसने के समय भ्रम से वह दोनों हाथों से दरवाजा खोलने लगा परन्तु वहां कुछ आधार न होने के कारण से गिरपड़ा और वहां से आगे को गया और फिर एक द्वार को कपाट लगाहुआ देखकर वहां खड़ारहा भ्रमके कारण से खोल न सका इस प्रकार से अनेक स्थलों में भ्रम खा २ कर दुर्योधन राजा युधिष्ठिर से बिदा होकर अप्रसन्न मन हस्तिनापुरको चल दिया और युधिष्ठिर की लक्ष्मी और वैभवको देखकर पाप बुद्धि विचारने लगा और पांडवों को प्रसन्नमन और यह जानकर कि सब राजा पांडवों के वशमें हैं और पांडव पुत्र परिवार और बड़ी लक्ष्मी युक्तहैं विवर्ण होगया और पांडवोंका वैभव तथा लक्ष्मी और सभाको बेर २ विचार २ कर व्याकुल होनेलगा यह देखकर शकुनि उससे बार बार पूछने लगा कि तू उदास क्यों है परन्तु दुर्योधन ने कुछ उत्तर नहीं दिया तब शकुनिने कहा कि मुझसे तो बता कि तेरे इस दुःखका कारण क्याहै और तू श्वास लेलेकर क्यों विमन होताहै १। २० यह सुनकर दुर्योधन कहनेलगा मैं सब पृथ्वी को अर्जुनके शस्त्रके प्रताप से युधिष्ठिरके वशमें और देवताओं के बीचमें जैसे इन्द्र यज्ञ करै उसी प्रकारसे युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ करते देखकर अप्रसन्न हुआहूं क्रोध और ईर्षा दिन रात मुझको जलातेहैं और उनके कारण से मैं इस प्रकार से सूखता जाताहूं जैसे गरमी में जल दिन २ सूखता चलाजाता है देखो श्री कृष्णने शिशुपाल को मारडाला सब राजा उसको देखते रहे परन्तु किसीने

पांडवों के भयसे उसका प्रतीकार नहीं किया भला ऐसा कौन होगा जिससे ऐसी बातें सही जायँगी श्रीकृष्णका यह महा अयोग्य कर्म पांडवों के प्रतापसे सिद्ध होगया और सब राजाओं ने पांडवोंको बनियों के समान रत्न ला लाकर भेंट किये ये सब बातें देख २ कर मेरे हृदयमें ऐसा क्रोध व्याप्त हुआहै कि उसके कारण से मेरा शरीर दिन रात जलाकरता है सो हे मामा शकुनि ! अब मैं इस दुःखको सह नहीं सक्ता हूं या तो जलमें डूब मरूंगा या अग्निमें जलमरूंगा नहीं तो विष खाकर सो रहूंगा २१।३० क्योंकि न मैं स्त्री हूं जो पराधीन होकर रहूं न अस्त्रज्ञ हूं जो शत्रुको जीतूं न पुरुष हूं जो शत्रु के अस्त्रोंको सहसकूं और न नपुंसक हूं जो शत्रुकी लक्ष्मी को देखकर ईर्षा न करूं भला ऐसा कौन होगा जो पाण्डवों का ईश्वरत्व धन और यज्ञको देखकर दुःखी न होवे सो मैं अपनी सामर्थ्य ऐसी लक्ष्मी को इकट्ठा करने को न देखकर मरना चाहता हूं युधिष्ठिरकी लक्ष्मी को देखकर मैंने यहही निश्चय करलिया है कि पौरुष अर्थात् उपाय निष्फल है और दैव अर्थात् प्रारब्ध श्रेष्ठ है क्योंकि मैंने पाण्डवों के नाश करने के लिये अनेक प्रकार के उपाय किये परन्तु कोई नहीं चला और उसके बदले में वे ऐसे बढ़गये जैसे जल में कमल बढ़ता है हमलोग दिन २ कम होतेजाते हैं और पाण्डवों की दिनप्रति बढ़ोतरी होती है इससे और क्या समझा जावे सिवाय इसके कि प्रारब्ध पौरुष से प्रबलहै इसके सिवाय पाण्डवों की सभा में रक्षकों ने मेरी हँसी की वह हँसी मुझको दिन रात अग्नि की समान जलाती रहती है सो हे मामा ! अब तुम हमारे पिता धृतराष्ट्र से कहदो कि मैं क्रोध के कारण से अपने प्राण छोड़ना चाहता हूं और तुम मुझको मरने की आज्ञा दो २१ । ३९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४७ ॥

अरतालीसवां अध्याय ।

शकुनिका दुर्योधनको युधिष्ठिरपर क्रोध न करने का उपदेश करना और उसके न मानने पर उसे युधिष्ठिर से जुआ खेलने की सलाह देना ॥

दुर्योधनकी उक्त बातको सुनकर शकुनि बोला कि हे दुर्योधन ! तुझको युधिष्ठिर पर क्रोध करना उचित नहीं है क्योंकि पाण्डव केवल अपने भाग्य ही से उत्तम भोग भोगरहे हैं देखो पहले तुमने उनके मारने को अनेक उपाय किये परन्तु कोई उपाय न चला वे अपने प्रारब्ध से जीते रहे और जितने फंदे

तुमने डाले सब में से निकल गये अपने प्रारब्धही से उनको द्रौपदी सी स्त्री द्रुपदसा श्वशुर धृष्टद्युम्न सा साला और कृष्णसे बलवान् सहायक मिले हैं उन के पिता के अंश में जो श्री थी उसी के तेजसे उनकी इतनी बढ़ोतरी हुई है इसमें तुमको रोना क्या है अर्जुन ने अग्निदेवको प्रसन्न किया और उन से गांडीव धनुष् और दो ऐसे तर्कस जिनके बाण कभी कम नहीं होते हैं पाये हैं उसने उनके और अपने बाहुबल के प्रतापसे राजाओं को जीतकर अपने वश में कियाहै तुमको उसे देखकर खेद करना क्योंकर उचित है अर्जुन ने मय दानवको अग्नि में जलने से बचाया था और उस उपकार के बदले में उसने सभा बनाई है कि जिसको किंकर नाम राक्षस उसकी आज्ञासे रक्षा करते हैं और जहां चाहें तहां लेजासक्तेहैं तुमको उसके विषय में रोना भीखना क्या है तेरी यह बात मिथ्या है कि मेरा कोई सहायक नहींहै ये सब तेरे भाई तेरी आज्ञा के प्रतिकूल नहीं हैं १ । १० इनके सिवाय द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, राजा सोमदत्त और अपने भाइयों सहित मैं तेरी सहायता करने को मौजूद हूं इन सबको साथ लेकर तू सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतसक्ता है यह सुनकर दुर्योधन बोला कि जो तुम्हारी सलाह हो तो मेरी यह इच्छा है कि मैं इन सब उक्त सहायकों को साथ लेकर पांडवों को विजय करूं क्योंकि इनको जीतलेने पर सब पृथ्वी अशेष राजा और संपूर्ण धनाढ्यलोग आप से आप मेरे वश में होजायँगे यह सुनकर शकुनि ने उत्तर दिया कि जिस समय श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीमसेन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, राजा द्रुपद और द्रुपदके धृष्टद्युम्न आदि पुत्र युद्ध करने को आवेंगे उस समय उनको तेरी तो क्या सामर्थ्य है देवता भी नहीं जीतसकेंगे क्योंकि ये सबके सब बड़े धनुर्धारी और अस्त्रज्ञहैं परंतु युधिष्ठिर को सहज में जीतने का उपाय मैं जानता हूं उसको सुनो और उसीके अनुसार करो यह सुनकर दुर्योधन बोला कि हे मामा! जो ऐसा कोई उपाय निकल आवे कि हमारी सेना और सुहृदों में से कोई न मरे और पाण्डव हमारे अधीन होजायँ तो क्याही बात है आप ऐसे उपायको मुझ से अवश्य कहिये शकुनि बोला कि युधिष्ठिर को जुआ खेलनेका बड़ा व्यसन अर्थात् शौक है उसको जुआ खेलना तो आता नहीं है परंतु जो कोई उसको जुआ खेलने को बुलाता है उससे वह अवश्य खेलता है और खेल से निवृत्त नहीं होता है और मैं जुआ खेलना बहुत अच्छी तरह से जानता हूं इस खेलका

जाननेवाला मेरी बराबर तीनों लोक में नहीं है इससे तुम युधिष्ठिर को जुआ खेलने को धृतराष्ट्रसे कहकर बुलवाओ उनकी आज्ञासे मैं युधिष्ठिरसे जुआ खेलकर तेरे लिये उसका सब राज्य और लक्ष्मी जीत लूंगा ११। २२ यह सुनकर दुर्योधन बोला कि आपही इस बातको हमारे पिता धृतराष्ट्र से कहिये मेरी सामर्थ्य कहने की नहीं है २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ४८ ॥

उन्चासवां अध्याय।

दुर्योधन का सन्ताप करना और शकुनि से सलाह करके पाण्डवों की लक्ष्मी को छलके पांसों से जीतने के लिये युधिष्ठिर को बुलवाना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! शकुनि युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञ से लौटकर दुर्योधनकी प्रीति के कारण से उक्त अध्याय में कहीहुई रीति से दुर्योधन से सलाह करके राजा धृतराष्ट्र के समीप जो अन्धा और ज्ञानी था गया और कहने लगा कि महाराज दुर्योधन अत्यन्त दुर्बल और पीला पड़गया है न जाने उसको क्या चिंता है और किस शत्रु के प्रकट होने के कारण से वह ऐसा दुःखी है आपका वह ज्येष्ठ पुत्र है आप भी उसके मनकी चिंता को नहीं पूछते हैं यह सुनकर धृतराष्ट्रने दुर्योधन को बुलाकर कहा कि हे पुत्र! तू अत्यन्त दुःखी है इसका कारण क्या है जो मेरे आगे कहने योग्य हो तो मुझसे भी कह आज मुझको शकुनि से मालूम हुआहै कि तू बहुत दुर्बल और पीला पड़गया है परन्तु मुझे ऐसी कोई बात नहीं देख पड़ती जिसके कारण से मैं तेरे दुःखका अनुमान करूं क्योंकि तेरे पास बड़ाभारी ऐश्वर्य है और सब भाई तेरे आज्ञाकारी हैं इसके सिवाय पहरने को उत्तमवस्त्र, खानेको मांसमय अन्न, चढ़ने को सुन्दर २ घोड़े, सोनेको उत्तम शयन, विहार को मनोरमा स्त्रियां, रहने को दिव्य मकान और क्रीड़ा करनेको अनेक क्रीड़ाके स्थान मौजूदहैं और देवताओं की तरहसे तेरी बातकाभी कोई उल्लंघन नहीं करताहै फिर क्या कारणहै जो तू इतना शोच करता है और लटकर पीला पड़गयाहै १। १० यह सुनकर दुर्योधन बोला कि हां मैं कुपुरुषकी भांति भोजन तो करलेताहूं और वस्त्रभी पहर लेताहूं परन्तु मुझको ऐसा भयानक क्रोध होरहा है कि उसके कारण से अब केवल अपने समयकोही पूरा कर रहाहूं संसारमें वही मनुष्य पुरुष कहाजाताहै जो शत्रुके वशमें होनेपर भी शत्रु से निडर होकर अपनी प्रजा को उस भयसे

छुड़ाने का प्रयत्न करे जो मनुष्य संतोष, दया, गर्व और भय करता है उसका लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती है मैं नित्य सुन्दर पदार्थों को भोगता हूं परन्तु युधिष्ठिर के वैभव के डाहसे वह भोग मुझ को गुण नहीं करते हैं और शत्रुओं की वृद्धि और अपने को हीन देख २ कर दिनप्रति दुबला हो होकर पीला पड़ता जाताहूं देखो युधिष्ठिर अट्ठासी सहस्र स्नातक ब्राह्मणोंको पालन करताहै और उन प्रत्येककी सेवाके लिये तीस २ दासी नियत करदी हैं और सोनेके पात्रों में दश सहस्र ब्राह्मण नित्य भोजन किया करते हैं राजा काम्बोज ने युधिष्ठिर के पास कदलीवन के मृगों के चित्र विचित्र साबर बड़े मोलके कम्बल तीनसौ ऊंट और खच्चर भेजे हैं और सब राजाओं ने उसके स्थानपर आ आकर अनेक रत्न भेंट किये हैं ११ । २१ मैं ने तो ऐसा धनका आगम आज तक न देखा था न सुना है सो उस बड़े धन को देखकर मेरा चित्त आनन्द रहित रहताहै देखो खेती करनेवाले ब्राह्मण, गौपालक वैश्य और सैकड़ों और मनुष्य उस यज्ञमें तीन खर्ब धन भेंटके लिये देनेको हाथों में सुवर्ण के कलश लियेहुये द्वार पर खड़ेरहे परन्तु इतनी भेंट लाने पर भी भीतर न जाने पाये और वरुण देवता ने सहस्र रुक्मकी कांवर में अमृतरूपी जल से भरा हुआ कांसे का पात्र जो बहुत से रत्नों से भूषित था रखवाकर युधिष्ठिर को भेंट करने के लिये भेज दिया उसमें वह अमृतरूपी जल युधिष्ठिर के लिये इस प्रकारसे भराहुआ था जैसे इन्द्रके लिये सम्पूर्ण ओषधी अमृतरूपी रस धारण किये रहती हैं उन रत्नोंमें से श्रीकृष्णचन्द्र ने श्रेष्ठ शंख लेलिया और उससे वह जल भर २ के युधिष्ठिरका अभिषेक किया उसी वक्त कांवर में पूर्व, पश्चिम और दक्षिण के समुद्रों का जल मँगवाया गया और उत्तर के समुद्रका जलभी जिस को सिवाय देवताओं के और कोई नहीं लासक्ता है उसी कांवरमें युधिष्ठिर के लिये लायागया इन सब बातोंको देख कर मेरे शरीर में शोकरूपी ज्वर हो आया इसके सिवाय अर्जुन उत्तर दिशा को विजय करके बहुतसा धन लाया और यह एक बड़ी अद्भुत बात थी कि उस यज्ञमें एक लक्ष ब्राह्मण परोसने वाले थे और उनकी संख्या शंखध्वनि से मालूम होजाती थी २२ । ३१ उन शंखों के शब्दों को सुन २ कर मेरे रोयें खड़े होजाते थे और जैसे निर्मल आकाश तारागणों के निकलने से सुशोभित होजाता है उसी प्रकारसे यज्ञशाला के निकट के स्थान देश २ के राजाओं से शोभित होगये थे और सब

के सब राजा भेंट दे देकर ब्राह्मणों को भोजन परोस रहे मेरी समझ में तो ऐसा वैभव इन्द्र, यम, वरुण और कुबेरका भी नहीं है उसी वैभव को देख २ कर मेरे हृदय में ऐसी आग लग गई कि वह शान्त नहीं होती है यह सुनकर शकुनि कहने लगा कि इस लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये एक उपाय तो मैं जानता हूँ कि मुझको जुआ खेलना बहुत अच्छी तरह आता है मेरी बराबर इस काम में तीनों लोक में कोई नहीं है मुझे पाँसों को बनाकर फेंकना उनके अनुसार दांव लगाना और देशकाल के अनुसार चालको चलना बहुत अच्छी तरह से आता है और युधिष्ठिर को जुए का व्यसन अर्थात् शौक़है परन्तु उसे खेलना नहीं आता है जिस समय तुम उसको जुआ खेलने या रण करने को बुलाओगे उसी समय वह चला आवेगा सो तुम उसको बुलवावो मैं छलके पाँसों से उसकी सब लक्ष्मीको खींच लूंगा ३२ । ४० यह सुनकर दुर्योधन जल्दीसे धृतराष्ट्र से बोला कि महाराज मामाजी युधिष्ठिर के सब धनको पाँसोंसे जीतही देने कहते हैं आप पांडवों को जुआ खेलने को बुलवाइये यह सुनकर धृतराष्ट्र बोला कि हम अभी कुछ नहीं कहसक्ते हैं पहले हम अपने धर्मदर्शी और बुद्धिमान् मन्त्री विदुर से सलाह करलें तब कुछ कहेंगे क्योंकि विदुरजी दोनों ओर के कल्याण होनेवाली बात करने की सलाह देंगे यह सुनकर दुर्योधन बोला कि जो आप विदुर जी से सलाह लीजियेगा तो वह जुआ खेलने की आपको कभी सलाह न देंगे और आपके निषेध करने पर मैं अपने प्राण छोड़दूंगा मेरे मरने पर आप विदुर जी के साथ अच्छी तरह आनन्द और पृथ्वी का राज्य कीजियेगा वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! धृतराष्ट्र ने दुर्योधन की उक्त पीड़ायुक्त और नम्र बातको सुनकर उसके दुःख को दूर करने के लिये दूतों और कारीगरों को बुला कर आज्ञा दी कि तुम लोग बहुत जल्दी एक रमणीक सभा जिसमें सहस्र खम्भे और सौ द्वार हों बनाओ और उसे रत्न जटित करके तय्यार होने पर हम से खबर करो यह आज्ञा देकर धृतराष्ट्रने दूत भेजकर विदुरजीको बुलवाया ४१ । ५० क्योंकि विदुरजीसे विना सलाह लिये वह कोई काम नहीं करता था और यद्यपि जुआ खेलने के दोषों को आप अच्छी तरह जानता था परन्तु पुत्र का स्नेह उसकी बुद्धिपर प्रबल होगया था विदुरजी उस कलह और विनाश के मूलको सुनकर धृतराष्ट्र के पास गये और धृतराष्ट्र को दंडवत् करके कहने लगे कि

आपको जुआ खिलाने का निश्चय मेरा प्रिय नहीं है आपको वह बात करना उचित है जिससे पुत्रोंमें आपसमें फूट न होवे धृतराष्ट्र बोला कि दैव कृपा करेगा तो पुत्रोंमें फूट न होगी परन्तु शुभ या अशुभ हित या अनहित कैसा ही हो हमको जुआ खिलाना दैवके योग से आवश्यक है सो तुम किसी बातकी चिन्ता मत करो हमारे तुम्हारे और भीष्म तथा द्रोणाचार्य के बैठनेपर कोई अ-नीति दैवकी रची हुईभी न होने पावेगी अब तुम जल्दी चलनेवाले घोड़ों को रथमें जोत कर इन्द्रप्रस्थ को चलेजाओ और युधिष्ठिर को लिवालाओ वहां उन लोगों से इस मंत्रका प्रकाश मत करना जिस दैवकी प्रेरणा से मेरे हृदय में यह बात समाई है वही जो कुछ चाहेगा सो ही होगा यह सुनकर विदुरजी चिंता करने लगे और भीष्मजी के पास गये ५१। ६०॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ४९॥

पचासवां अध्याय।

राजा धृतराष्ट्रका दुर्योधनसे दुःखका कारण पूछना और दुर्योधनका युधिष्ठिरके वैभव और भीमसेन आदिकी हँसी से दुःख पानेका वृत्तान्त कहना॥

उक्त कथाको सुनकर जनमेजय पूछनेलगा कि हे वैशम्पायनजी! वह भाई बंधोंका नाश करनेवाला जुआ जिसमें मेरे पुरुषा पांडवोंने अत्यन्त दुःख पाया था कैसे हुआ था उस समय सभामें कौन २ राजालोग थे और उनमेंसे किस २ ने जुआ खेलना अंगीकार और किसने निषेध किया था मैं इस जुएके सम्पूर्ण वृत्तान्त को विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं मेरी समझ में यह जुआ ही पृथ्वीके नाश होने का मूल था १। ३ यह सुनकर वैशम्पायनजी बोले कि हम इस कथा को विस्तार सहित कहते हैं सुनो विदुरजीके चलेजाने पर धृतराष्ट्र यह जानकर कि जुआ खेलने में विदुरका सम्मत नहीं है दुर्योधनसे एकान्त में कहनेलगा कि हे पुत्र! तू जुआ मत खेले विदुरजी इस कर्मको अच्छा नहीं बताते हैं वह बड़े बुद्धिमान् हैं और हमारे अहितकी बात कभी न कहेंगे विदुर को वह सब शास्त्र अच्छी तरह आता है जिसमें बृहस्पतिजीने इन्द्रको उपदेश किया है इससे मैं विदुरके कहनेको अपना परमहित मानता हूं तुझे भी उसके प्रतिकूल करना उचित नहीं है ४। ९ विदुरजी सब शास्त्रों के मतको जानने के कारणसे बड़े बुद्धिमान् और कौरवोंमें श्रेष्ठ हैं उसी प्रकारसे उद्धव भी अपनी बुद्धिके कारण से वृष्णिवंशियों में पूजित रहता है और सब उसकी सलाह के

अनुसार काम करते हैं मुझे जुआ खेलने में सिवाय वैरके और कुछ नहीं दीखता है इससे तू इस कर्मकी इच्छाको अब छोड़दे माता और पिताको पुत्र के लिये जो जो काम करना कहे हैं वह सब हम करचुके हैं अर्थात् इस लोक और परलोक की कामनाओं को देनेवाले सब शास्त्र तुझे पढ़ाये गये और बालकपन से घर में बड़े लाड़से रक्खा गया और अपने सब भाइयोंमें बड़ा होनेके कारण से राज्य भी तुझको मिला और उत्तम वस्त्र पहिरनेको और उत्तम भोजन खाने को और संसार में ऐसे अलभ्य पदार्थ जिनका मिलना दूसरेको दुर्लभ है तेरे लिये भोगने को मौजूद हैं अब तुझे शोच करना निरर्थक है अब तो तुझे चाहिये कि राज्य पाकर प्रसन्नता से रहै और अपने राज्य के बढ़ाने का प्रयत्न करै और जैसे इन्द्र स्वर्गमें रहकर शासन करता है उसीप्रकार से तू भी अपने राज्य पर शासन करै ऐसी अवस्था में तेरे हृदय में इस दुःख की मूलके जमने का क्या कारण है १० । १६ यह सुनकर दुर्योधन बोला कि आपका कहना सत्य है मेरे लिये भोजन वस्त्र आदि सुंदर २ भोग मौजूद हैं परन्तु जो पुरुष दूसरे की लक्ष्मी को देखकर सहमता है वह अधम गिना जाता है इससे मैं अपनी साधारण लक्ष्मी के सामने युधिष्ठिरके परम वैभव को देखकर अत्यन्त दुःख पाता हूं कि हाय युधिष्ठिर ने सब पृथ्वी को अपने वश में कर लिया है और मैं पत्थरकी तरह बैठा हुआ देख रहा हूं युधिष्ठिर की सभा में नीपु, चित्रक, कौकुर, कारस्कट और लोहजंघ नामं राजा दासों की तरह टहल करते हैं और हिमालय और समुद्र और अनूप देशके राजा लोग अनेक २ रत्न ले लेकर द्वार पर आते थे और हटा दिये जाते थे युधिष्ठिर ने मुझे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ जानकर भेंट लेने के कामपर नियुक्त किया था सो मैं असंख्य रत्न लेते २ थक गया परन्तु उनका पार नहीं पाया अन्त को थककर जब मैं खड़ा होरहा तब राजालोग जो दूर २ से रत्न लाये थे प्रतीक्षा करने लगे १७ । २४ इस धनका तो डाह मुझे होई रहा था कि उसमें दानव की बनाई हुई सभा में स्फटिक की बनी हुई नलिनी को जो पानी से भरी हुई दीखती थी देखने लगा मैंने वहां पानी समझकर अपने वस्त्र ऊंचे को उठा लिये परन्तु वहां जल न था मेरी उस भ्रान्ति को देखकर भीमसेन हँसने लगा उस समय मेरा चित्त एक तो अपने को रत्न सहित और शत्रु की बड़ी लक्ष्मी को देखने से व्याकुल होही रहा था दूसरे भीमसेनकी हँसीको देखकर और हृदय जलनेलगा मैंने भीमसेन

के मारने का भी विचार किया परन्तु अपने को असमर्थ देखकर और यह जानकर कि कहीं मेरी भी गति शिशुपाल की सी न हो मैं चुपका हो रहा इसके पीछे उसी सभा में मैं एक बावली के पास जिसमें कमल लगे हुये थे गया उसे देखकर मुझको यह भ्रांति हुई कि यहां जल नहीं है स्थल है और मैं उसमें गिरपड़ा और मेरे सब कपड़े भीगगये इस बात को देखकर अर्जुन और श्रीकृष्ण ठट्ठा मारकर हँसपड़े और द्रौपदी भी अपने साथ की स्त्रियों सहित हँसी उस हँसी को देखकर मैं परम दुःखी होगया उसी समय युधिष्ठिरकी आज्ञा से नौकरों ने मुझे सूखे वस्त्र लाकर पहिरनेको दिये उनको लेकर मैं और भी पीड़ावान् होगया इसके पीछे मैं एक स्थानके भीतर घुसनेलगा उस स्थान में कोई द्वार न था परन्तु ऐसा जान पड़ता था कि द्वारहै द्वार न होने के कारण से घुसतेमें मेरे माथे में स्फटिक की शिलाकी ठोकर लगी मैं उससे घायल होगया इस बात को नकुल और सहदेव देखकर दौड़े और मुझे पकड़कर सहदेव आश्चर्यसे कहनेलगा कि हे राजा! द्वार इधर होकर है इधरसे चलो उसी समय भीमसेनने मुझे यह कहकर पुकारा हे राजा! हे धृतराष्ट्र के पुत्र! और खिलखिलाके हँसके बोला कि द्वार इधर है इसके सिवाय मैंने उस सभामें वे रत्न देखे जिनके नामभी नहीं सुने थे सो हे पिता! इन सब कारणों से मैं अत्यन्त दुःखी होरहा हूं २५। ३६॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५०॥

इक्यावनवां अध्याय।

दुर्योधन का धृतराष्ट्र से युधिष्ठिर के यज्ञमें अनेक देशोंसे आये हुये धनका वृत्तांत कहना॥

दुर्योधन बोले हे पिता! अब मैं आपसे पांडवों के धनका हाल कहता हूं कि कहां कहां से और कौन २ लाया था यद्यपि मुझको यह अच्छी तरह मालूम नहीं है कि किस २ देशसे कितना २ धन आया था राजा काम्बोजने ये चीजें राजा युधिष्ठिर को भेंट की थीं, बिडाल और मेषके रोमसे बुनेहुये वस्त्र जिनपर सुनहरी काम होरहा था मृगचर्म, तीनसौ घोड़े जो तीतरकी समान विचित्र थे और रंग जिनका तोतेकी नाकके समान था और तीनसौ खच्चर जो पीलू, छोंकर और इंगुद वृक्षों के पत्तोंको खानेके कारणसे पुष्ट होरहे थे और मैंने यह देखा कि युधिष्ठिर के द्वारपर खेती करनेवाले ब्राह्मण और बहुतसे

शूद्र जो दास करनेके योग्य थे तीन वर्षके मालके धनको युधिष्ठिरको भेंट देने के लिये खड़ेरहे परन्तु उनको भीतर जानेकी आज्ञा नहीं मिली और दूसरे किसान और गौ पालनेवाले ब्राह्मण सुनहरी कमंडलों में घृत आदि लियेहुये आये परन्तु भीतर वे भी नहीं जाने पाये सब भेंटको लिये हुये बाहरही खड़ेरहे और मरुकच्छ देश के रहनेवालों ने कर्पासिक देशकी रहनेवाली एक लक्ष दासी जो श्याम वर्ण सूक्ष्मअंग अर्थात् पतली देह बड़े २ बाल और सोने के आभरणों से भूषित थीं और राकव नाम मृगों के चरसे जो ब्राह्मणों से लेकर शूद्रों तकके कामके थे और कंधार देश के घोड़े भेंट किये १ । १० और समुद्र के निष्कुट और पार बसनेवाले मनुष्य जो उन धान्योंको खाकर रहते हैं जो नदीके जल अथवा वर्षा में स्वतः ही उत्पन्न होते हैं अपने साथ वैराम, पारद, आभीर और कितव देशों के मनुष्यों को लियेहुये नाना प्रकार के रत्न, भेड़, बकरी, सुवर्ण, खच्चर, ऊंट, मधु और अनेक २ प्रकार के कम्बलों को ले लेकर भेंट देनेको आये और द्वारपर रोंके हुये खड़ेरहे इनके सिवाय प्राग्ज्योतिषका राजा भगदत्त जो म्लेच्छों का अधिपति और महारथीहै यवनों को साथ लिये हुये आजानेय जातिके बड़े शीघ्र चलनेवाले घोड़े आदि अनेक प्रकारकी भेंटें ले ले कर आया परन्तु द्वारपर रोंक दिया गया और पीछे से हीरा और पद्मराग मणियों से जड़े हुये वस्त्र और शुद्ध हाथीदांतकी मूठ लगी हुई तलवारें भेंट देकर भीतर प्रवेश करने पाया उस समय मैंने उस द्वारपर औष्णीक, अंतिवास, रोमक, पुरुषादक और एकपाद नाम मनुष्यों को जिनमें किसीके दो और किसीके तीन आँखें थीं और किसी २ की आँखें माथेमें थीं देखा था बहुतसे राजा लोग अनेक प्रकार की भेंट और दश सहस्र खच्चर जो अनेक देशों में उत्पन्न होनेके कारण से अनेक रंगके और सिखाये हुये विख्यात थे लेकर आये और जब उन्होंने वह सब और बहुत सा सोना चांदी युधिष्ठिर को भेंट करदिया तब भीतर सभामें जाने पाये इसी प्रकार से एकपाद नाम मनुष्यों ने अमूल्य सुवर्ण बहुतसे सुंदर घोड़े जिनका रंग तोते की नाक और बीरबहूटी के समान और चाल मनके वेगके समान थी भेंट दिये ११।२३ और चीन, शक, ओड़, बर्बर, वार्षणेय, हारहूंण, कृष्ण, हैमवत, नीप और अनूप देशों के मनुष्य अनेक प्रकार के घोड़े और दश सहस्र बड़े २ खच्चर जिनकी गर्दन काली रंग सुंदर सिखाये हुये पुष्ट और सौकोस

चलनेवाले थे भेंट देनेको लेकर आये और सभाके द्वारपर रोंकेजाने के कारण से खड़ेरहे और कंबूतीर के रहनेवाले राकब नाम मृगचर्म, रेशमी दुशाले, उत्तर देशके बनेहुये अनेक प्रकार के रेशमी गुच्छे लगे हुये चित्र विचित्र ऐसे चिकने वस्त्र जिनमें सूतकी बुनावट मालूम नहीं पड़ती थी, भेड़ों के रोम के बनेहुये कम्बल, सावर, तीक्ष्ण धारवाली बड़ी २ तलवारें, दुधारा खड्ग, शक्ति, परश्वध, पश्चिमदेश के बनेहुये फरसे अनेक प्रकार के रस और बहुत से रत्न ले ले कर युधिष्ठिर के भेंट देनेको आये परन्तु द्वारपर रोंक दिये गये और वहीं खड़ेरहे और शक, तुषार, कंक, रोमश और सींग रखनेवाले अनेक देशोंके मनुष्य बड़ी २ दूर जानेवाले हाथी अर्बुद घोड़े और सुवर्ण आदि अनेक चीजें लेकर वहां आये परन्तु भीतर जाने की उन लोगों को भी आज्ञा न मिली द्वारही पर खड़े रहे २४। ३१ और पूर्व देश के राजा लोग मणि और सुवर्ण से भूषित हाथीदांत के आसन रथ आदि शयन और विचित्र कवच अनेक प्रकार के शस्त्र रथ जो सुवर्ण से जटित अच्छे सिखाये हुये घोड़ों से युक्त और मृगचर्म से मढ़े हुये और चित्र विचित्र भूलें अनेक प्रकार के रत्न, नाराच बाण, अर्द्ध नाराच बाण और नाना प्रकार के शस्त्र युधिष्ठिरको भेंट करने पर भीतर घुसने पाये थे ३२। ३५॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ५१॥

बावनवां अध्याय।

दुर्योधनका धृतराष्ट्र से उन राजाओंका वृत्तांत कहना जिन्होंने युधिष्ठिर को यज्ञ में कर ला लाकर दिया था॥

दुर्योधन बोला कि उक्त लोगों के सिवाय और जिन २ राजाओंने युधिष्ठिर को यज्ञ में धन ला लाकर दिया उनका भी वृत्तांत मैं कहता हूं खस, एकासन, अर्ह, प्रदर, दीर्घवेणु, पारद, कुलिंद, तंगण और परतंगण नाम पहाड़ी देशों के राजा लोग जो मेरु और मन्दर पर्वतों के बीच में शैलोदा नदी के तटपर कीचक और वेणु नाम वृक्षों की छाया में बसते हैं नम्रतापूर्वक युधिष्ठिर को भेंट करने के लिये एक द्रोण पिपीलकजाति का सुवर्ण और काले तथा लाल रंगके चमर और शुक्ल आदि मणि जिनका प्रकाश चन्द्रमा के समान था और हिमालय पहाड़ के पुष्पों के मधु और कैलास पर्वत के उत्तर ओर की बड़ी बल करनेवाली ओषधियां और अन्य बहुत प्रकार की चीजें

ले लेकर आये और रोंके जाने के कारण से सब पदार्थ लिये हुये द्वारपर खड़े रहे १।७ और हिमालय पहाड़ के परार्द्ध और उदयाचल का रूप देश समुद्र और लौहित्य पर्वतपर रहनेवाले राजा लोग जो फल और मूल खाते चमड़े के वस्त्र पहिनते हैं और क्रूर शस्त्रधारी तथा क्रूरकर्मा कहलाते हैं उन को भी मैंने देखा कि चन्दन, अगरु, काला अगरु आदि काष्ठों के भार और चर्म, रत्न, सुवर्ण अनेक सुगन्ध देनेवाले पदार्थ दश सहस्र दासियां दूर २ के मृग पक्षी और अनेक पहाड़ी पदार्थों को लिये हुये युधिष्ठिर के द्वारपर खड़े हुये थे और कैरात, दर्द, दर्व, शूर, यमक, औदुंबर, दुर्विभाग, पारद, वाह्लीक, काश्मीर, कुमार, घोरक, हंसकायन, शिवि, त्रिगर्त्त, औधेठ, मद्र, कैकय, अंबृष्ट, कौंकुर, तार्क्ष्य, वस्त्रप, पल्हव, वशाती, मौलेय, क्षुद्रक, मालव, पौंड्रक, कुकुर, शक, अंग, वंग, पुंड्र, शाणवति और गय आदि देशों के कुलीन और शस्त्रधारी क्षत्रियों ने सैकड़ों प्रकार के धन ला लाकर युधिष्ठिरको भेंट किये ८।१७ और कलिङ्ग, मगध, ताम्रलिप्त, पुंड्रक, दौवालिक, सागरिक, पत्तोर्ण, शैवव, कर्ण और प्रावर्ण आदि देशों के राजा लोग युधिष्ठिर के द्वारपर आकर खड़े रहे युधिष्ठिर ने उन सबको एक २ करके द्वारपालकों के हाथोंसे बुलवाया और वे लोग एक २ सहस्र हाथी जिनके बड़े २ दांत थे और सुनहरी डोरियों और कमल के रंगकीसी झूलों से शोभित थे भेंट दे देकर सभा के भीतर गये ये हाथी काम्यक सरके समीपी देश के थे और उन पर कवच पड़े हुये थे १८।२१ इनके सिवाय और भी बहुत से देश देशांतरों से आये हुये राजाओं ने युधिष्ठिर को भेंटें दीं और चित्ररथ नाम गन्धर्वों के राजाने चार सहस्र ऐसे घोड़े जो वायु की समान चलते थे दिये और तुंबुरु नाम गन्धर्व ने सौ घोड़े जिनका रंग आम्रके पत्तोंके सदृश था और प्रत्येक घोड़े के गले में एक २ सोने का हार पड़ा हुआ था युधिष्ठिर को भेंट किये और राजा कृतिने शूकर देशके कईसौ हाथी निवेदन किये विटस और मत्स्य देशके राजाओंने सहस्र २ मतवाले हाथी जिनके गले में सोने की माला पड़ीहुई थीं देकर युधिष्ठिर को प्रसन्न किया और पांशु देश के वसुदान नाम राजा ने छब्बीस हाथी और कांचन मालाधारी दो सहस्र घोड़े जो जवान बलवान् और शीघ्रगामी थे युधिष्ठिर की भेंट किये उस यज्ञ में राजा द्रुपद ने चार सहस्र दासी दश सहस्र दास जिनके स्त्रियांभी थीं और कई सौ हाथी और हाथियों सहित छब्बीस रथ

युधिष्ठिरको दिये और कहा कि पाण्डवों के यज्ञके लिये मैं अपना सब राज्य देता हूं और अर्जुनका मान रखनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रने भी चार सहस्र हाथी दिये ये दोनों एक दूसरे की आत्माहैं और आपसमें प्राणों से अधिक प्रीति रखते हैं श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन के लिये स्वर्ग भी छोड़सक्ते हैं और अर्जुन भी उनके लिये अपने प्राण देने को तय्यार हैं २२। ३३ मलयागिरि और दर्दुर पर रहनेवाले क्षत्रियों ने सुगन्धित चन्दन के रसोंसे भरेहुये सुवर्ण के कलश, प्रकाशयुक्त मणि अगरु और चन्दन के भार रत्न सुवर्ण और महीन २ वस्त्र युधिष्ठिर को भेंट किये और चोल व पांड्य देश के मनुष्य द्वारपर भी न पहुँचने पाये और सिंहल देश के क्षत्रियों ने समुद्रमें उत्पन्न होनेवाली चीजें वैडूर्यमणि, मोती, सैकड़ों झूलें, मणि और सुन्दर वस्त्र पहिनेहुये दासियां लाकर भेंट कीं और ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रलोग भी बहुत से प्रीति और बहुत से मान के कारणसे वहां भेंट ले ले कर आये और सब म्लेच्छ सब वर्ण और नाना देशों के नाना जातिके मनुष्य उस यज्ञ में आये कि जिनके कारण से वह युधिष्ठिर का यज्ञस्थान स्वर्ग के तुल्य होगया उन सबको और राजा लोगों की लाई हुई भेंट को देख कर मेरे मन में प्राण छोड़ देने की इच्छा होगई मैं आपसे युधिष्ठिर का वैभव कहां तक कहूं एक छोटी सी बात है कि उसके यहां तीन पद्म और दश सहस्र तो केवल हाथी और घोड़ों पर चढ़ने वाले दास हैं कि जिनको युधिष्ठिर कच्चा और पक्का दोनों प्रकार का भोजन देता है और एक अर्बुद रथ और अनगिनती प्यादे हैं उनके भोजनका प्रबन्ध इस प्रकार से है कि तुले हुये सीधे और पके भोजन और एक स्थान पर इकट्ठा किया हुआ अन्न तय्यार रहता है और बांटने के समय पुण्याह शब्द किया जाता है ३४। ४४ मैंने युधिष्ठिर के घर में किसी वर्ण के किसी आदमी को ऐसा नहीं देखा जिसने भोजन और पान न किये हों अथवा जो संस्कृत और अलंकृत न होवें और अट्ठासी सहस्र स्नातक गृहस्थ ब्राह्मणों को युधिष्ठिर नित्य भोजन देता है और उनकी सेवाको प्रत्येक के लिये तीस २ दासी नियत कर रक्खी हैं वे लोग भोजन करके नित्य युधिष्ठिर को शत्रुनाश होनेका आशीर्वाद देते हैं और दशसहस्र यतीलोग जो ऊपर को वीर्य रखते हैं युधिष्ठिरके घरमें नित्यप्रति सुवर्ण के पात्रों में भोजन करते हैं और द्रौपदी इन सब लोगोंके भोजन करने और न करनेकी खबर रखती है और जबतक ये

सब नहीं खालेते तबतक आप भोजन नहीं करती है यज्ञमें ऐसा कोई राजा न था जिसने युधिष्ठिर को कर न दिया हो हां एक राजा द्रुपदने सम्बन्ध और कृष्णने मित्रता के कारण से तो अलबत्ता कर नहीं दिया ४५। ५०॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ५२॥

तिरपनवां अध्याय।

दुर्योधन का धृतराष्ट्र से सब राजाओं को युधिष्ठिरकी सेवा करते हुये देखकर संताप होने का हाल वर्णन करना॥

दुर्योधन बोला हे पिता! बहुत से श्रेष्ठ, सत्यप्रतिज्ञ, महाव्रत, विद्यावान्, वेदांत के वक्ता, अवभृथ नाम यज्ञ स्नानके करनेवाले, धृतिमान्, लज्जावान्, धर्मात्मा, यशस्वी और मूर्द्धाभिषिक्त राजालोग युधिष्ठिर की सेवा किया करते हैं मैंने उन लोगों को दक्षिणा में देने के लिये कांशी की दोहनी और सहस्रों गौ और अभिषेक के लिये छोटे बड़े पात्र लाते और युधिष्ठिर को भेंट देते हुये देखा है १। ४ राजा वाह्लीकने जांबूनद के सुवर्ण से भूषित रथ लाकर दिया और राजा सुदक्षिण काम्बोज देश के श्वेत घोड़े उस रथ में जोतने को लाया और राजा सुनीथ अनुकर्ष नाम रथको लेकर आया और चंदेरी देश के राजा ने आप अपने हाथ में ध्वजा लाकर दी ५। ६ राजा दाक्षिणात्यने शस्त्र और मगध देश के राजाने माला और पगड़ी, राजा वसुदान ने हाथी, राजा मत्स्यने धनसे भरे हुये छकड़े, राजा एकलव्यने जूते, राजा अवन्तीने अभिषेक के लिये अनेक प्रकार के जल, राजा चेकितान ने निषंग, राजा काशी ने धनुष् और राजा शलने एक तलवार जिसकी मूठ बहुत सुन्दर थी और सुनहरे भूषण अपने हाथों से ला लाकर राजा युधिष्ठिर को दिये ७। ८ और व्यासजी समेत धौम्य ऋषिने युधिष्ठिर को अभिषेक कराया उस समय उसके पास देवल, असित, परशुरामजी और २ बड़े २ तपस्वी ऋषि इस प्रकार से खड़े रहे मानों महेन्द्रके पास सप्तऋषि खड़े हुये हैं अभिषेक के पीछे सात्यकि ने युधिष्ठिरके ऊपर छत्र लगाया अर्जुन और भीमसेन पंखा हांकने नकुल और सहदेव चवर ढरने और जिस वारुणि नाम शंखको पूर्व कल्पमें प्रजापति ने इन्द्रको दिया था और अब समुद्र ने युधिष्ठिर के पास भेजा था उससे श्री कृष्णचन्द्रने विश्वकर्मा की बनाई हुई कांवर में से जल ले लेकर युधिष्ठिर को यज्ञ स्नान कराया मैं यह सब देखकर कल्मष के कारण से मूर्च्छित होगया

इसके पीछे जो सबने मिलकर मंगलकारी शंखध्वनि की उसको सुनते ही मेरे रोम खड़े होगये १०। १८ उस समय जो राजा तेजहीन थे मूर्च्छित हो २ कर गिरपड़े और धृष्टद्युम्न, सब पांडव, सात्यकि और श्रीकृष्णजी मेरी और उन गिरेहुये राजाओं की गति को देखकर हँसने लगे इसके पीछे अर्जुन ने पांचसौ बैल जिनके सींग सुवर्ण से मढ़े हुये थे ब्राह्मणों को दिये सो हे पिता! राजा रन्तिदेव, नाभाग, यौवनाश्व, मनु, पृथु, वैन्य, भगीरथ, ययाति और नहुष भी युधिष्ठिरकी बराबरी नहीं करसके हैं और की तो किनमें गिनती है उसकी लक्ष्मी और यह राजसूय यज्ञ राजा हरिश्चन्द्र की समान है हे तात! इसको देखकर मुझे अपना जीना व्यर्थ जान पड़ता है विधाताने यह द्वापरयुग अंधे की तरह होकर बनाया है इसी कारणसे विपरीत बातें होती हैं बड़े तो घटते जाते हैं और छोटों की बढ़ोतरी है सो हे पिता! यही कारण है कि मेरा चित्त स्वस्थ नहीं रहताहै और मैं शोच ही शोच में पीला पड़गया हूं १६। २६॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ५३॥

चौवनवां अध्याय।

राजा धृतराष्ट्रका दुर्योधन को पांडवों से द्वेष न करनेको उपदेश करना॥

दुर्योधन की उक्त बातोंको सुनकर राजा धृतराष्ट्र बोला कि हे पुत्र! निस्संदेह तू ज्येष्ठ और बड़ाई के योग्यहै परन्तु तू पांडवोंसे द्वेष मत करे द्वेष करनेवाले को मरने के समान दुःख होता है युधिष्ठिर निष्कपट है तुझसे कुछ द्वेष नहीं रखता है बल और धनमें तेरी समानहै तुझको उससे वैर करना उचित नहीं है तेरा पराक्रम और कुल उससे कुछ अधिक नहीं है फिर क्यों तू मोहके वशमें होकर भाईकी लक्ष्मीको लेना चाहताहै इससे तू शांत हो शोच को छोड़दे जो तेरी इच्छा यज्ञ करनेकी होवे तो तूभी अपने ऋत्विजों को बुलाकर सप्ततंतु यज्ञ कर तेरे पास भी राजा लोग धन रत्न और आभरणों को लेकर आवेंगे परन्तु पराये धनके लेने की इच्छा करना नीचों का काम है इस संसारमें वृद्धि उसी मनुष्य की होती है जो धर्म से रहता है और अपनेही धन में संतोष करता है पराये धन की इच्छा न करना अपने काम का उद्योग करना और शरणागत को पालना ये तीनों वैभव के लक्षण हैं १। ७ जो मनुष्य चतुर, विनीत, नित्य प्रसन्न और आपत्ति में दुःख को नहीं मानता है

उसका सदैव कल्याण होता है सो हे पुत्र! इन पांडवों को जो तेरी बांह के समान हैं छेदन करके अपने स्वार्थ के लिये मित्रवर्गों से द्रोह उत्पन्न मत करै पांडव तेरे भाई हैं उनके पास जो धनहै सो तेराही है उनसे तुझको द्रोह करना उचित नहीं है हमारे और पांडवों के पिता और पितामह एकही थे हम में उनमें कुछ भेद नहीं है इससे तुझको उचित है कि अपने चित्तको साव-धान करके मनमानता दान दे मनमानते भोग भोग और जैसी स्त्रियों से इच्छा हो वैसी स्त्रियों से क्रीड़ा कर ८। ११॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ५४॥

पचपनवां अध्याय।

दुर्योधनका धृतराष्ट्रसे अनेक नीतिके कारण कहकर यह कहना कि हमको पाण्डवों की लक्ष्मी लेना ही उचितहै नहीं तो मरना अच्छा है॥

धृतराष्ट्रकी उक्त बातोंको सुनकर दुर्योधन बोला कि जिस मनुष्यमें अपनी कुछ बुद्धि नहीं होती है केवल सुनी हुई बातोंको जानता है वह शास्त्रके अर्थ को इस प्रकारसे नहीं जान सकता है जैसे चमचा किसी भोजन के पदार्थ के स्वादको नहीं पहचानता है जैसे एक नावमें बँधी हुई दूसरी नाव स्वतंत्र नहीं होती है इसी प्रकार से आप मुझको सब पूर्वापर जाननेपर भी मोहित बतलाते हैं न जाने आप अपने स्वार्थ को क्यों नहीं पहचानते हैं मुझे बड़ा आश्चर्य है कि आप भी मुझसे द्वेष करते हैं १। २ आप अपने पुत्रोंको मरे की समान जानते हैं और अपने स्वार्थ के काममें भविष्य अर्थात् होनहार को आरोपण कर देते हैं जिस मनुष्य का आगे चलनेवाला ही दूसरे की शिक्षा के अनुसार चलता है वह भला क्योंकर न भूलै और उसे क्योंकर ठीक मार्ग मिलै सो आप पंडित, बुद्धिमान्, वृद्धसेवी और जितेन्द्रिय होकर हमलोगों को भुलाते हैं बृहस्पतिजी ने राजाओं की वृत्ति को संसार की वृत्ति से भिन्न कहा है इससे सावधान राजा को अपने कार्य का विचार सदैव करना उचित है सो क्षत्रियों की वृत्ति केवल विजय करना है चाहे उसमें धर्म हो या अधर्म इससे विजय के विषय में और बातें शोचनी ठीक नहीं हैं जो राजा शत्रुकी लक्ष्मी को हरने का विचार करता है वह सब दिशाओं को इस प्रकार से चलायमान कर देता है जैसे चाबुक सवार घोड़े को करता है ३। ८ वही उपाय राजा का शस्त्र है चाहे गुप्त हो चाहे प्रकट जिससे शत्रु को बाधा पहुँचे कुछ युद्ध करके

लेना ही शास्त्रसे लेना नहीं कहाता है और शत्रु मित्रका कुछ लेख किसी जगह नहीं है शत्रु वही है जो अपनेको दुःख देवे लक्ष्मी का मूल असंतोष है और अपने को बढ़ानेका यत्न करना यही श्रेष्ठ नीति है सो ऐश्वर्य और धन के विषय में ममता करना बुद्धिमानों का काम नहीं है क्योंकि इन दोनों को एक दूसरे से बल करके लेता चला आया है राजाओंका यही परमधर्म है देखो इन्द्रने नमुचि दैत्यसे मित्रता करके उसके शिरको काट डाला था आजतक शत्रु के जीतने को वही सनातन वृत्ति चली आती है शत्रु से विरोध न करने वाले राजा और देशोंमें न घूमनेवाले संन्यासीको पृथ्वी इस प्रकारसे ग्रस लेती है जैसे बिल में रहनेवाले जीवों को सर्प ग्रस लेता है ६। १४ कुछ शत्रुता जातिपर नहीं है जिसकी जीविका अपने तुल्य होय वही अपना वैरी है जो राजा मोहसे अपने शत्रुके पक्षकी बढ़ोतरी चाहा करता है उसकी जड़ इस प्रकारसे कटती जाती है जैसे रोग के बढ़ने से दिन २ शरीर क्षय होता चला जाता है और जो शत्रु छोटासा भी है परन्तु पराक्रममें बढ़ गया है तो वह भी इस प्रकारसे जड़ काट देता है जैसे जड़ में लगी हुई दीमक और पासके वृक्षों को भी खाजाती है इस कारणसे हे पिता! आपको भी शत्रुकी लक्ष्मीकी वृद्धि चाहना उचित नहीं है जातिवालोंमें वृद्धि उसी मनुष्यकी होती है जो अपने अर्थ की बढ़ोतरी इस प्रकारसे किया करता है जैसे जन्म होने के पीछे मनुष्य का शरीर दिन दिन बढ़ता है शीघ्र वृद्धि करनेवाला संसारमें पराक्रम ही है सो पाण्डवोंकी लक्ष्मीको देखकर मैं अत्यन्त दुःखी हूं या तो उस सब लक्ष्मी को लिये ही लेता हूं नहीं तो युद्ध में मरकर सुखपूर्वक सोऊंगा भला आप भी तो बताइये कि मेरे इस प्रकारके जीने से क्या अर्थ निकलता है कि पाण्डव तो दिनप्रति बढ़ते जाते हैं और मेरी दिन दिन घटोतरी होती है १५। २१॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५५॥

छप्पनवां अध्याय।

धृतराष्ट्रका दुर्योधनके कहने के अनुसार जुआ खेलने को सभा बनवाना और विदुरजी को भेजकर पांडवोंको बुलवाना॥

दुर्योधनकी उक्त बातों को सुनकर शकुनि बोला कि जिस युधिष्ठिर की लक्ष्मी को देखकर तुम इतने दुःखी होरहे हो उसको मैं जुये में जीतकर तुमको देसक्ता हूं तुम युधिष्ठिर को बुलवाओ मैं उसको जुआरूपी युद्धमें विना सेना

के जीत सक्ता हूं क्योंकि वह खेलना नहीं जानता है और मैं पाँसा फेंकने में बड़ा विद्वान् हूं इस जुआरूपी युद्ध में तुम मेरे पाँसों को बाण, दाउँ लगानेको धनुष् और पाँसों के फेंकने को रथ समझो यह सुनकर दुर्योधन बोला कि हे पिता ! हमारे मामा पाण्डवों की लक्ष्मीको पाँसों से जीत लेने को कहते ही हैं आप पाण्डवों को जुआ खेलने को बुलवाइये यह सुनकर धृतराष्ट्र बोला कि पहले हम अपने बुद्धिमान् भाई विदुर से सलाह करलें तब कुछ आज्ञा देंगे दुर्योधन बोला कि विदुरजी जैसा पाण्डवोंको चाहते हैं वैसा मुझको नहीं चाहते हैं इस कारण से वह जुआ कराने की कभी सलाह न देंगे किसी मनुष्य को कोई काम दूसरे के आश्रित होकर करना उचित नहीं है क्योंकि दो मनुष्यों की एकसी बुद्धि कभी नहीं होती है १ । ८ जो मनुष्य निर्भय रहकर पालन करता है वह सदैव पीड़ा पाता है जैसे वर्षा में चटाई भीज जाने से गल जाती है मनुष्य को उचित है कि जब तक सामर्थ्य हो तब तक अपने कल्याण का उपाय करै यह सुनकर धृतराष्ट्र बोला कि हमको बलवानों के साथ विग्रह करना अच्छा नहीं दीखता है तू अनर्थको अर्थ मानकर कलहके बीज बुआना चाहताहै कि जिसमें आगे तीक्ष्ण तलवारें और बाण उत्पन्न होवें ९ । १२ यह सुनकर दुर्योधन बोला कि जूआ खेलने में नाश और युद्ध होने की कोई बात नहीं है नल आदि पुराने मनुष्योंने भी जूआ खेला था इससे अब आप शकुनि की बातको अंगीकार कीजिये और सभाके बनने की आज्ञा दीजिये जूआ खेलना सुखका द्वारहै जो खेलता है उसको बड़ा सुख होता है इससे हमको पांडवोंके साथ जूआ खेलना योग्य है यह सुनकर धृतराष्ट्र बोला कि जो कुछ तू कहता है हमको उसमें से कुछ अच्छा नहीं मालूम होता है अब तेरी इच्छा में आवे सो तू कर आगे तुझे हमारा समझाना याद आवेगा क्योंकि यह बात कदापि कल्याणकारी और धर्मके अनुकूल नहीं है हम जानते हैं कि जो विदुरजीने कहा था कि इस दुर्योधन के कारण से सब कुलका नाश होगा वही अब मेरे सामने आवेगा वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्र ने उक्त प्रकार से कहकर और दैव को अमिट जानकर दुर्योधन की सलाह के अनुसार मनुष्यों को चिल्लाकर आज्ञा दी कि बहुत जल्दी हमारे लिये एक सभा ऐसी तय्यार करो जो एक कोस लम्बी और एक कोस चौड़ी हो और उसमें सहस्र खम्भे और सौ द्वार होवें

बाहर का दरवाजा उस सभा का स्फटिकमणिका बनाया जावे और सब जगह वैडूर्यमणि जड़ीजावे यह आज्ञा पाकर सहस्रों कारीगरोंने जो बड़े बुद्धिमान् और चतुर थे थोड़े ही काल में वह सभा बनाकर तय्यार करदी और अनेक प्रकार के रत्नों से उसे जटित करके बड़ी मनोहर करदी और उसमें सुन्दर २ सुवर्ण के आसन बिछवा दिये गये जब उस सभा के बनचुकने का हाल राजा धृतराष्ट्र से कहागया तब राजा धृतराष्ट्र ने विदुरजी को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम इन्द्रप्रस्थ जाकर पांडवों को मेरी आज्ञा कहकर लिवा लाओ पांडवों से कहदेना कि तुमको सभा देखने को बुलाया है जो चित्र विचित्र आसन और रत्नों से युक्त है उस सभा में तुम सब भाई मिलकर मित्रता का जूआ खेलना १३ । २२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५६ ॥

सत्तावनवां अध्याय।

विदुरका राजा धृतराष्ट्र से जुआ का विरोध करना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुर्योधन के मतको जानकर और भाग्य को अटल समझकर यह करने को तत्पर हुआ किन्तु विद्वानों में श्रेष्ठ विदुरजी अपने भाई धृतराष्ट्र की इस अन्यायरूपी आज्ञा से प्रसन्न नहीं हुये और कहने लगे कि हे राजा ! मैं तुम्हारी इस आज्ञा को अच्छा नहीं समझता हूं, ऐसा मत करो, मैं कुल नाश से डरता हूं क्योंकि जुए में आपके पुत्रों से अवश्य कलह होने की आशंका है १ । ३ धृतराष्ट्र बोला कि हे विदुर यदि भाग्य सीधा है तो कलह मुझको दुःख नहीं दे सक्ता है क्योंकि यह संपूर्ण संसार भाग्यही के अनुसार ब्रह्मा से रचा जाताहै स्वतन्त्र नहीं है इसलिये हे विदुर ! वहां जाकर मेरी आज्ञा से दुःसह तेज वाले कुन्ती के पुत्र युधिष्ठिर को जल्दी यहां बुलालाओ ४ । ५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५७ ॥

अट्ठावनवां अध्याय।

विदुरजीका धृतराष्ट्रकी आज्ञा से इन्द्रप्रस्थ जाकर पांडवोंको लाना और पांडवों का हस्तिनापुर में आकर सबसे मिलकर वास करना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्र से आज्ञा पाकर विदुरजी शीघ्र चलनेवाले रथमें सवार होकर पांडवों के पास गये और ब्राह्मण

आदि वर्णों से पूजित होकर नगर में होते हुये युधिष्ठिर के महलों में जो कुबेर के भवनों के सदृश बनेहुये थे गये युधिष्ठिर ने विदुरजीकी यथायोग्य पूजा की और आदर सहित बैठाकर धृतराष्ट्र की क्षेम कुशल पूछने लगा कि महाराज आपका मन कुछ उदास जान पड़ता है कहिये आप हमारी कुशल के लिये आये हैं या कुछ और प्रयोजन है और यह भी कहिये कि धृतराष्ट्र के पुत्र धृतराष्ट्र की आज्ञा में चलते हैं या नहीं और प्रजा उनके वश में है या नहीं यह सुनकर विदुरजी बोले कि राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्र सहित कुशल हैं और पुत्र के गुणों से विनीत प्रसन्न और शोकरहित हैं उसने तुम्हारी सब की क्षेम कुशल पूछकर यह कहला भेजा है कि तुम्हारे भाइयों ने भी एक सभा तुम्हारी सभा के सदृश बनवाई है उसको तुम सब भाई आकर देखो और भाई २ मिलकर मित्रता का जुआ खेलो यहां सब कौरवकुल के मनुष्य इकट्ठे हैं और तुम्हें देखने की अभिलाषा रखते हैं सो हे राजा युधिष्ठिर ! तुम वहां पहुँचने पर उन कपटी खिलाड़ियों को जिनको राजा धृतराष्ट्र ने जुआ खेलने को नियत किया है देखोगे १ । ६ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि जुआ खेलने में हमको कल्याण दिखाई नहीं देताहै ज्ञानवान् मनुष्य जान बूझ कर जुआ कभी नहीं खेलते हैं परन्तु हम सब तो आपकी आज्ञा के अनुसार चलनेवाले हैं आप कहिये कि आपकी समझ में यह काम कैसा है विदुरजी बोले कि मैं तो जुए को सदैव अनर्थ की जड़ समझता हूं मैंने इसके निवारण करने के अनेक यत्न किये परन्तु मेरा कोई उपाय न चला अन्तको धृतराष्ट्र का भेजाहुआ तुमको बुलाने को यहां चला आया सो तुमको जिस बात में कल्याण दीखे वही करो युधिष्ठिर बोले कि धृतराष्ट्र के पुत्रों के सिवाय और कौन कौन कपटी खिलाड़ी हैं कि जिनके साथ हम असंख्य धन लेकर जुआ खेलें विदुर जी बोले कि कन्धार का राजा शकुनि नाम बड़ा खिलाड़ी है वह मर्यादा छोड़ कर खेलता है और पांसे अपनी इच्छा के अनुसार डालसक्ता है और इसके सिवाय राजा विविंशति, चित्रसेन, सत्यव्रत, पुरुमित्र और जयभी बड़े खिलाड़ी हैं युधिष्ठिर बोला कि आप सत्य कहते हैं वहां बड़े २ छली कपटी और भय देनेवाले खिलाड़ी इकट्ठे हुये हैं परन्तु मनुष्य कोई स्वाधीन नहीं हैं सब प्रारब्धाधीन हैं इससे मैं धृतराष्ट्र की आज्ञाके अनुसार जुए में जाऊंगा बड़ों की आज्ञाका पालन करना सदैव श्रेष्ठ होताहै परन्तु जो मुझको कोई बुलावैगा

नहीं तो मैं शकुनि से जुआ नहीं खेलूंगा और बुलाने पर हटूंगा भी नहीं मेरा सनातन का यही व्रतहै १०। १६ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! युधिष्ठिर ने विदुरजी से उक्त प्रकार से कहकर यात्राकी सामग्री करने की आज्ञा दी और प्रातःकाल होते ही सब भाई सेवक और द्रौपदी आदि स्त्रियों सहित हस्तिनापुरको यात्रा की देखो मनुष्यको जब दैवगति प्राप्त होनेवाली होती है तब उसकी बुद्धि और तेज सब जाता रहताहै और पाँसों से बँधेहुये मनुष्य की तरह वह ईश्वरके आधीन रहताहै इसी कारण से युधिष्ठिर ने भी धृतराष्ट्र के बुलाने को अंगीकार कर लिया और विदुरजीके साथ २ भाइयों सहित वाह्लीक के दियेहुये रथपर चढ़कर हस्तिनापुर पहुँचा और वहां धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, सोमदत्त, दुर्योधन, शल्य, शकुनि, दुःशासन, जयद्रथ और अन्य राजालोग भाई बंधु तथा कौरवकुलके लोगों से यथायोग्य मिलकर भाइयों सहित धृतराष्ट्रके महलके भीतर गया वहां जाकर उसने गांधारी को दण्डवत् की और उससे आशीर्वाद पाकर उस वृद्ध अंधे राजा धृतराष्ट्रके पास गया राजा धृतराष्ट्रने उनको प्यार किया और सब कौरवकुल के मनुष्य उनको देखकर प्रसन्न हुये १७। ३१ इसके पीछे युधिष्ठिर आदि पांचो भाई द्रौपदी आदि स्त्रियों सहित रत्नजटित मकानों में आज्ञा पाकर टिक गये उस समय धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी स्त्रियां द्रौपदी के वैभव को देखकर अप्रसन्न हुई पांडवों ने उन स्थानों में बसकर विश्राम किया और स्त्रियोंसे बातचीत करके सन्ध्यावन्दन आदि रात्रिके सब कर्म किये उपरान्त ब्राह्मणों से स्वस्त्ययन कराके सुन्दर २ भोजन खा पीकर आनन्दपूर्वक सोगये और प्रातःकाल होनेपर उठकर नित्यकर्म किया और जुआ खेलनेवालोंके साथ २ सभा में गये ३२। ३८॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि अष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ५८॥

उनसठवां अध्याय।

युधिष्ठिरका सभामें जाना और शकुनिसे वार्तालाप होकर जुएका प्रारम्भ होना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित सभामें गया और सब राजा और छोटे बड़ोंसे यथायोग्य अवस्थाके अनुसार मिलकर सुन्दर आसनों पर भाइयों सहित बैठगया इसके पीछे जब सब राजालोग भी बैठगये तब राजा सुबलके पुत्र शकुनिने युधिष्ठिर से कहा

कि इस सभामें चौपड़ बिछी हुई है और पाँसेभी रक्खेहुये हैं आइये जुआ खेलें यह समयभी अच्छाहै सब मनुष्य आपकी बाट देखरहे हैं यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि जुआ छलरूप और पापकी जड़ है न इसमें कुछ क्षत्रियोंका पराक्रम है और न यह नीतिके ही अनुसार है इससे जुएकी प्रशंसा करना तुमको उचित नहीं है सज्जनलोग जुआरियों की प्रशंसा नहीं करते हैं इससे हे शकुनि ! तुमको निर्दयी होकर हमको कुमार्ग से जीतना उचित नहीं है १।६ शकुनि बोला कि जो जुआ खेलना अच्छे प्रकारसे जानताहै वह सब क्रियाओं में चतुर होजाता है और जीतना हारना तो केवल पाँसोंके आधीन है आप कुछ किसी बातकी शंका न कीजिये और अपने योग्य दावँ लगाकर जुआ खेलिये यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि असित और देवल आदि बड़े २ ऋषियोंने कहाहै कि छलियोंके साथ छलसे जुआ खेलना बड़ा पापहै युद्ध करके जीतना ही श्रेष्ठ है ७।१० जो मनुष्य श्रेष्ठ हैं वे मुखसे नहीं बकते हैं और न किसी काममें कपट करते हैं केवल युद्धहीकी इच्छा करते हैं जो सत्पुरुषोंका व्रत है हे शकुनि जिस धन से ब्राह्मणों के प्रयोजन निकलते हैं और विद्या सीखने का यत्न कियाजाता है उस धन से जुआ खेलकर तुमको दूसरों को जीतना उचित नहीं है मेरी इच्छा नीच कर्म करके सुख भोगने और पराये धन को लेने की नहीं है यह काम कपटी मनुष्यों का है सत्पुरुष इसको अच्छा नहीं बताते हैं यह सुनकर शकुनि बोला कि जो आप जुआ खेल में छल बताते हैं तो ऐसा कौनसा काम है जिसमें छल नहीं है देखो जब पण्डित का अपंडित से वेदपाठी का वेद न जाननेवाले से और अस्त्रविद्या जानने वाले का बिना अस्त्र जाननेवाले से सामना होताहै तब एक दूसरे को अपने २ काम में अपनी २ शिक्षाकी प्रबलता के अनुसार जीतलेता है इसी प्रकार से जुए में भी जो मनुष्य पाँसों के फेंकने की गति को अच्छे प्रकार से जानता है वह न जाननेवाले को जीत लेता है इसमें छल का क्या काम है और जो छल है तो सभी बातों में छल है इससे जो आप खेलना नहीं चाहते हैं और खेलने को छल समझकर भयभीत हैं तो जाने दीजिये न खेलिये ११।१७ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि मेरा सनातन व्रत यह है कि जो कोई मुझको जुआ खेलने को बुलाता है उससे मैं अवश्य जुआ खेलता हूं इससे दैव करेगा सोई होगा मैं भी होनहार के वश में हूं अब आप बताइये कि कौन मनुष्य

हमसे जुआ खेलेगा हम उसको जानकर खेलना प्रारम्भ करें यह सुनकर दुर्योधन बोला कि दावँ लगाने को रत्न और धन तो मैं दूंगा और हमारे मामा जी तुमसे जुआ खेलेंगे युधिष्ठिर ने कहा कि यह जुआ मुझको विषम मालूम होता है कि जिसमें दावँ कोई लगावेगा और खेलेगा कोई परन्तु विद्वान् इस को अंगीकार करें अच्छा आइये खेल प्रारम्भ कीजिये १८। २१॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि एकोनषष्टितमोऽध्यायः ५९॥

साठवां अध्याय।

द्यूतसभामें राजा धृतराष्ट्र, भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य आदिका आना तथा युधिष्ठिर का कौरवों से जुआ खेलना॥

इसके पीछे युधिष्ठिर के जुआ खेलने को तय्यार होने पर राजा धृतराष्ट्र सब राजाओं सहित उस सभा में गया और उसके पीछे भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और विदुरजी भी गये और एक २ सुन्दर २ सिंहासनों पर दो दो और एक २ होकर बैठगये उनके बैठने पर वह सभा ऐसी शोभायमान दीखने लगी मानों स्वर्ग में सब देवता इकट्ठे हुये हैं सबके सब शूरवीर और तेजस्वी थे उनके बैठ जाने पर जुआ प्रारम्भ हुआ युधिष्ठिर बोले कि यह सागरावर्त्तमें उत्पन्न हुई मणिकी माला जो स्वर्णजटित और बहुत मोल की है हम दावँ पर धरते हैं तुमभी कहो कि इसके बराबर क्या धन लगातेहो दुर्योधन बोला कि हमारे पास बहुत सा धन और मणिहैं आप किसी बातका संदेह न कीजिये और दावँ जीतिये वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे शकुनि ने पाँसे उठालिये और उनको फेंककर बोला कि मैं जीता १। ९॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि षष्टितमोऽध्यायः ६०॥

इकसठवां अध्याय।

युधिष्ठिर का शकुनि से जुआ होना और युधिष्ठिर का बहुत सा धन हारना॥

इसके पीछे युधिष्ठिर बोला कि जो मेरे दावँको कपट और छलसे जीताहै तो मैं और दावँ लगाता हूं ये सहस्र कुंभ सोने और चांदीसे भरेहुये हैं इनकी बराबर तुम भी दावँ लगाओ यह सुनकर शकुनि ने पाँसा फेंका और कहा कि मैंने यह भी जीता तब युधिष्ठिर बोला कि यह जड़ाऊ रथ जिसपर हम चढ़कर आये हैं और जो सहस्र रथों की समान, व्याघ्र के चर्म से मढ़ा हुआ घंटालियों से युक्त और आठ श्वेतरंगके बहुत श्रेष्ठ घोड़ोंसे जुता हुआ और जिसके चलने

में झंझनाहट मेघकी गरजना के समान होती है हम दावँ पर लगाते हैं वैश-म्पायनजी बोले कि छली शकुनिने यह सुनकर पाँसा फेंका और कहा कि मैं जीता फिर युधिष्ठिर बोला कि जो मेरी एक लाख तरुण दासियां मेरी आज्ञासे स्नातक ब्राह्मण मन्त्री और राजा लोगों की सेवा करती हैं और माला कंगन घुंघरू आदि अनेक मणिजटित सुवर्ण के गहनों और सुन्दर २ वस्त्रों से अलंकृत हैं और चौंसठकला और गाने बजाने में बड़ी प्रवीण हैं उनको मैं दावँ पर लगाता हूं वैशम्पायनजी बोले कि उस छली शकुनि ने उक्त दावँ को सुनकर पाँसे फेंके और कहा कि यह भी मैंने जीता १।११ तब युधिष्ठिर बोले कि जितनी दासी हैं उतनेही मेरे दास भी अनुलोम और प्रदक्षिण जाति के हैं वे सब बड़े ज्ञानी जितेन्द्रिय और युवा हैं और रेशमी वस्त्र और कुण्डल धारण किये हुये दिन रात हाथों में सुवर्णकी झारियां लेकर अति-थियों को भोजन कराया करते हैं मैं उन सबको दावँ पर लगाता हूं वैशम्पा-यनजी बोले कि वह छली शकुनि यह सुनकर पाँसा फेंककर बोला कि मैं जीता १२।१४ तब युधिष्ठिर बोले कि जो मेरे पास सहस्रों मतवाले हाथी सुनहरी झूल और माला धारण किये हुये अच्छी तरह सिखाये हुये राजाओं की सवारी के योग्य युद्धमें किसी शब्द से न डरनेवाले आठ आठ हथिनियों से युक्त और मेघ की समान गर्जनेवाले हैं और जिनके शरीर बड़े बड़े और दांत लम्बे २ हैं उनको मैं दावँ पर लगाता हूं वैशम्पायनजी बोले कि शकुनि ने यह सुनके हँसकर पाँसा फेंका और कहा कि मैंने यह भी जीत लिया १५।१८ तब युधिष्ठिर बोले कि हाथियों की संख्याके समान जो मेरे रथ हैं जिनमें सुनहरी पताका और ध्वजा लगी हुई हैं और सिखाये हुये घोड़े जुते हुये हैं और जिनपर चित्रयोधी रथी जो सहस्र २ मुद्रा मासिक पाते हैं रहते हैं उन को मैं दावँ पर लगाता हूं वैशम्पायनजी बोले कि यह सुनकर उस दुष्ट और वैर रखनेवाले शकुनि ने पाँसा फेंककर कहा कि मैं जीता १६।२१ तब युधि-ष्ठिर बोले कि मेरेपास जो तित्तर वर्णके गंधर्वोंके देशके सुनहरी माला पहिरे हुये सौ घोड़े हैं जिनको चित्ररथ गंधर्वने युद्धमें जीते जाने के कारण से अर्जुनको प्रीतिपूर्वक दिये थे उनको मैं दावँ पर धरता हूं वैशम्पायनजी बोले कि यह सुनकर उस छली शकुनिने पाँसा फेंककर कहा यह भी मैं जीता २२।२४ तब युधिष्ठिर बोले कि हमारे पास अयुत रथ और छकड़े हैं जिनमें छोटे बड़े

घोड़े जुते हुये हैं और वर्ण वर्णके साठ सहस्र वीर और पुष्ट योद्धा जो नित्य चावल और दूधका भोजन करते हैं उन पर सवार हैं मैं उन रथों को दावँ पर लगाता हूं वैशम्पायनजी बोले कि वह छली शकुनि पाँसा फेंककर बोला कि में जीता २५ । २८ तब युधिष्ठिर बोले हमारे पास तांबे और लोहेके चार सौ घड़े जिनमें एक २ द्रोण उत्तम सुवर्ण भराहुआहै रक्खेहुये हैं उनको में दावँ पर लगाता हूं वैशम्पायनजी बोले उस छली शकुनि ने यह सुनकर पाँसा फेंकदिया और बोला कि मैं जीता २९ । ३१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि एकषष्टितमोऽध्यायः ६१ ॥

बासठवां अध्याय ।

विदुरजीका धृतराष्ट्र को समझाना और दुर्योधन को त्याग करनेका उपदेश देना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! जब उक्त रीतिसे घोर जुआ होने लगा तब सब संशयोंको दूर करनेवाले विदुरजी बोले कि हे राजा धृतराष्ट्र ! जो कुछ मैं आपसे कहता हूं उसको समझिये मैंने आपसे पहले भी वही कहा था पर मेरा कहना आपको अच्छा नहीं मालूम हुआ सचहै कि जब रोगी असाध्य होजाता है तब उसको कोई दवा गुण नहीं करती है अब मैंने निश्चय समझ लिया कि जो इस पापी दुर्योधन ने उत्पन्न होते ही गीदड़ के रोने कासा शब्द किया था उसका फल अब आन पहुँचा है यही आप सब लोगों के कालका हेतु होगा आपने इस दुर्योधन को मोहसे अपने घरमें पुत्र नहीं किन्तु गीदड़ पाला है अब इसके विषयमें जो कुछ करना उचित है वह मैं शुक्रजीकी कही हुई नीतिके अनुसार कहता हूं १ । ४ जैसे मधु अर्थात् शहदका व्यापार करनेवाला मनुष्य शहद लगाहुआ देखकर वृक्षपर उसे लेने को चढ़जाता है परन्तु यह नहीं जानताहै कि इसपर चढ़कर मैं गिरूंगा और अन्तमें उसकी यही गति होती है कि वह गिरपड़ता है इसी प्रकारसे यह दुर्योधन पूर्वापरको न जानकर इन महारथियों के साथ जुआ खेलकर वैर बिसाता है मेरी जान में एक समय भोजके वंशमें एक राजाने अपने पुरवासियों के हितके लिये अपने पुत्रको जो अयोग्य था त्याग दिया था उस पुत्रका नाम कंस था और सब अंधक यादव और भोजवंशियों के त्याग करने पर श्रीकृष्णजी ने उसे मारडाला और उसके मारेजाने पर सब स्वजातीय प्रसन्न हुये और उन

को आनन्द करते हुये सौ वर्ष बीतगये इसी प्रकारसे आप अर्जुन को आज्ञा दे दीजिये कि वह दुर्योधन को निग्रहण अर्थात् गिरिफ्तार करलेवे ऐसा करने से सब कौरवों को बड़ा आनन्द होगा इससे हे राजा धृतराष्ट्र ! आपको उचित है कि इस काग और गीदड़रूपी दुर्योधन के बदले में इन मयूर और शार्दूलरूपी पांडवों को मोल लेलेवें और अपने को शोकके सागर में न डुबावें ५ । १० मनुष्य को कुलके लिये एक आदमी को ग्रामके लिये एक कुलको देशके लिये एक ग्राम को और अपनी आत्माके लिये पृथ्वी का त्याग देना उचित है देखो शुक्रजीने जो सर्वज्ञ और सबके चित्त की वृत्तिके जानने वाले हैं असुरों से यह कहकर कि यह पुत्र तुम सबका शत्रु और सबको भय दिलानेवाला होगा जंभको त्याग करवा दिया इसी प्रकार से आपको भी इस दुर्योधन को त्याग देना उचित है किसी राजाने मांस और सुवर्ण के लोभसे एक पक्षीको जो वनमें अपने घोंसले में रहता था और नित्य सुवर्ण उगिलता था मारडाला ऐसा करने से उस राजा के यह लोक और परलोक दोनों नाश होगये इससे आप भी पांडवों से द्रोह न कीजिये नहीं तो आपको भी उस पक्षी के मारनेवाले राजाकी समान दुःख होगा आपको उचित है कि जैसे माली बागों में फूल बड़े स्नेह से तोड़लेता है उसी प्रकार से आपभी इन कामरूपी वृक्षकी समान पांडवों में से गुणरूपी पुष्प चुन लीजिये आप वायु की समान एक डाली को दूसरी डाली में भिड़ाकर अग्नि उत्पन्न करते हैं इन पांडवरूपी वृक्षों में जुआरूपी अग्नि लगाकर पुत्र और मंत्रियों सहित क्यों मरना चाहते हैं क्योंकि जो इन्द्र भी मरुद्गणों सहित पांडवों से युद्ध करे तो वह भी नहीं जीतसक्ता है ११ । १७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि द्विषष्टितमोऽध्यायः ६२ ॥

तिरसठवां अध्याय ।

विदुरजीका अनेक पूर्वापर समझाकर धृतराष्ट्र को जुआ बंद कराने का उपदेश करना ॥

विदुरजी उक्त बातें कहकर फिर कहने लगे कि हे राजा धृतराष्ट्र ! यह जुआ कलहकी जड़ और आपस में फूट डालनेवाला है आपका पुत्र जुआ नहीं खेलता है किन्तु वैरकी जड़ जमारहा है इसके अपराध से प्रतीप शंतनु और वाह्लीकवंशी सब मनुष्य महाकष्ट भोगेंगे यह दुष्ट मदोन्मत्त होकर क्षेम को देशके बाहर इस प्रकारसे निकाले देता है जैसे गाय मतवाली होने पर

अपने सींगों को आपही पीड़ित करती है सुनिये जो मनुष्य बुद्धिमान् होकर दूसरे की मतिपर चलता है वह दुःखरूपी समुद्र में इस प्रकारसे डूबजाता है जैसे बाल मल्लाह की नाव पर चढ़कर मनुष्य घोर समुद्र में डूबमरता है १।४ आप तो यह जानकर प्रसन्न होतेहैं कि मेरा पुत्र जुए में जीतता जाताहै परन्तु इससमय तो यह आपको विनोद दीख पड़ता है और इसके अंतमें यही जुआ युद्धरूप होकर मनुष्योंका नाश करेगा आपने तो सब भाइयों के सम्मत के अनुसार यह नियम किया था कि हम पांडवों से अब विरोध न करेंगे फिर आप इस कलहके मूल जुएको क्यों कराते हैं हे प्रतीपवंशियो ! हे शंतनुवंशियो ! तुम तो सब दीर्घदर्शी हो मैं शुक्रजीकी कहीहुई नीतिको कहता हूं उसको सुनो और मन्दबुद्धियों की मतिपर चलकर अपने को घोर अग्नि में मत जलाओ भला यह तो बताओ कि जब इस जुए के मदसे मतवाले होकर युधिष्ठिर भीमसेन अर्जुन नकुल और सहदेव क्रोध को न रोककर तुमुलयुद्ध करेंगे तब तुम लोगोंकी कौन रक्षा करेगा तुम्हारे जुआ खेलने के पहिले किस बातकी कमी थी और जो अब तुम जुआ खेलकर पांडवों का धन जीत भी लोगे तो तुम्हारा क्या प्रयोजन निकलेगा तुम सबको तो पांडवों को ही अपना धन जानना चाहिये हम शकुनि को अच्छी तरह से जानते हैं यह छलसे जुआ खेलना अच्छी तरह जानता है सो इसको जहां से आया है तहीं जाने दो और पांडवों को मत लड़ाओ ५।१०॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि त्रिषष्टितमोऽध्यायः ६३॥

चौंसठवां अध्याय।

दुर्योधन का क्रोधकरके विदुरजीकी निंदा करना और निकाल देना
और विदुरजीका अनेक हितकारी बातें कहकर चलाजाना॥

विदुरजी की उक्त बातों को सुनकर दुर्योधन बोला कि तुम सदैव हम लोगों की निन्दा करके दूसरों की श्लाघा किया करते हो हम अच्छी तरह जानते हैं कि तुम दूसरों ही के हित में अनुरक्त रहते हो हमलोगों का मूर्खों कासा अपमान किया करते हो जो मनुष्य अपने स्वामीकी निन्दा और दूसरों की बड़ाई करताहै उसको समझना चाहिये कि यह अपने स्वामीको नहीं चाहताहै तुम्हारी जीभ ही तुम्हारे मन और अंतःकरणकी द्वेषताको प्रकट करती है परन्तु हमको बड़ा आश्चर्य यह है कि जो मनुष्य द्वेष भी रखताहै वह भी

लोकलज्जा से उस द्वेषको प्रकट नहीं करताहै परन्तु तुमको लोकलज्जा भी नहीं है तुम सर्प की समान गोदमें और बिल्लीकी तरह हमारे घरमें रहकर हमारा ही गला काटते हो स्वामी के साथ द्रोह करना बड़ा पापहै परन्तु आश्चर्यहै कि तुम पापसे नहीं डरते हो हमने तो अपने शत्रुओंको जीतकर बड़ा लाभ उठायाहै तुम हमसे खोटे वचन मत कहो तुमको हमसे मित्रता करके शत्रुसे मिलाप रखना और अंतःकरणमें हमसे द्वेष मानना उचित नहींहै १।४ जो मनुष्य क्षमाके अयोग्य वचन कहताहै उसको शत्रु समझना चाहिये शत्रु की श्लाघा करने से तुम्हारा छिपाहुआ वैर ठीक २ प्रकट होताहै तुमको लज्जा नहीं है और हमारे पिताके आश्रित होकर हमसे जो चाहे सो कहरहे हो अब तुम हमारा अपमान मत करो हम तुमको अच्छी तरह जानते हैं वृद्ध मनुष्यों के पास बैठकर बुद्धि सीखो और शत्रुकी ओर मत लो करनेवाला तो मैं हूं तुमको हमारा अपमान करने और परुष वचन बोलनेसे क्या प्रयोजनहै हम तुमसे कुछ हितकी सलाह नहीं पूछते हैं इससे तुम हमको बेर २ दुःख मत दो इस संसारमें शासन करनेवाला एक ईश्वर ही है दूसरा कोई नहीं है वही गर्भ में भी बालकको शासन करताहै और उसीकी इच्छासे मैं भी यह कर्म कररहा हूं देखो जो मनुष्य सांपको खिलाता और पहाड़की चोटी पर चढ़कर चोटीको ही गिराताहै वह भी तो बुद्धि रखताहै जो दूसरा कोई उसकी बुद्धिका प्रेरक न हो तो क्या वह यह नहीं जान सकता है कि सांप को खिलाने से सांप काट खायेगा और पहाड़परसे गिरपड़ूंगा अच्छे लोग अपने पालन करनेवाले को कभी शिक्षा नहीं करते हैं और जो कोई मनुष्य कपूरमें आग लगादे और शीघ्र उस आगको बुझाने का यत्न न करे तो उस कपूरकी उसको फिर राख भी नहीं मिलती है ५ । १० इसी प्रकारसे जो मनुष्य अपना शत्रु और द्रोही हो उसको अपने पास बसाकर कपूररूपी कल्याण में आग लगवाना उचित नहीं है इससे अब तुम हमारे यहां से चलेजाओ और जहां चाहे तहां रहो ११ यह सुनकर विदुरजी बोले कि जो मनुष्य इतनी ही बातपर दूसरे का त्याग करता है उसके साथ मित्रता सदैव नहीं रहती है हमें अब निश्चय होगया कि राजालोगों के चित्त द्वेष से भरेहुये रहते हैं पहिले तो वे मिलकर मित्र बना लेतेहैं और पीछे से उसीको मूसलों से मारते हैं तुम मुझको अज्ञानी जानकर अपनेको पण्डित समझते हो परंतु अज्ञानी वही है जो पहिले तो किसी को

सुहृद् माने और पीछे उसीमें दोष लगाकर उसकी बातका विश्वास न करे जो मनुष्य मन्दबुद्धि होता है वह किसीप्रकार से कल्याणकारी काम में नहीं लगाया जासकता है जैसे वेदपाठी के घरमें दुष्ट स्त्री होने से योग्यकर्म नहीं करती है तुमको हमारा हितकारी उपदेश इस प्रकार से अच्छा नहीं मालूम होता है जैसे कुमारी स्त्री साठवर्ष के पति को नहीं चाहती है इससे जो तुमको हित और अहित काम अपनी इच्छा के अनुसार ही करना है तो हमसे सलाह मत लो स्त्री मूर्ख और लूले लँगड़े मनुष्यों से पूछकर जो इच्छा हो सो करो इसमें संदेह नहीं है कि इस संसार में ऐसे पापी मनुष्य जो मुँहदेखी प्रिय बात को कहते हैं बहुतसे मिलेंगे परन्तु कड़ुआ बोलनेवाला कि जिसका परिणाम हितकारी हो और उस कड़ये वाक्यको सुननेवाला संसार में होना कठिन है १२। १६ राजाकी सहाय वही मनुष्य करसक्ता है जो राजा के प्रिय अप्रिय काम को करने के भयको छोड़कर और धर्म को श्रेष्ठ मानकर परिणाम में हित करनेवाले कड़ये वचन कहताहै १७ सो जैसे रोगी मनुष्य कड़ुई तीक्ष्ण और कषैली ओषधियों को पीकर आरोग्य होजाता है इसी प्रकारसे तुम भी हमारे कड़ये तीक्ष्ण कषैले यश करनेवाले और सुख देनेवाले औषधरूपी मंत्रको पीकर इस कल्मषरूपी रोगको शांत करो ईश्वर करे तुम्हारा कल्याण उसी प्रकार से होवे जैसे मैं धृतराष्ट्र के कल्याण को चाहा करता हूं तुमको अब मेरी नमस्कार है ब्राह्मण मुझे कल्याण होने का आशीर्वाद देवें जो मनुष्य पंडित होते हैं वे सर्पों को और नेत्रों में विष रखनेवाले पुरुषों को क्रोध नहीं दिलाते हैं १८। २०॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि चतुःषष्टितमोऽध्यायः ६४॥

पैंसठवां अध्याय।

युधिष्ठिरका जुए में सब राज्य और धन हारना और पीछे अपने चारों छोटे भाई और अपने आप और द्रौपदी कोभी हारजाना॥

उक्त बातों के समाप्त होने पर जुआ फिर होने लगा उस समय शकुनि युधिष्ठिरसे बोला कि आप बहुतसा धन हारचुके हैं अब जो कुछ आपके पास और धन विना हारा हुआ हो उसे लगाइये यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि मेरे धनकी संख्या नहीं होसकती है मैं हारे और विना हारे धनको अच्छी तरह जानता हूं तुम्हारे कहनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है अच्छा अब मेरे

पास जो अयुत, प्रयुत, पद्म, खर्ब, अर्बुद, शंख, महापद्म, निखर्व, कोटि और इससे भी अधिक जितना धनहै सबको दावँ पर लगाता हूं तुम पाँसा फेंको वैशंपायनजी बोले कि वह छली शकुनि उक्त बातको सुनकर पाँसे डालकर बोला कि मैं यह सब धन जीता १ । ५ तब युधिष्ठिर बोला कि अब मेरे पास जो बैल, घोड़े, गौ और असंख्य भेड़, बकरियां यहां और पर्णासा नदी और समुद्रके पास हैं उन सबको मैं दावँ पर लगाता हूं वैशंपायनजी बोले कि उस छली शकुनि ने यह प्रण सुनकर पाँसे फेंके और बोला कि मैं जीता तब युधिष्ठिर बोला कि नगर, देश, पृथ्वी, ब्राह्मणों के धनके सिवाय सब वर्णों का धन और ब्राह्मणों के सिवाय सब मनुष्योंको मैं दावँ पर लगाता हूं तुम पाँसा फेंको वैशंपायनजी बोले कि वह छली शकुनि उक्त प्रणको सुन कर प्रसन्न हुआ और पाँसा फेंककर बोला कि मैं जीता इसके पीछे युधिष्ठिर बोला कि ये हमारे भाई राजपुत्र जो कुण्डल आदि आभूषण पहिरे हुये बैठे हैं उन सबको मैं दावँ पर लगाता हूं वैशंपायनजी बोले कि उस छली शकुनिने यह सुनकर पाँसे फेंके और कहा कि मैं जीता ६ । ११ तब युधिष्ठिर बोला मैं अपने नकुल नाम भाई को जो श्याम वर्ण और जवान है नेत्र जिसके लाल लाल कंधे सिंह केसे और बाहें लम्बी २ हें दावँ पर लगाता हूं वैशंपायनजी बोले कि शकुनि यह सुनकर बोला कि अपने प्यारे भाई नकुल को हारकर फिर काहे से खेलोगे यह कहकर उसने पाँसे फेंके और कहा कि मैं जीता १२ । १४ तब युधिष्ठिर बोला अब मैं अपने इस सहदेव भाई को जो धर्म का उपदेश करनेवाला और पंडित है दावँ पर रखता हूं यद्यपि यह इस योग्य नहीं है वैशंपायनजी बोले कि वह छली शकुनि यह सुनकर और पाँसे फेंक कर बोला कि मैं जीता १५ । १६ सहदेव को जीतकर शकुनि बोला कि मैंने आपके दोनों प्यारे भाई नकुल और सहदेव जीतलिये अब ये भीमसेन और अर्जुन आपके पास बड़े धनरूप हैं इनको भी दावँ पर रखकर खेलिये १७ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि तू बड़ा मूढ़ है अधर्म तो करता है और नीति को नहीं देखता है और हम एक चित्तवाले भाइयों में फूट डालना चाहता है १८ यह सुनकर शकुनि बोला कि आप बड़ेहैं इससे मैं आपको नमस्कार करके कहता हूं कि धन में चित्त लगाकर अधर्म करनेवाला मनुष्य नरकगामी होता है और जिन २ बातों को मतवाले ज्वारीलोग कहते हैं वे बातें स्वप्न अथवा

जाग्रत् अवस्था में भी दिखाई नहीं देती हैं १६। २० यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि अच्छा हम अपने अर्जुन भाईको जो हम सब को युद्ध में नावकी तरह पार उतारनेवाला और शत्रुओं को जीतनेवाला है उसको मैं दावँ पर लगाता हूं यद्यपि वह इस योग्य नहीं है २१ वैशंपायनजी बोले कि उस छली शकुनि ने उक्त प्रणको सुनकर पाँसा फेंका और कहा कि मैं जीता २२ और उसको जीतकर कहने लगा कि मैं पांडवों के बड़े धनुर्धारी अर्जुनको तो जीत चुका अब तुम्हारे पास भीमसेनरूपी धन और रहगया है उसको भी दावँ पर लगादो वह धन भी खिलाड़ियों से जीतने के योग्य है २३ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि हम अपने भीमसेन नाम गदाधारियों में श्रेष्ठ भाई को जो अकेला हम सबको लेचलनेवाला इन्द्रकी समान हमको युद्धमें पारकरनेवाला क्रोधी महात्मा और महाबलवान् है और जिसके कंधे सिंहकेसे भौंहें टेढ़ी और चितवन तिरछी है दावँ पर लगाते हैं यद्यपि वह इस योग्य नहीं है २४। २५ वैशंपायनजी बोले कि वह शकुनि यह सुनकर और पाँसा फेंककर बोला कि मैं जीता २६ और फिर कहने लगा कि आप घोड़ा हाथी और सब धन सहित अपने भाइयों को हारचुके अब जो कुछ धन आपके पास हारा हुआ न हो उसे दावँ पर लगाइये यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि मैं सब भाइयों का प्यारा और इस जुये में हारनेवाला शेष रह गया हूं सो मैं अपने आपको अब दावँ पर लगाता हूं २७। २८ वैशंपायनजी बोले उस छली शकुनि ने यह सुनकर पाँसा फेंका और कहा कि मैं जीता २६ इसके पीछे शकुनि कहने लगा कि तुमने यह बड़ा नीच काम किया जो धनके शेष रहने पर अपने आप को हार दिया धन शेष रहने पर अपने को हारना पाप का हेतु होताहै ३० वैशंपायनजी बोले इसके पीछे शकुनि पाँसों को अलग अलग फेंक २ कर उन हारेहुये लोकवीर पांडवों से कहने लगा कि हे युधिष्ठिर ! तुम्हारी स्त्री पांचाली विना जीती हुई एक दावँ पर लगाने को और शेषहै उसको दावँ पर लगाकर अपने को जीत लीजिये ३१। ३२ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि जो द्रौपदी छोटी बड़ी अथवा दुबली नहीं है केश जिसके नील कुंचित हैं ३३ शरीर में सुगंधि कमलों कीसी आती है नेत्र शरद्ऋतु के फूले हुये कमलों के समानहैं स्वरूप लक्ष्मी का सा है ३४ और शील सम्पत्ति रूप सम्पत्ति और दया भी लक्ष्मी के समान है उसके गुण आज्ञा का पालन मीठा बोल और धर्म अर्थ और काम

की सिद्धि को देखकर ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो उसे न चाहे ३५। ३६ वह कामको पहिले से पहिले ही जान लेती है और गोपाल और छागपाल आदि सबके कियेहुये और नहीं कियेहुये कामों को देखती रहती है ३७ उस का कमल तुल्य मुख पसीना निकलने से मल्लिका के समान दीखताहै कमर उसकी पतली वाल लम्बे २ और मुख अरुणाई लिये हुये हैं और उसके शरीर पर रोम बहुत नहीं हैं ३८ यद्यपि उस सुन्दर अंग और कमर रखनेवाली द्रौपदी को दावँ पर लगाना बड़े दुःखकी बात है परन्तु मैं इसे भी दावँ पर धर कर खेलता हूं वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! युधिष्ठिर की उक्त बात को सुन उस सभा के वृद्धलोग धिक् धिक् कहने लगे ३९। ४० उस समय सब राजालोग शोच करने लगे और भीष्म द्रोणाचार्य और कृपाचार्य की देह में से पसीना निकलने लगा ४१ और विदुरजी शिर पकड़ कर नीचे को मुख कियेहुये सर्पकी समान श्वास लेने लगे ४२ और धृतराष्ट्र प्रसन्न हो हो कर बार २ पूछने लगा कि क्या जीता है क्या जीता है उस समय कर्ण दुःशासन आदि हँसने लगे और २ सभामें बैठेहुये मनुष्योंकी आंखों से आंसू गिरनेलगे ४३। ४४ इसके पीछे उस छली शकुनि ने द्रौपदी को दावँ पर धराहुआ सुनकर पाँसे उठालिये और फेंककर कहने लगा कि मैं जीता ४५॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि पंचषष्टितमोऽध्यायः ६५॥

छाछठवां अध्याय।

दुर्योधनका विदुरजीको द्रौपदी को दासीकर्म करने के लिये लानेकी आज्ञा देना।
और विदुरजीका उसकी निंदा करके ऐसा काम न करनेका उपदेश देना॥

युधिष्ठिर के सर्वस्व हारने पर दुर्योधनने विदुरजी से कहा कि तुम आकर अब द्रौपदी को जो पांडवों की प्यारी स्त्री है यहां लेआओ जिसमें वह अपुण्य-शीला दासियोंके साथ रहकर हमारे घरकी बुहारी दियाकरे १ यह सुनकर विदुरजी बोले कि तू यमराज की पाशमें बँधा होनेके कारण से अचेत होरहा है जो ऐसे दुर्वचन कहता है मृगरूप होकर तू क्यों व्याघ्रों को क्रोध दिलारहा है तू यह नहीं जानताहै कि तेरे शिरपर बड़े विषधर सर्प बैठे हुये हैं उनको क्रोधित करके अपने हठसे यमलोकको क्यों जाना चाहताहै २। ३ द्रौपदी दासी किसी प्रकारसे नहीं होसक्ती है क्योंकि युधिष्ठिरने पहिले अपनेको हार कर फिर द्रौपदी को दावँ पर रक्खाहै अपने हारनेपर युधिष्ठिर द्रौपदी का ईश

नहीं रहा मुझे दीखता है कि यह दुर्योधन राजा वेणुकी तरह शीघ्र नष्ट होनेवाला है इस जुए से बड़ा भारी वैर उत्पन्न होगया और दुर्योधन अन्त समय आने के कारणसे मतवाला होरहाहै मनुष्य को परुष वचन बोलना मर्मों को छेदना नीचकर्म से शत्रुको वश में करना और दूसरे को जलानेवाली और उद्वेग करनेवाली बात कहना उचित नहीं है ऐसा करने से मनुष्य नरकगामी होता है ४ । ६ जो मनुष्य मर्यादाके विपरीत ऐसे वचन दूसरे से कहता है जिनके कारणसे दूसरेको दिन रात शोच रहताहै उसका फल कहनेवाला ही भोगता है दूसरेका उससे कुछ बिगाड़ नहीं होसक्ता जो पण्डित हैं वे ऐसे वचन दूसरे से कभी नहीं कहते हैं ७ देखो जैसे मछली आटेके लोभ से बंसी को निगल जाती है और वह बंसी उसीके गले को छेद डालती है इसी प्रकारसे तुम अ-पनी भी गति जानकर पांडवोंसे वैर मत करो पांडवों ने तुमसे कोई बात ऐसी नहीं कही है जैसी तुम कहरहे हो जो मनुष्य कुत्तों के समान हैं वे सदैव तुम्हारी तरह वानप्रस्थ और तपस्वियोंको देख २ भूंका करते हैं ८ । ६ नरक का बड़ा द्वार कुटिलताहै दुर्योधन इस बात को नहीं जानताहै और दुःशासन आदि बहुत से मनुष्य इस द्यूत आदि कामों में उसके साथी हैं ये सब डूबना चाहते हैं और मेरे पथ्यरूपी वचनों को नहीं सुनते अब इस दुर्योधनके कारण से सर्व हरण और कुरुवंशियों का नाश होना चाहता है सब सुहृदों को पथ्य के समान जो हमने शुक्रके कहेहुये वाक्य सुनाये हैं उनको यह लोग नहीं सुनते हैं और अपने लोभको बढ़ाते जाते हैं १० । १२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि षट्षष्टितमोऽध्यायः ६६ ॥

सरसठवां अध्याय ।

दुःशासनका द्रौपदीको बाल पकड़कर सभामें खींचकर लाना और द्रौपदी का दुःखी होकर सभासदों से अपने दासी होने या न होनेका प्रश्न करना ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! दुर्योधन विदुरजी की उक्त बात को सुनकर धिक्कार देकर सब सभा के श्रेष्ठ मनुष्यों के बीच में प्रातिकामी सूतको देखकर कहने लगा १ कि हे प्रातिकामी ! तू जाकर द्रौपदीको यहां ले आ पां-डवोंसे अब मत डरै ये विदुरजी डरेहुये हैं सदैव विपरीतही कहतेहैं और हमारी वृद्धि कभी नहीं चाहते २ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेज़य ! वह प्राति-कामी दुर्योधन की आज्ञा पाकर पांडवोंके रहने के स्थान में इस प्रकार से घुस

गया जैसे कुत्ता सिंहोंके घरमें घुस जावे और द्रौपदी के पास जाकर ३ कहने लगा कि युधिष्ठिर जुए के मदमें मतवाले होरहे हैं उन्होंने तुमको हार दिया है और दुर्योधन ने तुमको जीता है सो तुम अब दुर्योधनके घरको चलो और वहां दासियों के साथ काम काज करो ४ यह सुनकर द्रौपदी बोली कि ऐसा कौन राजपुत्र मूढ़ जुए के मदसे मतवाला होगा जो स्त्रीरूपी धनसे जुआ खेलेगा तू क्या बकरहाहै क्या युधिष्ठिरके पास जुआ खेलनेको और कुछ धन नहीं है ५ प्रातिकामी बोला कि युधिष्ठिर जुए में सब राज्य और धन हारगये अन्त में जब कुछ न बचा तब उन्होंने पहिले अपने भाई और अपने को हार दिया और पीछे तुमको भी हार गया ६ द्रौपदी बोली कि अच्छा तू सभा में जाकर खिलाड़ी राजासे यह पूछिआ कि तुमने पहिले मुझको हारा है या अपने को ७ उसके उत्तर को सुनकर फिर तेरे साथ चलूंगी यद्यपि इसमें मुझको बड़ा दुःखहै ८ वैशम्पायनजी बोले कि द्रौपदीकी बातको सुनकर वह प्रातिकामी सभामें गया और युधिष्ठिर से पूछने लगा ९ कि आपसे द्रौपदी ने पूछाहै कि आपने पहिले किसको हाराहै मुझको या अपनेको १० यह सुन कर युधिष्ठिर ने अच्छा अथवा बुरा कुछ उत्तर नहीं दिया चुपका बैठारहा तब दुर्योधन बोला कि द्रौपदी से कहदो कि तू यहीं आकर यह प्रश्न कर जिसमें जो कुछ बात हो यहां सब लोग सुनें ११ । १२ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वह प्रातिकामी दुर्योधन की आज्ञा पाकर फिर द्रौपदी के पास गया और कहने लगा १३ कि हे राजपुत्री! तुझको सभासद्लोग सभाही में बुलाते हैं मैं जानता हूं कि अब कौरवों के नाश होनेका समय आगयाहै दुर्योधन अपनी वृद्धि अब नहीं चाहताहै इसी कारणसे तुझको वहीं बुलाताहै १४ द्रौपदी बोली कि हां तू सच कहता है ईश्वरने ऐसा ही रचरक्खा था मूर्ख और पण्डित सब किसी पर दुःख और सुख दोनों पड़ते हैं परन्तु संसार में धर्म बड़ा श्रेष्ठहै मुझे निश्चयहै मेरा धर्म ही मेरी रक्षा करेगा १५ सो तू अब फिर सभामें जाकर सब नीति जाननेवाले और गुणवान् श्रेष्ठ सभामें बैठेहुये मनुष्यों से कहदे कि कौरवोंको अपना धर्म छोड़ना उचित नहीं है मुझे निश्चय करके ठीक २ उत्तर दें उत्तर पानेपर मैं जैसा वे कहेंगे वैसाही करूंगी १६ यह सुनकर वह प्रातिकामी फिर सभामें गया और जो कुछ द्रौपदीने कहा था कह सुनाया परन्तु पांडवों ने उसको दुर्योधनकी हठको जानकर कुछ उत्तर नहीं दिया नीचेको गर्दन

झुकाये हुये बैठे रहे १७ वैशम्पायनजी बोले कि इसके पीछे राजा युधिष्ठिर ने उस बात को सुनकर जो दुर्योधन किया चाहता था द्रौपदी के पास दूत भेज कर कहलाभेजा कि तू यद्यपि रजस्वला और एक वस्त्र ही पहिरे हुये है परन्तु अब यहां आकर अपने श्वशुर राजा धृतराष्ट्र के सम्मुख खड़ी होजा १८।१९ यह सुनकर वह दूत द्रौपदी के पास गया और जो कुछ युधिष्ठिर ने कहा था कह सुनाया २० उस समय पाण्डवों ने दुःखी दीन और सत्यसे पूर्ण होकर लज्जाके मारे ऊपर को दृष्टि नहीं की २१ इसके पीछे दुर्योधनने पाण्डवों का मुख देखकर प्रसन्न होकर प्रातिकामी को आज्ञा दी कि तू द्रौपदी को यहीं ले आ यहां सब कौरववंशियों के सामने जो कुछ उसको कहना हो सो प्रत्यक्ष कहै २२ यह सुनकर उस सूतने द्रौपदी के कोपसे भयभीत होकर और दुर्योधन की आज्ञाको तिरस्कार करके सभावाले मनुष्यों से पूछा कि मैं द्रौपदी से क्या जाकर कहूं २३ यह सुनकर दुर्योधन ने दुःशासन को आज्ञा दी कि यह मेरे सूतका बेटा भीमसेन से डराहुआ है तेरा अब शत्रु कुछ नहीं कर सकते हैं तू आप जाकर द्रौपदी को पकड़ला २४ यह आज्ञा पाकर दुःशासन सभामें से उठकर उन महारथी पाण्डवों के घरके भीतर चलागया और द्रौपदी से बोला २५ कि हे पांचाली! हे कृष्णा! तुझको कौरवों ने जुए में जीता है और धर्म से पाया है अब तू लज्जा छोड़कर दुर्योधन के सामने अपनेको धिक्कार देतीहुई चल और कौरवोंकी सेवा कर २६ यह सुनकर द्रौपदी अत्यन्त दुःखी होकर अपने मुखको हाथों से पोंछकर चिल्लाती हुई उधरको भागी जिधर राजा धृत-राष्ट्र के घरकी स्त्रियां थीं २७ यह देखकर दुःशासन क्रोध करके उसके पीछे गर्जता हुआ दौड़ा और उसके शोभायमान केश पकड़लिये २८ देखो ईश्वर की क्या गति है कि जो बाल राजसूय यज्ञ में अवभृथ नाम स्नान में मंत्रोंके जल से सींचेगये थे उन्हीं को दुःशासनने पाण्डवों के पराक्रम को कुछ न समझकर पकड़कर मरोरडाला २९ और खींचकर उस दुःखी द्रौपदी को सभाकी ओर लेचला ३० तब द्रौपदी ने उस खींचने और झुकने की अवस्था में धीरे से कहा कि अरे मंदबुद्धि! अरे नीच! मैं रजस्वला हूं और एक वस्त्र पहिरे हुये हूं तू मुझको सभा में मत लेचल ३१ और हे कृष्ण! हे विष्णु! हे हरि! हे नर! कह २ कर रक्षाके लिये पुकारा और रोनेलगी तब दुःशासन बोला कि ३२ चाहे तू रजस्वला हो चाहे एक वस्त्र पहिरे हो चाहे नंगी हो तुझको हम

ने जुए में जीतकर दासी किया है सो तेरा रहना दासियों में ही योग्य है ३३ वैशंपायनजी बोले तब वह द्रौपदी जिसका आधा वस्त्र गिरगया था बाल फैलगये थे और दुःशासन के खींचने के कारण से काँप रही थी क्रोध करके धीरेसे बोली ३४ कि इस सभा में सब बड़े बूढ़े गुरुकी समान सब शास्त्र जानने वाले बैठेहुये हैं उनके आगे मैं इस प्रकार से क्योंकर जासकती हूं अरे निर्दयी! अरे नीच! मुझको नंगी क्यों करताहै और क्यों खींचताहै जो इन्द्र भी तेरी सहायताको आजावेगा तो इन राजपुत्रों के क्रोध करनेपर तू नहीं बचेगा ३५।३६ अरे दुष्ट ! इस समय युधिष्ठिर धर्म के विचार में है जोकि बड़ा सूक्ष्म है उस धर्म को वही लोग जानते हैं जिनकी बड़ी सूक्ष्म बुद्धि होती है सो मैं उस युधिष्ठिर में सिवाय गुणों के दोष तो यत्किंचित् भी नहीं देखती हूं ३७ हाय! तू मुझको इस रजस्वलाकी अवस्था में कौरवों के सामने खींचेहुये लिये जाता है इनमें से इस बात को देखकर किसीको लज्जा नहीं आती है मुझे अब निश्चय होगया कि ये सब भी तेरी ही सलाह में हैं ३८ देखो सब कौरव इस अधर्म और मर्यादारहित कामको देख रहे हैं और कौरवोंको धिक्कारहै निश्चय अब इन सब भरतवंशियों का धर्म और चलन नष्ट होगयाहै ३९ आज द्रोणाचार्य, भीष्म, विदुर और धृतराष्ट्र सब पराक्रमरहित होगये हैं जो कुरुवंशियों में वृद्ध और मुख्य होकर ऐसा अधर्म देखतेहैं ४० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे द्रौपदी ने उक्त प्रकार से कह २ कर अपने पतियोंकी ओर क्रोधसे कटाक्ष करके देखा उस कटाक्षों को देखकर सब पांडव जो क्रोध में भरेहुये थे क्रोधसे महादीप्त होगये ४१ और उनको ऐसा दुःख हुआ कि ऐसा राज्य और सर्व खजाने का भी नहीं हुआ था ४२ दुःशासन ने द्रौपदी को अपने दीन पतियों की ओर देखते हुये देखकर उसके बाल पकड़कर उसे हिलाया और बड़े शब्द से हँसकर कहा अरे दासी! अरे दासी! ४३ यह देखकर कर्ण ने भी हँसकर उस बातको माना और सुबल के पुत्र राजा कंधार ने दुःशासनकी बड़ाई की ४४ उस समय कर्ण दुर्योधन और दुःशासनको छोड़कर जितने सभामें बैठेहुये मनुष्य थे सबको बड़ा दुःख हुआ ४५ उस समय भीष्मजी द्रौपदी से बोले कि हे सुन्दरि! यद्यपि निर्द्धनी दूसरे के धन को जुए में दावँ पर नहीं लगा सकता है परंतु स्त्रीको अपने पति के वशमें समझकर धर्मकी सूक्ष्मताको विचारकर मैं तेरे प्रश्नका ठीक २ उत्तर नहीं दे

सकता हूं ४६ हां युधिष्ठिर ने यह तो सबके सामने कहा था कि पहिले मैं जीतागया हूं परन्तु युधिष्ठिर चाहे सब पृथ्वी छोड़दे परन्तु धर्मको नहीं छोड़ेगा इससे मैं तेरे प्रश्नका क्या उत्तर दूं ४७ यह शकुनि जुआ खेलने में अपनी समान दूसरा नहीं रखताहै युधिष्ठिरने, तुझे दावँ पर इसी की प्रेरणासे लगाया था परन्तु यह कहता है कि तू छलसे दावँ पर नहीं लगाई गई इससे मैं तेरे प्रश्नका यथोचित उत्तर नहीं देसकता हूं ४८ यह सुनकर द्रौपदी बोली इस राजाने जो जुआ खेलना नहीं जानता है दूसरों की प्रेरणासे जुआ खेलकर इन नीच दुष्टात्मा और जुआ खेलने को अच्छा जाननेवाले ज्वारियों के कहने से मुझे क्यों सभामें बुलवाया है ४९ और युधिष्ठिर जो सब पांडव और कौरवों में श्रेष्ठ हैं इन नीच और छलसे खेलनेवाले ज्वारियों से जुआ खेलकर अपने को हारने पर मुझे क्योंकर हारकर इनको दे सकते हैं ५० सो मैं इन सब कौरवोंसे जो सब पुत्र और पुत्रोंकी स्त्रियों के स्वामी हैं अपने उक्त प्रश्न को पूछती हूं सबजने इसको विचारकर ठीक २ कहें ५१ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उस समय उस दीन वचन कहती रोती और अपने पतियोंकी ओर देखतीहुई द्रौपदी से दुःशासन ने बहुत परुष और कठोर वचन कहे ५२ और भीमसेन ने द्रौपदीको जो दुःखके योग्य न थी और जिसका उत्तरीय वस्त्र गिरपड़ा था खैंचीहुई देखकर युधिष्ठिरपर क्रोध किया ५३॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि सप्तषष्टितमोऽध्यायः ६७॥

अरसठवां अध्याय।

भीमसेनका युधिष्ठिर पर कोप करना और दुःशासन का द्रौपदी को सभामें लेजाना द्रौपदी का सभामें अपने जीते जाने अथवा न जीते जाने का प्रश्न करना उसका उत्तर न मिलना और दुःशासन का द्रौपदी को नंगा करने को उसका वस्त्र खींचना उस समय द्रौपदी का कृष्णचन्द्र को याद करना और कृष्णचन्द्रका वहां गुप्त आना और द्रौपदीकी लज्जा रखना॥

भीमसेन बोला हे युधिष्ठिर! ज्वारियों के घरमें जो कोई दासी भी होती है तो उसपर भी दया करके उसको जुएमें दावँ पर नहीं लगाते हैं १ राजा काशी आदिने जो जो धन रत्न और और द्रव्य भेंट किये थे २ उनको और सब वाहन, शस्त्र, राज्य और हम सब और अपने आपको जिनको इन छलियोंने छलसे आपसे जीत लिया है जुए में दावँ पर लगाते हुये देखकर मुझको क्रोध

नहीं हुआ क्योंकि आप इन सबके ईशहैं परन्तु आपने जो द्रौपदीको दावँ पर लगाया यह बड़ा मर्यादा के विपरीत काम किया ३ । ४ यह द्रौपदी जो दुःखके योग्य नहीं है पाण्डवों से विवाहे जाने पर आपके कारण से इतना क्लेश पारही है ५ इस कारणसे मैं अब तुमपर क्रोध करता हूं और तुम्हारी दोनों भुजाओं को अग्नि में जलाऊंगा हे सहदेव ! उठ और अग्नि लेआ ६ यह सुनकर अर्जुन बोला कि हे भीमसेन ! तुमने ऐसी बात जैसी अब कही है कभी नहीं कही थी हम जानते हैं कि इन निर्दयी शत्रुओं ने तुम्हारे धर्म और गौरव को बिगार डालाहै ७ तुमको धर्म पर रहना उचित है भला ऐसा कौन होगा जो धर्मात्मा और शीलवान् बड़े भाई को छोड़कर जैसा मनमें आवे वैसा करे ८ और जो शत्रुके बुलाने पर राजाने क्षत्रियोंका धर्म विचारकर यह जुआ खेला है वह भी कीर्तिका करनेवाला है ९ भीमसेन बोला कि हे अर्जुन ! तू सच कहता है जो मैं इस प्रकार का धर्म न समझता होता तो इनकी दोनों बाहों को अवश्य अग्नि में जलादेता १० वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे विकर्ण नामी धृतराष्ट्र का पुत्र पाण्डवों को दुःखी और द्रौपदी को क्लिश्यमान देखकर कहने लगा ११ कि हे राजा लोगो ! जिस बात को द्रौपदी पूछती है उसको विचारकर स्पष्ट कहो नहीं तो वचनके विवेक न करने से नरकगामी होगे १२ हमारे कुल में जो वृद्धलोग भीष्मपितामह धृतराष्ट्र और विदुरजी हैं उन्होंने और हम सबके गुरु द्रोणाचार्य और कृपाचार्यने कुछ उत्तर नहीं दिया १३ । १४ इससे आप सब राजालोग जो दिशा दिशासे आकर यहां इकट्ठे हुयेहैं काम और क्रोधको छोड़कर अपनी अपनी बुद्धि से विचार कर जैसा उचित हो वैसा उत्तर दीजिये १५ देखिये इस द्रौपदी ने आपसे वारंवार इस प्रश्नको किया है सो आपको विचारकर उसका उत्तर ही देना उचित है १६ इस प्रकारसे विकर्ण ने बहुतसी बातें उन राजाओं से कहीं परन्तु किसी ने कुछ बुरा भला जवाब नहीं दिया १७ तब विकर्ण श्वास ले ले कर और हाथ मल मलकर कहने लगा १८ कि हे राजाओ ! तुमलोग स्पष्ट कहो चाहे मत कहो मेरी समझ में जैसा कुछ उत्तर आता है वह मैं कहता हूं १९ राजा के व्यसन अर्थात् शौक चार हैं मृगया अर्थात् शिकार खेलना १ मद्यपान २ पाँसोंका खेल ३ और स्त्रीभोग ४ । २० इन चारों कर्मों में राजा सदैव धर्म मार्गको छोड़कर बर्ताव करता है और इन कर्मोंमें लिप्त होने पर जो कुछ काम

राजा करता है उसको कोई नहीं मानता है २१ इस खेल में युधिष्ठिर को ज्वारियोंने खेलनेको बुलाया था अपने आप युधिष्ठिर खेलने नहीं आया और जिस समय युधिष्ठिर खेलमें सर्वस्व हारकर अपने आपको भी भाइयों सहित हारगया उस समय उस जुएकी आगमें इसने शकुनि आदि और खिलाड़ियों की प्रेरणा से द्रौपदी को जो साधारणमात्र पांचों पांडवोंकी पत्नी है दावँ पर लगा दिया इससे मेरे विचार में द्रौपदी नहीं जीती गई २२।२४ यह सुनकर सभामें बैठेहुये मनुष्य विकर्णकी प्रशंसा और शकुनि की निन्दा कर करके बड़ा शब्द करने लगे २५ जब वह शब्द बन्द होगया तब कर्ण क्रोधित होकर विकर्णकी बांह पकड़कर कहनेलगा २६ कि हे विकर्ण! तू बड़ी विपरीत बात कहता है हम जानते हैं कि जैसे अरणीकाष्ठसे अग्नि उत्पन्न होकर उसी काष्ठको जला देती है उसी प्रकार से तू भी जिस कुलमें उत्पन्न हुआहै उसीको नाश करना चाहता है २७ देखिये सब बड़े २ लोग यहां बैठेहुये हैं वे सब द्रौपदी को जीती हुई मानकर उसके बार बार पूछने पर भी कुछ नहीं कहते हैं २८ तू अज्ञान बालक होकर क्यों निकला पड़ता है और वृद्धोंकी तरह बोलताहै २९ तेरा यह कहना कि द्रौपदी जीती नहीं गई है केवल तेरे धर्म न जानने का कारणहै ३० भला हमें भी तो बता कि तू द्रौपदी को विना जीती क्योंकर समझता है इस पांडव युधिष्ठिर ने सब सभाके सामने सब धन दावँ पर लगा दिया क्या द्रौपदी सब धनमें नहीं है जो तू उस को विना जीती हुई कहता है ३१।३२ जब पांडवों ने आपही कहदिया और आज्ञा दे दी फिर कौनसी बात ऐसी रही जिससे तैंने उसको विना जीती स- मझा ३३ और जो तू इस द्रौपदी को एक वस्त्र पहिरे हुये सभा में लाना अधर्म जानता है तो उसका उत्तर यह है ३४ कि देवताओं ने स्त्रीका पति एकही कहाहै इससे जो स्त्री एक पतिसे दूसरा पति भी करती है वह बंधकी कहलाती है सो द्रौपदी तो अनेक पतियों से रमण करती है इसका सभामें लाना और एक वस्त्र पहिरे हुये होना तो कुछ बात नहीं है जो इसको नंगा भी कियाजावे तो भी कुछ आश्चर्य की बात नहीं है ३५।३६ शकुनि ने इन सब पाण्डव और द्रौपदी को सब धन सहित धर्म से जुये में जीता है ३७ सो हे दुःशासन यह विकर्ण तो अज्ञानी है तुम इन पाण्डव और द्रौपदी के वस्त्रों को भी उतार लो ३८ यह सुनकर सब पाण्डवोंने अपने अपने वस्त्र उतारकर अलग रख

दिये और सभामें बैठगये ३६ और दुःशासन बलसे द्रौपदी के वस्त्रों को खैंच कर नंगी करनेलगा ४० वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! उस समय द्रौपदी हरि का स्मरण करके कहने लगी हे गोविंद ! हे द्वारकावासी ! हे कृष्ण ! हे गोपीजनप्रिय ! हे केशव ! हे नाथ ! हे रमानाथ ! हे व्रजनाथ ! हे आर्त्तिनाशन ! हे जनार्दन ! हे महायोगी ! हे विश्वके अंतर्यामी ! हे विश्वकर्त्ता ! क्या तुम मेरे इस दुःखको नहीं जानते हो मैं तुम्हारी शरणहूं मेरी रक्षा कीजिये और इस कौरव-रूपी समुद्र में डूबती हुई को बाहर निकालिये ४१।४२ हे जनमेजय! द्रौपदी इस प्रकारसे कृष्णचन्द्र का स्मरण कर करके अपना मुख ढांपकर बड़े दुःखसे विलाप करने लगी ४४ उसकी आरतवाणी को सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र गद्गद होगये और अपनी कमलासन शय्या को छोड़कर तुरन्त द्वारका से द्रौपदी के पास आनपहुँचे ४५ जब उसका धर्मरूपी वस्त्र जिसको वह पहिरेहुये थी गिरपड़ा तब कृष्णचन्द्रने उसको नाना प्रकार के उत्तम वस्त्रों से ढक दिया ४६ ज्यों ज्यों दुःशासन उसके वस्त्र को खींचता जाता था त्यों त्यों श्वेत काले पीले अनेक रंगों के वस्त्र निकलते आते थे यहांतक कि द्रौपदी के धर्म के कारण से सैकड़ों वस्त्र प्रकट होगये ४७ । ४८ उस समय चारों ओरसे बड़ा हलहला शब्द होने लगा और सब राजा लोग दुर्योधन की निन्दा कर करके द्रौपदी की प्रशंसा करने लगे ४६ और भीमसेन ने अपने हाथ से हाथ मल कर सब राजाओं के बीचमें यह सौगंद खाई और कहा ५० कि मैं सब राजाओं को सुनाकर प्रतिज्ञा करता हूं कि युद्ध में मैं इस नीच और पापी दुःशासन के हृदय को फोड़कर इसका लोहू पीऊंगा आजतक ऐसी प्रतिज्ञा न किसी ने की है न कोई करेगा परन्तु जो मैं इस अपनी प्रतिज्ञा को सत्य न करूं तो मुझको मेरे पहिले पुरुषाओं की गति न मिले ५१ । ५३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! भीमसेन की भयानक प्रतिज्ञा को सुनकर सब राजा लोग उसकी प्रशंसा करके दुर्योधन की निन्दा करने लगे ५४ इसके पीछे जब वस्त्रों का ढेर छकड़े के अनुमान होगया तब दुःशासन वस्त्र खींचते खींचते थककर बैठ गया ५५ और सभा में बैठेहुये राजालोग पाण्डवों की गति को देखकर धिक्कार दे दे कर बड़ा शब्द करने लगे कि जिसके सुनने से रोम खड़े होगये ५६ इसके पीछे सुजन मनुष्यों ने धृतराष्ट्र की निन्दा करके पुकार कर कहा कि बड़े दुःखकी बात है कि द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर अभीतक

कौरवों ने स्पष्ट नहीं दिया ५७ और विदुरजी ने सब सभावालों को जो एक २ दो दो करके चलने लगे थे रोककर दोनों हाथ उठाकर पुकार कर कहा ५८ कि देखो द्रौपदी अपना प्रश्न करके अनाथ की तरह रो रही है सो तुम्हारे स्पष्ट उत्तर न देने के कारण से धर्मपीड़ा पारहा है ५९ जो मनुष्य दुःखी और पीड़ावान् होता है वह सभा में आता है और सभा के मनुष्य अपने सत्य और धर्म से उसके दुःखको दूर कियाकरते हैं ६० इससे मेरी प्रार्थना है कि इस सभा के श्रेष्ठ मनुष्य इस धर्मरूपी प्रश्नका उत्तर काम क्रोध और बलको छोड़कर सत्य २ देवें ६१ जैसे विकर्ण ने अपनी बुद्धिके अनुसार उत्तर दिया है इसी प्रकार से आप लोग भी अपनी २ बुद्धि के अनुसार इसका उत्तर दीजिये ६२ जो सभामें बैठनेवाले धर्मदर्शी मनुष्य किसी प्रश्नका स्पष्ट उत्तर नहीं देते हैं उनको झूंठ बोलनेका पाप लगता है ६३ और जो मनुष्य धर्मदर्शी होकर सभामें बैठकर धर्मविपरीत बात कहता है उसको मिथ्या बोलने का पूरा २ पाप लगता है ६४ देखो हम अब तुमको अंगिरावंशी सुधन्वा मुनि और प्रह्लाद का संवाद जो इस समय के योग्य है सुनाते हैं ६५ प्रह्लाद नामी एक दैत्यों का राजा था उसका विरोचन नामी एक पुत्र था एक समय वह अंगिरावंशी सुधन्वा मुनि के पास उनकी कन्या को मांगने गया ६६ उस समय केशिनी नाम कन्याने उन दोनों अर्थात् सुधन्वा और विरोचन से पूछा कि तुम दोनों में से कौन श्रेष्ठहै वे दोनों अपने २ को श्रेष्ठ बतानेलगे और दोनोंने प्रण किया कि जो हारजावे अर्थात् जो एककी अपेक्षा में दूसरा श्रेष्ठ न ठहरे वह दूसरे को मार डाले ६७ तब वे दोनों विवाद करतेहुये प्रह्लाद के पास गये और उससे पूछा कि आप सच २ कहिये कि हम दोनों में से कौन श्रेष्ठहै ६८ यह सुनकर प्रह्लाद डरकर सुधन्वा को देखने लगा तब सुधन्वाने क्रोधित होकर कहा कि जो तू झूठ बोलेगा अथवा प्रश्नका उत्तर न देगा तो इन्द्र अपने वज्र से तेरे शिर के सौ टुकड़े करेगा ६९।७० यह सुनकर प्रह्लाद डरके मारे इस प्रकारसे कांपनेलगा जैसे हवासे पीपलका पत्ता हिलताहै और कश्यपजी के पास जाकर पूछने लगा ७१ महाराज आप इस लोकमें देवता असुर और ब्राह्मण सबके कर्मोंको जानते हैं इससे इस धर्मसंकटमें मुझे यह बताइये ७२ जो मनुष्य प्रश्नका उत्तर न दे अथवा दे भी तो विपरीत उत्तर दे तो उसकी कैसी गति होती है ७३ कश्यपजी बोले कि जो कोई जान बूझकर प्रश्नका उत्तर स्पष्ट नहीं देता है

उसकी आत्मा वरुणकी सहस्र पाशों से बांधी जाती है ७४ और जो साक्षी होकर दोनों ओर मिलकर ठीक २ नहीं कहता है उसकी भी यही गति होती है ७५ जब एक वर्ष होजाता है तब उसकी एक पाश छूटती है इसी प्रकार से सहस्र वर्षों में वह उन पाशों से छूटता है इससे जो सत्यवादी हैं सो सत्य ही सदैव कहदेते हैं ७६ जिस सभा में धर्म की बातको अधर्म की बातोंसे और की और कह देते हैं उस सभा के बैठनेवाले धर्म को दूर करने के कारणसे पाप के भागी होते हैं ७७ और बुरे को बुरा न कहने के कारण से आधा पाप सभापति को चौथाई पाप करनेवाले को और चौथाई सभामें बैठनेवालों को लगता है ७८ और जिस सभा में बुरे को बुरा कहकर निन्दा करते हैं उस सभा के बैठनेवाले पापसे छूटजाते हैं और वह पाप केवल करनेवाले ही को लगता है ७९ सो हे प्रह्लाद जो मनुष्य पूछेजाने पर धर्म के विपरीत बात कहता है उसकी अगली और पिछली सात २ पीढ़ी और सब कियेहुये शुभकर्म नष्ट होजाते हैं ८० देवतालोग इन नीचे लिखेहुये दुःखों को एकसा ही जानते हैं अर्थात् जिसका धन जाता रहता है, जिसका पुत्र मरगया है, जो ऋणी है, जिसका काम बिगड़ गया है, जिस स्त्री का पति मरगया है, जिसको राजा ने ग्रस्त अर्थात् गिरफ़्तार किया है, जिस स्त्री के पुत्र नहीं है, जिसको व्याघ्र ने घेर लिया है, जिस स्त्रीके सौत है और जिसको साक्षी ने मारा है ८१ । ८२ सो जो मनुष्य झूठ बोलता है उसको ये ऊपर लिखेहुये सम्पूर्ण दुःख प्राप्त होते हैं और साक्षी अर्थात् गवाह दो प्रकार के होते हैं एक तो आँख के देखनेवाले दूसरे कान से सुननेवाले ८४ इस कारण से साक्षी को सदैव सत्य ही बोलना चाहिये सत्य बोलने से उसका धर्म और अर्थ नहीं बिगड़ता है ८५ कश्यप जी की उक्त बात को सुनकर प्रह्लाद ने अपने पुत्र विरोचन से कहा कि सुधन्वा तुझसे श्रेष्ठ है और सुधन्वा का पिता अंगिरा ऋषि और उसकी माता मुझसे और तेरी माता से श्रेष्ठ है इससे सुधन्वा अब तेरे प्राणोंका स्वामी है ८६ यह सुनकर सुधन्वा बोला कि हे प्रह्लाद तुमने पुत्रके स्नेह को छोड़कर धर्मसे सत्य को नहीं छोड़ा इससे अब में आज्ञा देता हूं कि तेरा यह पुत्र सौ वर्षतक जियै में हारने के कारण से इसको नहीं मारूंगा ८७ विदुरजी बोले हे राजाओ ! इसी प्रकार से तुम सब भी धर्म के अनुसार द्रौपदी के प्रश्नका ठीक २ उत्तर दो ८८ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! विदुरजीकी बात को सुनकर

किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया इसके पीछे कर्ण ने दुःशासन से कहा कि इस द्रौपदी दासीको घर लेजाओ ८९ यह सुनकर दुःशासन उस कंपित लज्जित और विलाप करती हुई द्रौपदी को खींचकर लेजाने लगा ९० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि अष्टषष्टितमोऽध्यायः ६८ ॥

उनहत्तरवां अध्याय।

द्रौपदी का विलाप करना और कहना कि मेरे प्रश्नका उत्तर मिले और भीष्मजी का यह कहना कि जो उत्तर युधिष्ठिर देवैं वही प्रमाण है ॥

द्रौपदी उस समय बोली कि अरे दुष्ट दुःशासन! जबतक मेरे प्रश्न का उत्तर न मिले तबतक दया कर १ मैं इन कौरवों की सभा में दुःशासन से अत्यन्त विह्वल और दुःखी होरही हूं कौरवों को मैं नमस्कार करती हूं मेरा अपराध क्षमा हो मैंने पहले नमस्कार नहीं की थी इसके पीछे वह द्रौपदी जो दुःख के योग्य न थी पृथ्वीपर पड़ी हुई विलाप करने लगी २ । ३ और कहने लगी कि मुझको केवल स्वयंवर में ही राजालोगोंने देखा था उसके पहले और पीछे किसी ने भी किसी स्थानपर नहीं देखा सो अब मैं सभा में पड़ी हुई हूं ४ हाय! मुझको कभी सूर्य और वायु ने भी घरमें नहीं देखा था अब मुझको सभा में सैकड़ों मनुष्य देख रहे हैं ५ ये पाण्डव मुझे वायु भी स्पर्श करती थी तो नहीं सहसक्ते थे हाय अब वेही पाण्डव इस दुरात्मा के हाथ से मेरी ऐसी गति देख रहे हैं ६ हाय मैं इन कौरवों की पुत्रवधू और इस दुःखको सहने के योग्य नहीं हूं सो ये कौरव भी काल की विपरीतता से मेरी यह गति अपनी आँखों से देख रहे हैं ७ इससे और क्या बुरी बात होगी कि इस सभामें मुझको चारों ओर से सब मनुष्य देखरहे हैं हाय इन राजाओं का धर्म कहां गया पहले धर्मात्मा लोग स्त्री को सभा में कभी नहीं लाते थे ८ हाय कौरवों का सनातन धर्म नष्ट होगया है मैं पांडवों की पटरानी धृष्टद्युम्न की बहिन और कृष्णकी सखी होनेके कारण से सभा में आने के योग्य नहीं हूं ९ सो हे कौरवो! अब यह कौरवों के यशको दूर करनेवाला दुष्ट दुःशासन मुझको बड़ा क्लेश देरहा है मैं उस क्लेशको अब सह नहीं सक्ती हूं इससे मुझको जीती या मरी हुई जानकर जैसा उचित समझो दो में से एक बात कहदो कि मैं दासी हूं कि अदासी मैं फिर उसीके अनुसार करूंगी १० । १२ यह सुन कर भीष्मजी बोले कि हे द्रौपदी! मैं पहले ही कहचुका हूं कि धर्म की गति

बड़ी सूक्ष्म है उसको महात्मा लोग भी नहीं जानते हैं १३ इस लोक में बल-वान् मनुष्य जिस धर्मको मानता है वही धर्म है और उस धर्म की मर्यादपर दूसरा चलनेवाला अधर्मी गिना जाता है १४ इससे मैं तेरे गहन गौरव और सूक्ष्म प्रश्नका उत्तर यथोचित नहीं देसक्ता हूं १५ ये कौरव लोभ और मोह के वश में हो रहे हैं अब निश्चय इनका नाश होगा १६ और तेरे पति ये सब पाण्डव धर्म के मार्गसे अलग होना नहीं चाहते हैं १७ हे द्रौपदी! मैं जानता हूं कि तुझको यहां बड़ा कष्ट होरहाहै परन्तु इस कष्ट पर भी तू अपने धर्म को नहीं छोड़ती है ऐसा काम सिवाय तेरे और कौन करसक्ता है १८ देख ये द्रोणाचार्य आदि वृद्धलोग जो धर्मके जाननेवाले हैं नीचेको मुख किये हुये मुरदे के समान बैठे हुये हैं कहते कुछ नहीं हैं इससे हमारी समझ में यह युधिष्ठिर ही कहै कि तू जीतीगई है या नहीं १९ । २० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ६९ ॥

सत्तरवां अध्याय।

दुर्योधन का द्रौपदी से अपना प्रश्न पांडवोंही से पूँछने को कहना
और भीमसेन का क्रोध करके उत्तर देना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! द्रौपदी अत्यन्त विलाप करती रही परन्तु किसी राजाने दुर्योधन के भयसे कुछ उत्तर नहीं दिया १ दुर्योधन उनको चुप देखकर हँसता हुआ द्रौपदी से बोला २ कि तू अपना यह प्रश्न भीमसेन अर्जुन नकुल और सहदेव से पूँछ वही निश्चय करके इसका उत्तर देंगे ३ जो ये लोग युधिष्ठिर को झूंठा ठहराकर यह कहदें कि युधिष्ठिर तेरा स्वामी नहीं है तौ तू दासीभाव से छुटादी जावेगी ४ अथवा युधिष्ठिर आप ही जो धर्मात्मा और इन्द्रकी तुल्यहै इस प्रश्नके उत्तर में कहे कि मैं द्रौपदी का स्वामीहूं या नहीं इन दोनों बातोंमें से जिसे चाहे तिसे अङ्गीकार कर ५ देख तेरे दुःखके कारण से ये सब कौरव दुःखी होरहे हैं और पांडवों का अल्पभाग्य देखकर कुछ नहीं कहते हैं ६ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय दुर्योधन की बात को सुनकर सब सभाके मनुष्य ऊँचे स्वर से दुर्योधनकी प्रशंसा करने लगे और प्रसन्न होकर पांडवों की ओर देखने लगे और कहनेलगे कि देखो अब युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव क्या उत्तर देते हैं ७। १० उस समय राजाओं के चुप होने पर भीमसेन अपनी दोनों भुजाओं को पकड़

कर बोला कि हे दुर्योधन ! जो हमारा यह बड़ा भाई युधिष्ठिर हमारे कुलका स्वामी न होता तो हम तेरे इस दोषको कभी क्षमा नहीं करते ११ । १२ हमारे पुण्य तप और प्राणोंका यही स्वामी है जो यहअपने को हारा हुआ माने तो हम सबको भी जीता हुआ समझो १३ जो मनुष्य इस प्रकार से द्रौपदी के बालों को खींचे और पृथ्वी पर डालकर पैर लुआवै वह मेरे हाथों से जीता हुआ किसी प्रकार से नहीं बच सक्ताहै १४ देखो ये मेरी दोनों भुजा लम्बी चौड़ी परिघकी समान हैं जो इन्द्र भी इन भुजाओं के बीचमें आजावै तो वह भी नहीं बच सक्ताहै १५ परन्तु क्या कहूं मैं अब धर्म के बंधनमें पड़ा होने और युधिष्ठिर के गौरव और अर्जुन के रोकने के कारण से इस संकट के पार नहीं होसक्ताहूं १६ नहीं तो युधिष्ठिर जो आज्ञा दे देवें तो अभी इन धृतराष्ट्रके पुत्रोंको इस प्रकारसे पीसकर मारडालूं जैसे सिंह नीच मृग को मारडाले १७ यह सुनकर भीष्म द्रोणाचार्य और विदुरजी बोले कि तुम क्षमा करो तुम इसी योग्य हो १८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि सप्ततितमोऽध्यायः ७० ॥

इकहत्तरवां अध्याय।

भीमसेनका युद्धमें दुर्योधनकी जाँघ तोड़नेका प्रण करना कौरवोंका द्रौपदीके साथ बहुत अनीति करना उस अनीतिसे धृतराष्ट्र की सभाके पास उत्पातसूचक गीदड़ोंका बोलना उसको सुनकर धृतराष्ट्रका द्रौपदीको वर देना और पांडवोंका दासभावसे छूटना ॥

कर्ण बोला कि इस सभामें भीष्म विदुर और द्रोणाचार्य ये तीनों धर्मवान्हैं क्योंकि ये तीनों अपने स्वामी को बड़ा दुष्ट बताते हैं और पाप करने से नहीं डरते हैं १ हे द्रौपदी ! शिष्य, अस्वतंत्र स्त्री, दासकी स्त्री और दासका सब धन यह स्वतंत्र नहीं होतेहैं इससे तू दुर्योधन के घरमें रहकर सब परिवारकी सेवा कर अब पांडव तेरे स्वामी नहीं हैं ये धृतराष्ट्र के सब पुत्रही तेरे स्वामीहैं २।३ और इन राजपुत्रों में से जिसको चाहे उसीको वरले जिससे तू दासीभावसे मुक्त होजावे क्योंकि जिस दासीके बहुतसे पति होते हैं वह दासी निंदित होतीहै ४ ये युधिष्ठिर आदि पांचों पांडव हारकर दास होगये हैं तू भी इनकी स्त्री होनेसे दासी है इससे ये पांडव अब तेरे स्वामी नहीं रहे ५ जो ऐसा नहीं होता तो क्या ये पांडव जिन्होंने तुझको जुए में हारदिया है पराक्रम और यत्न न करते ६ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! भीमसेन कर्णकी

उक्त बातको सुनकर क्रोध के मारे भयानक स्वरूप होगया और लाल लाल आँखें निकालकर धर्म की फाँसीमें बँधा हुआ होनेके कारणसे गरम श्वास ले ले कर कहने लगा ७ कि हे युधिष्ठिर! मैं इस सूतके बेटेपर क्रोध नहीं करता हूं क्योंकि यह सत्य है कि हम दास होगये हैं परंतु जो तुम द्रौपदीको दावँपर लगा कर जुआ न खेलते तो शत्रु हमसे ऐसे क्यों कहते ८ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! दुर्योधन भीमसेनकी बातको सुन राजा युधिष्ठिरसे जो अचेत और चुप बैठा था कहने लगा ९ कि ये चारों भाई अर्थात् भीमसेन अर्जुन नकुल और सहदेव तुम्हारे आज्ञाकारी हैं इससे तुम द्रौपदीके प्रश्नका उत्तर दो कि तुम उसको जीती हुई मानते हो या नहीं १० यह कहकर दुर्योधन ने जो ऐश्वर्य के मदसे मोहित होरहा था कर्णकी ओर इशारा करके और मुसकरा के द्रौपदीको अपनी जाँघ जो केलेके खंभ हाथीकी सूंड़ और वज्रके समान गौरवयुक्त थी वस्त्रको हटाकर दिखलाई ११। १३ यह देखकर भीमसेन ने अपनी लाल २ आँखें निकालकर सब राजाओंको सुनाकर कहा कि जो मैं तेरी इस जाँघको युद्धमें गदा मारकर न तोड़डालूं तो मुझको पितृलोक न मिले १४। १५ उस समय भीमसेनके कान नाक आदि स्थानों में से क्रोधकी अग्नि इस प्रकार से निकलने लगी जैसे जलते हुये वृक्षके कोटर अर्थात् खवालों में से अग्नि निकलती है १६ इसके पीछे विदुरजी बोले कि हे प्रतीपवंशी राजाओ! अब भी समझो भीमसेनका वड़ा डर है इन भरतवंशियों की मति तो देवताओं ने पहिले ही हरली है जिसके कारण से ऐसी २ अनीति करते हैं १७ हे दुर्योधन! यह जुआ मर्यादा से आगे बढ़गया जिसके कारण से तुम स्त्री को सभा में लाकर विवाद कररहे हो और कुमंत्र ही करते चलेजाते हो मुझे तुम सबका कल्याण दिखाई नहीं देता है १८ हे कौरवो! आप लोगों को इस धर्मको समझना उचित है क्योंकि धर्मको न समझने से सभाको दूषण लगता है जो युधिष्ठिर अपने को विना हारे द्रौपदी को हारदेता तो निस्सन्देह वह उसका स्वामी रहता और ऐसे ज्वारी से धन जीतना जो उस धनका स्वामी नहीं है स्वप्नमें मिलेहुये धनकी समान है इससे तुम लोगोंको राजा कंधारकी सलाह को छोड़कर धर्म से हटना उचित नहीं है १९। २० यह सुनकर दुर्योधन बोला कि अच्छा अब मैं इस झगड़े को भीमसेन अर्जुन नकुल और सहदेव के ही ऊपर डालेदेता हूं येही अपने मुखसे कहदें कि युधिष्ठिर इसका स्वामी नहीं है

में अभी द्रौपदी को दासीभाव से मुक्त करदूंगा २१ यह सुनकर अर्जुन बोला कि ये युधिष्ठिर हम सबके स्वामी थे परन्तु तुमलोग इस बातको समझो कि अपने को हारनेपर किसी के स्वामी रहे २२ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे धृतराष्ट्र के यज्ञस्थान के निकट गीदड़ बड़े शब्द से रोने लगे कि जिसको सुनकर भयानक पक्षी बोलने और गधे रेंकने लगे २३ उस शब्दको सुनकर विदुर भीष्म द्रोणाचार्य और कृपाचार्य यह कहनेलगे कि कल्याण हो कल्याण हो २४ और विदुरजी और गांधारी ने धृतराष्ट्र के पास जाकर उस उत्पातको जनादिया वह सुनते ही कहनेलगा २५ कि अरे दुर्बुद्धि दुर्योधन! तू बड़ा नीच है जो श्रेष्ठ कुरुवंशियों की सभामें स्त्री से बात करता है विशेष कर के इस धर्मपत्नी द्रौपदी से २६ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! धृतराष्ट्र दुर्योधन से इस प्रकार से कहकर द्रौपदी के पास आये और शांतिपूर्वक कहने लगे २७ कि हे द्रौपदी! तू बहुओं में सबसे श्रेष्ठ सती और पतिव्रता है जो कुछ तेरी इच्छा हो हमसे मांग २८ यह सुनकर द्रौपदी बोली कि जो आप मुझको वरदान देना चाहतेहैं मेरे पति धर्मात्मा युधिष्ठिरको अदास करदीजिये और मेरे मनस्वी प्रतिविंध पुत्रको कोई दासपुत्र न कहे जैसा वह राजाओं से लालित होकर राजपुत्र कहाता था वैसा ही रहे २९।३१ धृतराष्ट्र बोले कि अच्छा हमने यह वरदान दिया ऐसा ही होगा परन्तु तू एकही वरदान के योग्य नहीं है मैं तुझको और वरदान देना चाहता हूं जो इच्छा हो सो मांग ३२ द्रौपदी बोली अच्छा महाराज भीमसेन अर्जुन नकुल और सहदेव अदास होवें और उनको उनके रथ और धनुष् दे दिये जावें ३३ धृतराष्ट्र बोले कि ऐसा ही होगा अब तू तीसरा वर मुझसे और मांग तुझे दो वरदान देने से मेरी तृप्ति नहीं हुई है क्योंकि तू धर्मचारिणी और मेरी सब बहुओंमें श्रेष्ठ है ३४ यह सुनकर द्रौपदी बोली कि महाराज बहुत लोभ करने से धर्मका नाश होता है इससे मैं अब तीसरा वर मांगना नहीं चाहती हूं ३५ शास्त्र में वैश्यको एक क्षत्रियको दो राजाको तीन और ब्राह्मणों को सौ वरतक लिखा है सो ये मेरे पति अब दासभावसे छूटकर शुभ कर्म करके बहुत कल्याण पायेंगे ३६।३७॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि एकसप्ततितमोऽध्यायः ७१॥

बहत्तरवां अध्याय।

भीमसेनका कर्णकी बात सुनकर क्रोध करना और
युधिष्ठिरका उसके क्रोधको शांत करना॥

कर्ण बोला कि हमने आजतक जितनी स्वरूपवान् स्त्रियां सुनी हैं उनमेंसे ऐसा कर्म किसी स्त्री का नहीं सुनाहै १ इस द्रौपदीने पांडव और धृतराष्ट्र के पुत्रों के क्रोधको शांत करके पांडवों को महा दुःखरूपी समुद्र में से नौकारूप होकर निकाला है २। ३ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भीमसेन यह बात सुनकर कि पांडवों की गति स्त्री हुई बड़ा क्रोधित हुआ और दुःखी होकर कहने लगा ४ कि हमने देवलऋषिसे सुनाहै कि संतान, शुभकर्म और विद्या ये तीनों लोकको प्रकाश करनेवाली हैं अर्थात् इन्हीं तीनों रूप रखने वाली ज्योति से प्रजा उत्पन्न होती है ५ और ये ही तीनों उन मनुष्यों का जिनकी देह अपवित्रता से छूटीहै या जिनको जातिवालों ने छोड़दिया है अथवा जो शून्य स्थान में हैं उपकार करनेवाले हैं ६ सो वह संतान विना स्त्री के कैसे होसक्ती है इस कारणसे स्त्री ही सबकी परमगति है हे अर्जुन! सत्यहै कि जो मनुष्य परपुरुषकी संगतिसे उत्पन्न होवे वह ऐसा क्यों न कहे जैसा कर्ण कहता है ७ अर्जुन बोला कि हे भीमसेन! जो अच्छे पुरुष होते हैं वे नीच आदमी से बात नहीं करते हैं चाहे वह कुछ कहे या न कहे ८ और संतलोग दूसरे के किये हुये उपकार को जानकर सदैव सुकृतही का स्मरण करते हैं और किये हुये वैरको कभी हृदय में नहीं आनेदेते हैं ९ तब भीमसेन बोला कि हे युधिष्ठिर! यहां विवाद वृथा बात करने से क्या लाभ है आप आज्ञा दीजिये तो हम बाहर निकल कर इन सब शत्रुओं को मारकर निर्मूल करदें फिर आप इस पृथ्वी का शासन अच्छी प्रकार से कीजियेगा १०। ११ यह कहकर भीमसेन वहां भाइयों सहित इस प्रकार से देखने लगा जैसे मृगों में सिंह देखता है १२ उस समय भीमसेन युधिष्ठिर के शांतस्वरूप को देखकर दुःखित हुआ और क्रोधके कारण से उसके कान नाक आदि मार्गों से ज्वाला निकलने लगी और प्रलय कालके रुद्र स्वरूपके सदृश उसका मुख भौं आदि के चढ़ाने से ऐसा भयानक होगया कि उसके सम्मुख मनुष्य नहीं देखसकता था १३। १५ तब युधिष्ठिरने उसके ऐसे स्वरूप को देखकर हाथ पकड़कर कहा कि भाई ऐसा मत कहो चुपके होकर बैठो १६ इसके पीछे युधिष्ठिर अपने दोनों हाथ

जोड़कर धृतराष्ट्र के सम्मुख खड़ा हो गया और कहने लगा १७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि द्विसप्ततितमोऽध्यायः ७२ ॥

तिहत्तरवां अध्याय।

धृतराष्ट्रका युधिष्ठिर को शिक्षा करना और युधिष्ठिर का इन्द्रप्रस्थ को बिदा होकर जाना ॥

युधिष्ठिर बोला कि महाराज मेरे लिये क्या आज्ञा है मैं आपहीकी आज्ञा में रहना चाहता हूं १ यह सुनकर धृतराष्ट्रने कहा कि अब तुम निर्विघ्न और कल्याणपूर्वक अपने घरको जाओ और धन सहित आनन्दसे राज्य करो २ और मुझे वृद्ध जानकर मेरी आज्ञाको हितकारी और कल्याणकारी समझो ३ तुम धर्मकी सूक्ष्मगतिको पहिचानते हो और ज्ञानी नम्र और वृद्धोंकी सेवा करनेवाले हो ४ बुद्धिमान् मनुष्यों में सदैव क्षमा रहती है इससे तुम भी अब शांत होकर रहो देखो शस्त्र पत्थर आदि कड़ी वस्तुओं पर नहीं चलता है और जो वस्तु नरम होती है उसको काट डालता है ५ उत्तम मनुष्य वैरको अपने मनमें नहीं रखते हैं और न विरोध करते हैं किन्तु गुणोंपर ही ध्यान करते हैं ६ हे युधिष्ठिर ! जो मनुष्य संत होते हैं वे दूसरे के वैरको याद करके बदला लेने का उपाय नहीं करते हैं ७ जो मनुष्य बातचीत करने में खोटा वचन बोलते हैं वे महानीच होते हैं और जो उस खोटे वचनको सुनकर खोटा ही उत्तर देते हैं वे मध्यम पुरुष हैं ८ परन्तु जो उत्तम और धैर्यवान् मनुष्य होते हैं वे अप्रिय और मर्म छेदनेवाले वचन कह सुनकर विषाद नहीं करते हैं ९ और जो सन्त लोग हैं वे अपनी आत्माकी समान दूसरे का भला चाहकर सदैव शुभ कर्म करने में मन रखते हैं और जो कोई उनके साथ वैर भी करता है उसको कभी मनपर नहीं लाते हैं १० सच है कि साधुलोग चाहे जैसा हो अपनी मर्यादा से बाहर नहीं होते हैं वैसा ही इस सभामें तुमने भी किया कि अपनी धर्म की मर्यादासे बाहर नहीं हुये ११ सो हे युधिष्ठिर ! तुम अब मुझे वृद्ध अंधे और अपनी माता गांधारी की ओर देखकर इस दुर्योधनके कियेहुये कर्म को अपने मनसे निकाल दो यह जुआ मेरी ही प्रेरणासे हुआ था १२ । १३ मुझे पुत्रों का बल अबल और मित्रोंको देखना था तुम कौरवों के राजा हो तुमको किसी बात का शोच करना उचित नहीं है १४ निस्सन्देह हमारे मंत्री विदुर जी बड़े पण्डित और बुद्धिमान् हैं और तुम धर्मात्मा अर्जुन धैर्यवान् भीमसेन

पराक्रमी और नकुल सहदेव बड़ोंकी शुश्रूषा करनेवाले हैं ईश्वर करै तुम्हारा कल्याण हो तुम्हारी बुद्धि धर्म में रहै और दुर्योधन आदि भाइयों से तुम्हारी प्रीति रहै अब तुम खांडवप्रस्थ को जाओ १५ । १६ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उक्त बातों को सुनकर युधिष्ठिरने सब बातों के करनेकी प्रतिज्ञा की और वहां से भाई और द्रौपदी सहित इन्द्रप्रस्थको रथों में सवार हो हो कर चलदिये १७। १८॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ७३॥

चौहत्तरवां अध्याय।

दुर्योधनका धृतराष्ट्र से अनेक कारण कहकर पांडवोंको फिर जुआ खेलने के लिये बुलवाना॥

उक्त कथाको सुनकर राजा जनमेजय ने वैशम्पायनजी से पूछा कि महाराज जब धृतराष्ट्रने पाण्डवों को सब रत्न देकर चले जानेको आज्ञा दे दी तब धृतराष्ट्र के पुत्रों के मनकी कैसी गति हुई १ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! दुःशासन पाण्डवोंको धन सहित जाने की आज्ञा दिया हुआ जानकर महादुःखी हुआ और अपने भाई दुर्योधनके पास जो उसे श्रेष्ठ जानता था जाकर कहनेलगा २। ३ कि देखो भाई किस दुःखसे तो शत्रुको वश में करके हमने धन लिया था परन्तु इस बुड्ढेने सब किया कराया व्यर्थ कर दिया ४ यह सुनकर दुर्योधन शकुनि और कर्ण तीनों पाण्डवों से बदला लेने के लिये धृतराष्ट्र के पास जल्दी से पहुँचे और स्नेह सहित कहनेलगे ५। ६ पहिले दुर्योधन बोला कि हे पिता! आपने जो शुक्रकी कही हुई नीति बृहस्पतिजीने देवताओं से कही थी वह नहीं सुनी है ७ मनुष्यको चाहिये कि अपने अहितकारी शत्रुको युद्ध और पराक्रम करने के पहिलेही जिस उपाय से होसके मारडाले ८ हमारी इच्छा थी कि हम पाण्डवों के धनसे सब राजाओं को अपने वशमें करलें ऐसा करने पर जो पाण्डवोंसे हमसे युद्ध भी होता तो हमारी कुछ हानि नहीं थी ९ भला ऐसा कौन मनुष्य होगा जो विषधारी सांपों को अपने आपको नाश करने के लिये अपने कंधों और पीठपर छोड़ैगा १० सो हे पिता! पाण्डव भी सांपोंकी समान क्रोधित होरहे हैं जिस समय रथों में चढ़कर शस्त्र लियेहुये आवेंगे उसी समय सब को मारकर एक को न छोड़ेंगे ११ देखो अर्जुन चलते समय रथ में बैठकर तरकसों को बांध

कर बेर २ गाण्डीव धनुष् को उठाता था और चारों ओर श्वास ले ले कर देखता था १२ और भीमसेन भी अपनी भारी गदाको उठाकर रथको जोत कर जल्दी से चलदिया १३ नकुलने भी अपनी ढाल और तलवार ले ली और सहदेव और युधिष्ठिर यों ही गये हैं उनकी चेष्टा से ऐसा जानाजाता है कि वे रथोंको दौड़ाते हुये सेना लेने को गये हैं सेना लाकर अवश्य उत्पात करेंगे क्योंकि हमने उनके साथ जो २ उत्पात किये हैं और द्रौपदीको जो जो क्लेश दिये हैं उनको वे कभी न सह सकेंगे १४।१६ इससे मैं चाहता हूं कि आप फिर उनको लौटाकर जुआ कराइये अब की हम उनसे यह प्रण अर्थात् दावँ बदेंगे कि जो पाँसा डालकर जीते वह दोनों का राज्य करे और हारनेवाला मृगछाला ओढ़कर बारह वर्ष तक वनमें वास करे और तेरहवें वर्ष में गुप्त रहे और जो उस तेरहवें वर्ष में कोई उसको यह जानले कि यह फलाने हैं तो वह फिर बारह वर्ष तक वनमें बसे ऐसा करने से हम पाण्डवों को अपने वशमें करसकेंगे क्योंकि यह शकुनि पाँसों की विद्या को अच्छीतरह से जानता है १७।२१ और जो पाण्डव तेरह वर्ष का व्रत पूरा भी कर आवेंगे तो उतने काल में हम सब मित्रों को वशमें करके और बहुत सी सेनाको आदर सहित इकट्ठी करके हाथों हाथ उनको युद्ध में जीतलेंगे इससे हे पिता! आपको हमारा उक्त कहा करना उचितहै २२।२३ यह सुनकर धृतराष्ट्र बोला कि अभी जाकर पाण्डवोंको जो दूर भी निकलगये हों तो भी शीघ्र लिवा लाओ जिसमें वे आकर फिर उक्त दावँ बदकर जुआ खेलें २४ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे द्रोणाचार्य, सोमदत्त, वाह्लीक, कृपाचार्य, विदुर, अश्वत्थामा, युयुत्सु, भूरिश्रवा, भीष्मपितामह और विकर्ण ने पृथक् पृथक् कहा कि अब जुआ होना उचित नहीं है २५।२६ परन्तु धृतराष्ट्रने उनके कहने पर ध्यान न करके अपने बड़े पुत्रका प्रिय करने के लिये उन पाण्डवों को फिर बुलवाया जो जुआ खेलना नहीं चाहते थे २७॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ७४॥

पचहत्तरवां अध्याय।

गांधारीका धृतराष्ट्र को समझाकर दुर्योधन को त्यागने का उपदेश करना और कहना न मानकर धृतराष्ट्र का पांडवोंको फिर जुआ खेलनेको बुलवाना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे गांधारी पुत्र के स्नेह

से धृतराष्ट्रके पास आई और शोकयुक्त होकर धर्म के अनुसार कहने लगी १ कि आपको वह बात अब समझना चाहिये जो विदुरजी ने दुर्योधन के जन्म लेने के समय कही थी कि इस कुलकलङ्की को त्याग करदो क्योंकि इसने उत्पन्न होते ही गीदड़के रोनेका सा शब्द किया था मुझे दीखता है कि अब कुलका नाश होनेवालाहै आप तो बूढ़े बड़े हैं आप क्यों इन बालकोंकी बातों में आकर गहरे पानी में डूबते हैं २।४ आपको इस कुल के नाश होनेका कारण बनकर बँधे हुये पुलको गिराना और बुझी हुई अग्नि को जलाना उचित नहीं है ५ भला ऐसा कौन काल का मारा होगा जो शांत हुये पांडवों को फिर कोपित करके अपना नाश कराना चाहे आप वृद्ध हैं आपको बालकों की सी बुद्धि करना उचित नहीं है हां जो दुर्बुद्धि हो उसको तो अलबत्ता शास्त्र का देखना भी गुणकारक नहीं होसक्ता है इससे आप मेरे कहने से इस कुलके नाश करनेवाले दुर्योधनको त्याग दीजिये ६।८ आपने पुत्रके स्नेह से पहिले इसको नहीं त्यागा था सो अब उसका फल आन पहुँचा है आप तो धर्मात्मा, ब्रह्मज्ञानी और शमपरायण हैं आप अपनी बुद्धिको असावधान न कीजिये जो मनुष्य क्रूर होते हैं उनके घरकी लक्ष्मी शीघ्र नष्ट होजाती है और शीलवान् पुरुषों के घर में लक्ष्मी दिन दिन बढ़कर बेटे पोते तक को मिलती है ९।१० यह सुनकर धृतराष्ट्र बोला कि जो इस कुलका नाश ही होनेवाला है तो मैं उसको नहीं रोकसक्ता हूं जो तू कहती है वह सब होय परन्तु पाण्डव यहां आकर हमारे पुत्रों से जुआ खेलें ११।१२॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि पंचसप्ततितमोऽध्यायः ७५॥

छिहत्तरवां अध्याय।

धृतराष्ट्र की आज्ञासे युधिष्ठिरका शकुनि से फिर जुआ खेलना और सम्पूर्ण राज्य आदि हारजाना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे प्रातिकामी धृतराष्ट्र की आज्ञा से पांडवों के पास जो दूर निकल गये थे पहुँचा और कहनेलगा १ आपको धृतराष्ट्रने बुलाया है और यह कहाहै कि सभा में चौपड़ बिछरही है यहां आकर पाँसे फेंककर जुआ खेलो २ यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि मनुष्य को बुरी और भली दोनों प्रकार की गति ईश्वर ही की इच्छा से मिलती है उसको कोई मनुष्य दूर नहीं करसक्ता है इससे यद्यपि मैं जानता हूं कि

जुआ खेलने में क्षयके सिवाय कोई लाभ नहीं है परन्तु मैं वृद्ध धृतराष्ट्र की आज्ञाको उल्लंघन न करसकने के कारण से जुआ खेलूँगा ३। ४ वैशम्पायन जी बोले हे राजा जनमेजय! जब विपत्ति मनुष्य के निकट आजाती है तब उसकी बुद्धि भी विपरीत होजाती है देखो सुनहरे हरिण का होना असम्भव होने पर भी रामचन्द्र का मन लोभित होगया था ५ पांडव उक्त रीति से कहते हुये और शकुनि के छलको विचारतेहुये जुआ खेलनेको फिर लौट पड़े और हस्तिनापुर में आकर सभामें दैवकी प्रेरणासे सब संसार का नाश करने के लिये फिर जुआ खेलने को बैठगये उनको देख २ कर सब लोग बहुत दुःखी हुये ६। ८ बैठ जाने पर शकुनि बोला कि जो धन वृद्धने छोड़दियाहै उसका हम तुमसे एक दावँ बदकर खेलना चाहते हैं वह यह है कि एक ओर तो दोनों का राज्य और सब धन घोड़ा हाथी बैल बकरी आदि रखदिया जावे और दूसरी ओर बारह वर्ष का वनवास और तेरहवें वर्ष में गुप्त रहना इस नियम से कि उस तेरहवें वर्ष में जो कोई बराबर वाला मनुष्य यह जानलेवे कि ये फलाने हैं तो फिर वह बारह वर्ष तक वनमें वास करे सो हम तुममें से जो जीते सो दोनों ओर का राज्य करे और हारनेवाला हमारे में से हो चाहे तुम मृगचर्म ओढ़कर उक्त रीतिसे वनमें वास करे हे युधिष्ठिर! आओ उक्त दावँ बदकर हमसे जुआ खेलो ६। १५ यह सुनकर सब सभाके मनुष्य ऊपरको हाथ उठा २ कर कहने लगे कि हे धृतराष्ट्र! इन बान्धवोंको धिक्कार है कोई इस कामसे उत्पन्न होने वाले भय को न जानकर नहीं समझाता है १६। १७ युधिष्ठिर उन मनुष्यों की बात को सुनकर धर्म और लोकलाजके वश में होकर कौरवों का नाश होना निकट जानकर जुआ खेलनेकी इच्छा करके कहनेलगा १८।१९ कि मुझसा धर्मको पालनेवाला राजा जुआ खेलने को बुलाया हुआ क्योंकर लौट सक्ता है अच्छा आवो जुआ खेलें २० यह सुनकर शकुनि बोला कि आप दावँ को फिर समझ लीजिये कि एक ओर तो हम तुम दोनों का राज्य घोड़ा हाथी बैल बकरी और खजाना सहित रक्खा हुआ है और दूसरी ओर बारह वर्षका वनवास और तेरहवें वर्षमें गुप्तवास करना है और जो उस तेरहवें वर्ष कोई बराबर वाला मनुष्य वनवास करने वाले को जान जाय तो वह फिर बारह वर्ष तक वनमें बसे सो हम तुम दोनोंमें से जो हार जायगा वह उक्त रीति से वनवास करेगा और जीतनेवाला दोनों ओर का राज्य करेगा यह सुनकर

युधिष्ठिर ने एक बारके ही कहने से उस दावँको अंगीकार किया और शकुनि पाँसा फेंककर बोला कि मैं जीता २१ । २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि षट्सप्ततितमोऽध्यायः ७६ ॥

सतहत्तरवां अध्याय ।

दुःशासन और दुर्योधनका पांडवों की हँसी करना और पांडवों का दुर्योधन शकुनि दुःशासन और कर्णके वधकी प्रतिज्ञा करना और पांडवोंका मृगचर्म ओढ़कर वनको चलना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! पांडवों ने सर्वस्व हारकर वनको जानेके लिये मृगचर्म लेलिये उस समय उनको राज्यहीन और मृगचर्म लिये हुये वन को जाने के लिये तैयार देखकर दुःशासन कहनेलगा १ । २ आहा अब दुर्योधन चक्रवर्ती राजा होगया और पांडव सब हारकर विपत्ति में पड़ गये ३ देवताओंने सब ओर से हमपर कृपा की जो आज हम अपने शत्रुओं से गुणोंमें अधिक और श्रेष्ठ होगये ४ अब पांडव बहुत दिनों तक नरक भोगेंगे और सुख और राज्य से हीन होकर नष्ट होकर फिरेंगे ५ ये ही पांडव थे जिन्होंने धन के मदसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी हँसी की थी देखो अब ये धन और सर्वस्व हारकर वनको जाते हैं ६ अब इनके सुन्दर वस्त्र और कवचों को उतार कर इन्हें मृगछाला ओढ़नेको दे दो क्योंकि शकुनि से जुये के दावँमें इन्होंने यही प्रण किया था ७ आज हमारी समान इस संसार में कौन है ये पांडव जो सदा विचार किया करते रहते थे अब थोथे तिलोंकी समान पराक्रम हीन हो गये ८ इनके ये मृगछालाके वस्त्र यज्ञमें दीक्षित होकर पहननेके नहीं हैं किन्तु ये मृगचर्म अदीक्षित मनुष्यों केसे हैं ९ राजा द्रुपद तो बड़ा बुद्धिमान् था उस ने यह काम अच्छा नहीं किया जो द्रौपदीसी सुंदर कन्याको इन नपुंसक पांडवोंको ब्याह दिया १० हे द्रौपदी ! इन पांडवोंके साथ वन में जाकर तुझ को क्या सुख मिलेगा ये बिचारे धन और स्थानसे हीन होकर मृगछाला ओढ़े हुये आपही दीन होरहे हैं इससे तू हम सब कौरवोंमें से जो क्षमावान् जितेन्द्रिय और धनवान् हैं जिसको चाहे अपना पति कर ले जिसमें तुझे वनका दुःख न सतावे ११ । १२ अब ये पांडव ऐसे हैं जैसे थोथे तिल अथवा चमड़े के बनाये हुये मृग अथवा चावल रहित धान १३ सो जैसे थोथे तिलोंको बटोरने से कुछ लाभ नहीं होता है इसी प्रकार से इन पतित पांडवोंकी सेवा करने से तुझको कोई सुख नहीं मिलेगा १४ भीमसेन उस दयाहीन दुःशासन के उक्त

परुष वचनों को सुनकर क्रोध से भर गया और उसके पास जाकर उसे इस प्रकार से पकड़कर जैसे सिंह किसी मृगको पकड़ लेवे कहनेलगा १५ कि अरे दुष्ट ! अरे पापी ! तू ऐसे निष्फल वचन शकुनि की छलकी विद्यासे धन जीत कर कहता है और इन वचनरूपी बाणों से हमारे मर्मस्थानों को छेदे डालता है क्यों घबराता है मैं तेरे भी मर्मस्थानों को युद्धमें काट तेरे क्रोधी और लोभी सब सहायकों को मारकर तुझे इन बातों की याद दिलाऊंगा १६ । १८ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! वह नीच दुःशासन जिसने लज्जा छोड़ दी थी उस मृगचर्म ओढ़े हुये भीमसेन की उक्त बात को सुनकर तीनबेर गौ २ कह २ कर नाचने लगा जिसके कहनेसे यह प्रयोजन था कि हम तुझे गौ जानकर छोड़े देते हैं १९ यह सुनकर भीमसेन बोला कि अरे दयाहीन ! तू क्यों ऐसे परुष वचन बकता है तू छल से धन को जीतकर बरबरा रहा है २० मैं यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूं कि युद्ध में मैं तेरी छाती को फाड़कर तेरे लोहू को पीऊंगा और तेरे सब भाइयों को मारकर अपनी छाती ठंढी करूंगा जो ऐसा मैं न करूं तो मुझको जो लोक अच्छे कर्मों के करने से मिलते हैं सो न मिलें २१ । २२ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे जब पाण्डव वन को चलने लगे तब दुर्योधन खेल की तरह अपनी चाल भीमसेनकी सी बनाकर चलने लगा २३ तब भीमसेन उसको मुख फेरकर नकल बनाते हुये देखकर कहने लगा कि चाल बनाने से तू भीमसेन नहीं हो सकता है तुझे भाई बेटों सहित मारकर इस बात को याद कराऊंगा और इस तेरी हँसी का उत्तर दूंगा २४ फिर भीमसेन ने सभा से निकलने के समय युधिष्ठिर के पीछे २ चलकर दुर्योधन की हँसी को याद करके और क्रोध को रोककर कहा २५ मैं तो दुर्योधनको मारूंगा अर्जुन कर्ण को मारेगा और इस ज्वारी शकुनिको सहदेव मारेगा और मैं दूसरी यह प्रतिज्ञा भी करता हूं देवता मेरी इस प्रतिज्ञाको युद्धके आनेपर सत्य करें कि मैं दुर्योधन को पृथ्वीपर गिराकर इसके शिरको अपने पावँसे रगडूंगा और इस दुरात्मा दुःशासनकी छातीको सिंहके समान फाड़कर इसका लोहू पीऊंगा २६ । २९ इसके पीछे अर्जुनने कहा कि हे भीमसेन सत्पुरुषोंका निश्चय बातोंसे नहीं जाना जाताहै अबसे चौदह वर्षके पीछे जो कुछ होगा ३०सो होगा तब भीमसेन बोला कि दुर्योधन शकुनि दुःशासन और कर्ण इन चारों दुरात्माओं के लोहूको पृथ्वी

पीवेगी २१ तब अर्जुनने भीमसेन को प्रसन्न करनेकी इच्छा से प्रतिज्ञा की कि मैं तुम्हारी आज्ञासे इस नीच और कुबुद्धि कर्ण को और इसके साथी सब राजाओं को जो मेरे सम्मुख आवेंगे मारकर यमलोक में पहुँचाऊंगा ३२।३४ जो आजसे चौदहें वर्ष में यह नीच दुर्योधन हमारे राज्यको हमें न देगा तो निस्सं-देह मैं इन सब बातों को सच करके दिखाऊंगा चाहे हिमालय पहाड़ चलनेलगे सूर्य की प्रभा जाती रहे और चन्द्रमा में शीतलता न रहे परन्तु मैं अपनी प्रतिज्ञासे नहीं डोलूंगा ३५।३६ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय इसके पीछे प्रतापवान् सहदेव क्रोधसे लाल २ आँखें कियेहुये और सांपकी तरह श्वास लेताहुआ शकुनि को मारनेकी इच्छा से अपनी भुजाओं को पकड़कर कहने लगा ३७।३८ कि अरे गान्धारदेशी मनुष्यों के यशको दूर करनेवाले शकुनि ये पाँसे जिनके बल तू नाच रहाहै पाँसे नहीं हैं किंतु ये तेरे प्राणको नाश करनेवाले तीक्ष्ण बाणहैं ३६ जो तू क्षत्रियधर्म को छोड़कर युद्धमें भाग न जायगा तो जैसी भीमसेन ने आज्ञा दी है उसी प्रकार से मैं तुझको तेरे भाई बंधु और साथियों सहित मारूंगा ४०।४१ इसके पीछे सहदेव की प्रतिज्ञा सुनकर नकुलने कहा ४२ कि इन धृतराष्ट्र के पुत्रों को जिन्हों ने कालसे प्रेरित होकर मरने की इच्छा से द्रौपदी को रूखे वचन सुनाये हैं मैं युधिष्ठिर की आज्ञा से मारकर यमलोक में पहुँचाऊंगा और द्रौपदीको प्रसन्न करने के लिये पृथ्वीपर धृतराष्ट्र के पुत्रोंका बीज नाश करदूंगा ४३।४५ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे वे लंबी भुजा रखनेवाले पांडव उक्त रीति से प्रतिज्ञा करके धृतराष्ट्र के पास गये ४६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ७७ ॥

अठहत्तरवां अध्याय ।

युधिष्ठिर का भीष्मपितामह आदि सब बड़े बूढ़ों से विदा मांग कर वनको चलना ॥

युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्रकी सभामें जाकर कहा कि मैं सब भरतवंशी मनुष्य, भीष्मपितामह, राजा सोमदत्त, राजा वाह्लीक, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, दूसरे राजा अश्वत्थामा, विदुर, धृतराष्ट्र के सब पुत्र, युयुत्सु, संजय और अन्य मनुष्यों से जो इस सभा में बैठेहुये हैं जाने की आज्ञा मांगता हूं और थोड़े दिनों में समय बिताकर फिर आकर आपलोगोंको देखूंगा १।२ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! युधिष्ठिरकी बातको सुनकर किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया लज्जासे

सब नीचेको मुख कियेहुये बैठेरहे परन्तु उन सबोंने मनमें पांडवोंको आशीर्वाद दिया ४ इसके पीछे विदुरजीने कहा कि यह कुंती वृद्ध सुकुमारी और सुख भोगने के योग्यहै वन जानेके योग्य नहीं है सो उसको यहीं छोड़ जाओ वह मेरे घर में रहेगी और परमेश्वर तुम्हारा सब तरह कल्याण करे ५। ६ यह सुनकर पांडव बोले कि आप हमारे चचा और बापकी समान हैं हम आपकी शरण हैं जैसा आप कहते हैं वैसा ही होगा आप हमारे परमगुरु हैं और जो कुछ आप हमको आज्ञा दें सो हम करें ७। ८ यह सुनकर विदुरजी बोले कि हे युधिष्ठिर! जिसको कोई अनीति और अधर्मसे जीत लेताहै उसको विपत्ति पाकर दुःखी होना उचित नहीं है ९ तुम तो धर्मको सब प्रकारसे जानते हो यह अर्जुन जय करनेवाला भीमसेन शत्रुओं को मारनेवाला नकुल अर्थ संग्रह करनेवाला सहदेव दंड देनेवाला धौम्य पुरोहित ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ और द्रौपदी धर्मचारिणी है १०। ११ तुम सब आपस में प्रीतिपूर्वक संतुष्ट होकर रहना शत्रु तुम्हारे बीच में फूट न डालने पावे तुमको सब चाहते हैं और तुम्हारे इस जत्थेके कारणसे इन्द्र के समान प्रबल शत्रु भी तुम्हारा कुछ नहीं करसकताहै १२। १३ तुमने पहले हिमालय पहाड़में सावर्ण ऋषि से वारणावत नगरमें व्यासजी से १४ भृगुतुंग पर्वत पर परशुरामजी से दृषद्वती नदीपर शिवजी से अंजन पर्वतपर असित नाम महाऋषिसे कल्माष नदीके किनारे भृगुजीसे और सदैव नारदजीसे शिक्षा पाई है और सिवाय इसके धौम्य ऋषि तुम्हारे पुरोहित हैं सो तुमको अपनी बुद्धिका मलीन करना उचित नहीं है तुम्हारी बुद्धि ऐलवंशी राजा पुरूरवा से भी अधिक है १५।१७ तुम्हारी शक्तिसे सब राजा जीते जा सकते हैं और धर्म तुम्हारा ऐसा है कि ऋषिलोग भी वैसा धर्म नहीं करसकते हैं सो तुमको अपना मन उस जयमें जो इन्द्र और यमराजके अधीनहै और कोप करने के नियम में लगाना चाहिये १८ परमेश्वर करे तुम दान करने में कुबेर के समान और वशीकरण में वरुणके समान हो जल तुमको सौम्यता परोपकार और सबका उपजीवन होनेके गुण देवे १९ पृथ्वी क्षमा देवे सूर्यमंडलसे तुमको सब प्रकारका तेज मिले वायु तुमको पराक्रम देवे और पंचभूत तुमको सब प्रकार की संपत्ति देवें २० अब हम तुमको जानेकी आज्ञा देते हैं जाओ तुम्हारा कल्याण होगा परमेश्वर करे तुम आरोग्य रहो और तुम्हारे सब काम सिद्ध होवें इस धर्म संकट की विपत्ति को सहकर जब फिर लौट कर तुम आवोगे तब हम तुमको

देखेंगे २१ । २३ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! युधिष्ठिर उक्त बातों को सुनकर और तथास्तु कहकर भीष्म और द्रोणाचार्य को नमस्कार करके चलदिया २४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ७८ ॥

उन्नासीवां अध्याय।

द्रौपदी का कुंतीसे विदा मांगना कुन्तीका विलाप करना और विदुरजी का कुंतीको अपने घर लिवालेजाना और पांडवों का द्रौपदी सहित वनको जाना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय युधिष्ठिरके चलने पर द्रौपदी कुंती आदि जो जो स्त्रियां वहांपर मौजूद थीं सबको नमस्कार करके सबसे जाने की आज्ञा मांगी उस समय पांडवों के महलों में रोनेका बड़ा भारी शब्द हुआ और कुंती द्रौपदीको जातेहुये देखकर शोकसे विह्वल होकर बड़े दुःख से कहने लगी १ । ३ कि हे पुत्री ! तुझे इस विपत्ति को देखकर शोच करना उचित नहीं है तू स्त्रीके धर्म को अच्छी तरह जानती है और सुशीला है ४ और तुझसे पतियोंकी सेवा आदि धर्म के कहनेकी भी मुझे कुछ आवश्यकता नहीं है क्योंकि तू आप पतिव्रता और दोनों कुलोंकी भूषणहै ५ ये कौरव बड़े भाग्यवान् हैं जो तेरे तेजसे जल नहीं मरे अच्छा अब तू निर्विघ्न होकर जा मेरे हृदयमें से तू कभी नहीं उतरेगी ६ जो स्त्रियां श्रेष्ठ होती हैं उनका चलन कैसी ही होनहार विपत्ति पड़ै नहीं बिगड़ताहै तू अपने धर्म पर चलनेवाली है इससे तेरा कल्याण बहुत जल्दी होगा ७ हे सहदेव ! वन में तुम इस द्रौपदी की सदैव रक्षा करते रहियो इसको कोई दुःख न होने पावे ८ यह सुन कर द्रौपदी जो रजस्वला थी और जिसके शिरके बाल खुले हुये थे यह कहकर कि ऐसा ही होवे रोती हुई चल दी ९ उसके पीछे २ कुंती भी महादुःखी होकर चली और आगे जाकर उसने अपने पुत्रों को जिनके सब वस्त्र और गहने उतार लिये थे देखा १० कुंती ने उन सबको मृगछाला ओढ़ेहुये और लज्जासे नीचेको शिर झुकायेहुये देखकर सबको छाती से लगाया और महादुःखी होकर विलाप करती हुई कहने लगी ११ । १२ कि तुमने सदैव दृढ़ भक्तिसे देवताओंकी पूजा की है और सत्य धर्म और मर्यादा के विपरीत कभी कोई काम नहीं किया है तुमको यह दुःख कैसे प्राप्त हुआ हाय यह विधाता की विपरीत गति है मैं नहीं जानतीहूं कि किसके शापसे तुमको यह दुःख मिला

है १३। १४ यह मेरेही भाग्य का दोष है मैंने तो तुम सबको उत्तम पुरुषों से उत्पन्न कियाहै तुम सब पराक्रमी बली सच्चे और तेजस्वी हो हाय तुम सब वनके कठिन २ स्थानों में विना धन के दुर्बल होकर कैसे रहोगे १५। १६ जो मुझे ऐसा मालूम होता कि तुमको वनवास होगा तो शतशृंग पर्वत परसे पांडुके मरनेपर यहां कभी न आती १७ तुम्हारा पिता जो तपस्वी और बड़ा बुद्धिमान् था धन्य था जिसने इन पुत्रोंकी पीड़ाको नहीं देखा और स्वर्ग में रहना अंगीकार किया १८ और माद्री भी जो इस धर्मको जाननेवाली ब्रह्म-ज्ञानी कल्याणी और परमगति थी धन्यहै जो पतिके संग मरकर चली गई मैं भी सब बातों में उसी की समान हूं परन्तु मैंने जीकर यह क्लेश पाया मुझको धिक्कार है १९। २० मैं तुम सब दुःखी महात्मा और प्यारे पुत्रोंको नहीं छो-डूंगी मैं भी वनको चलूंगी हाय द्रौपदी मुझे क्यों छोड़े जाती है २१ क्या विधाताने मेरे शरीरका अन्त नहीं लिखाहै जो ऐसी विपत्ति में भी मेरे प्राण नहीं निकलते हैं २२ हे कृष्ण, द्वारकावासी ! हे बलदेवजी के छोटेभाई ! इस समय तुम कहां हो जो मेरी और इनकी इस दुःखसे रक्षा नहीं करते हो २३ यह बात विख्यातहै कि जो कोई तुमको आदि और सनातन जानकर तुम्हारा ध्यान करता है उसको तुम अपना दर्शन देकर उसके दुःखको दूर करते हो अब क्या कारणहै जो सहाय नहीं करते २४ हे द्वारकावासी ! ये पांडव धर्मात्मा, महात्मा, यशस्वी और पराक्रमी हैं दुःख पाने के योग्य नहीं हैं इनपर अपनी दया कीजिये २५ हाय इन पांडवों पर यह आपत्ति भीष्म द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के बैठे रहने पर जो नीतिके जाननेवाले और इस कुलके शिरोमणि हैं कैसे पड़ी २६ हाय हे महाराज पांडु अब तुम कहां हो इन अपने पुत्रों को जो जूएमें हारेहुये और वनवास करनेको आज्ञा दियेहुये हैं क्या शिक्षा करते हो २७ हे माद्रीके पुत्र, सहदेव ! तू मत जाय लौटआ तू मुझको अपने शरीर से भी अधिक प्याराहै मुझे कुपुत्रकी तरह छोड़कर मत जा २८ तेरे ये सब भाई सत्यप्रतिज्ञ हैं इससे तू इनको ही जानेदे तू यहां रहकर मेरी रक्षा कर तुझे मेरी रक्षा करनेका यहीं फल प्राप्त होगा २९ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे पांडव उस विलाप करती हुई कुन्ती से आज्ञा लेकर उसे प्रणाम करके आनन्दरहित होकर वनको चल दिये ३० और विदुरजी महादुःखी होकर उस विलाप करतीहुई कुन्ती को अनेक प्रकारसे धैर्य देकर

घरको लिवालेगये ३१ और धृतराष्ट्र के पुत्रोंकी स्त्रियां द्रौपदी के सभामें ले जाने और वस्त्र उतारने के हालको सुनकर कौरवोंकी निन्दा कर २ के रोने लगीं और अपने २ मुखोंपर हाथ रख रख कर चिन्ता करने लगीं ३२ । ३३ और धृतराष्ट्रको भी अपने पुत्रों की अनीतिको याद कर कर के दुःख के कारणसे चैन नहीं पड़ा ३४ उस समय उसने शोच और चिन्ता से व्याकुल होकर विदुरजीको शीघ्र बुलाने की आज्ञा दी ३५ विदुरजी सुनते ही धृतराष्ट्र के पास गये तब वह महादुःखी होकर विदुरजी से कहनेलगा ३६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि नवसप्ततितमोऽध्यायः ७९ ॥

अस्सीवां अध्याय ।

विदुरजीका धृतराष्ट्रके पूछनेपर पांडवोंके अनेक रूपों से जाने का वृत्तान्त कहना दुर्योधनका द्रोणाचार्यकी शरणमें जाना और द्रोणाचार्यका उनकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा करना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! धृतराष्ट्र विदुरजीको देखकर शोक युक्त होकर पूछनेलगा कि युधिष्ठिर भीमसेन अर्जुन नकुल सहदेव धौम्य पुरोहित और द्रौपदी किस प्रकारसे वनको जारहे हैं १ । २ विदुरजी बोले कि युधिष्ठिर अपने मुखको कपड़े से ढके हुये भीमसेन अपनी भुजाओं को देखता हुआ अर्जुन बालूको पृथ्वीपर फेंकता हुआ सहदेव मुखपर भस्म लगाता हुआ नकुल अपने शरीरमें धूल मलता हुआ द्रौपदी अपने शिरके खुले हुये बालोंसे मुखको ढके हुये और रोती हुई और धौम्य पुरोहित हाथमें कुशा लिये हुये साम वेद के उन मंत्रों को पढ़ता हुआ जिनके देवता यम और रुद्र हैं जारहे हैं युधिष्ठिर सबके आगे २ हैं और युधिष्ठिरके पीछे और सब हैं ४ । ८ यह सुनकर धृतराष्ट्र बोला कि पाण्डव इस प्रकारसे नाना रूप बनाकर क्यों जा रहे हैं ६ विदुरजी बोले कि यद्यपि आपके पुत्रोंने युधिष्ठिरका धन और राज्य छल करके लेलिया है परन्तु युधिष्ठिर अपने धर्मको छोड़ना नहीं चाहता है इससे उसने तुम्हारे पुत्रों पर दया करके इस विचारसे कि जो मैं अपनी क्रोध भरी हुई आँखें खोल दूंगा तो सब मनुष्य भस्म होजायँगे अपने मुखको कपड़े से ढक लिया है १० । १२ और भीमसेन अपनी भुजाओं के बलसे गर्वित होकर इस विचार से भुजाओं को देखता जाता है कि मेरी समान किसीकी भुजाओंमें बल नहीं है मैं अपनी भुजाओं के अनुरूप शत्रुओं को मारने में कर्म करूंगा १३ । १५

और अर्जुन क्रोधसे बालू इस कारण से बखेरता जाता है कि युद्ध में मैं इसी प्रकारसे वाणोंके समूह के समूह शत्रुओं पर छोडूंगा और सहदेवने मुख पर भस्म इस प्रयोजन से लगाई है कि मुझको इस समय कोई न पहिचान सके १६। १७ और नकुल का स्वरूप बहुत सुन्दर है सो उसने सब देह में धूल इस कारणसे लगा ली है कि राहमें मुझे देखकर कोई स्त्री मुझपर कामासक्त न होजावे १८ और द्रौपदी महादुःखी रोती हुई एक वस्त्र पहिरे हुये रजस्वलाकी अवस्था में रजसे गीले वस्त्रको लिये हुये यह कहती हुई जा रही है कि जिनके कारण से मुझको यह दुःख प्राप्त हुआ है उनकी स्त्रियां अब से चौदहवें वर्ष में रांड़ होकर अपने अपने पतियों को रजके लोहू से भरी हुई जलदान देकर हस्तिनापुरको जावेंगी १६। २१ और धौम्यऋषि कुशाओं को नैर्ऋत्यकोणकी ओर किये हुये यमसम्बन्धी सामवेदके मंत्रोंको गाता हुआ इस प्रयोजनसे जाता है कि कौरवोंके नाश होनेपर मैं इसी प्रकार से सामवेद पढ़ता हुआ पाण्डवों के आगे २ चलूंगा २२। २३ और सब पुरवासी बार २ यह कहते हैं हाय २ हमारा स्वामी इस प्रकारसे जाता है कुरुओं को धिक्कार है जिनकी बुद्धि वृद्ध होने पर भी बालकोंकीसी है २४ और जो हम सबको अनाथ करके लोभके कारणसे पाण्डुके पुत्रोंको देशसे निकाले देते हैं २५ इन लोभी और क्रूर कौरवोंसे हम क्या प्रीति करें २६ सो हे राजा धृतराष्ट्र! वे पांडव उक्त रीति से अपने मनकी बातको रूप और चिह्नोंसे दर्शाते हुये बनकी ओर चले गये २७ हस्तिनापुरसे निकलते ही विना बादलके आकाशसे पानी की वर्षा हुई पृथ्वी में भूकम्प हुआ राहुने विना पर्वके सूर्यको ग्रस लिया और नगर के दहिनी ओर उल्कापात हुआ २८। २६ और देवताओंके मंदिर अँटारियां और यज्ञस्थानकी सीवोंके वृक्षोंपर मांस खानेवाले गृध्र और काक आदि पक्षी और गीदड़ बोलने लगे ३० सो हे धृतराष्ट्र! ये सम्पूर्ण उत्पात तुम्हारे खोटे मंत्रके कारण से भरतकुलके नाश होनेके निमित्त हुये हैं ३१ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जिससमय विदुरजी धृतराष्ट्रसे उक्त प्रकारसे कह रहे थे उसी समय उन कौरवों की सभामें नारदजी महर्षियोंको साथ लिये हुये आये और कहनेलगे ३२। ३३ कि आजसे चौदहवें वर्षमें दुर्योधनके अपराधके कारणसे भीमसेन और अर्जुनके बलसे सब कौरवोंका नाश होगा ३४ यह कहकर नारद जी ब्राह्मीसिद्धिको धारण किये हुये स्वर्गको चढ़कर अन्तर्द्धान होगये ३५

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे कर्ण दुर्योधन और शकुनि द्रोणाचार्य को आश्रय लेकर उनके पास गये और सब राज्य उनको देने लगे ३६ तब द्रोणाचार्य ने क्रोधसे दुर्योधन दुःशासन और कर्ण और सब भरतवंशियों से कहा कि ३७ इन देवपुत्र पाण्डवों को सब ब्राह्मण अवध्य कहते हैं अर्थात् वे मारे नहीं जासक्ते हैं परन्तु हम इन शरण आये हुये धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी सब राजाओं सहित अपने बलके अनुसार रक्षा करेंगे इनको त्यागेंगे नहीं देखो होनहार बड़ा बलवान् है अब तो पाण्डव हारजाने के कारण से धर्म के अनुसार वनको चले गये हैं परन्तु तेरह वर्ष व्यतीत होनेपर जब लौटेंगे तब इस वैरका बदला अवश्य लेंगे ३८। ४० मैंने पहिले राजा द्रुपद को मित्रता की लड़ाई में अंसित किया था सो उसने मेरे मारने के लिये पुत्र होने के निमित्त याज और उपयाज नामी ऋषियोंसे यज्ञ कराया था उस यज्ञमें अग्निकुंड से धृष्टद्युम्न पुत्र और द्रौपदी नाम कन्या प्रकट हुई ४१। ४२ सो वह धृष्टद्युम्न पांडवों का साला है और उनसे बड़ी प्रीति रखता है मुझको उससे बड़ा भय है ४३ क्योंकि वह ज्वालाके वर्णके सदृश देवताओं का दिया हुआ धनुष बाण और कवच सहित प्रकट हुआ है ४४ वह पांडवों के पक्षमें रहेहीगा और दूसरे अर्जुन सब रथी और महारथियों में श्रेष्ठ है इससे उसके साथ युद्ध होनेपर हमारे प्राणों का नाश होगा इससे बढ़कर और कौन सी दुःखकी बातहै सब लोकोंमें यह विख्यात है कि धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य के मारने को उत्पन्न किया गयाहै और द्रोणाचार्य की मृत्युहै ४५। ४७ हे दुर्योधन ! यह काल तेरे कारण से प्राप्त हुआ है यह तेरा सुख हिमऋतुमें ताड़ के पेड़की छायाके समान एक मुहूर्त मात्रकाहै अच्छा अब तुम यज्ञ करो दान दो और सुख भोगो ४८। ४९ चौदहवें वर्ष में तो तुम्हारा नाश होहीगा यह सुनकर धृतराष्ट्र बोला कि हे विदुर ! आचार्य ठीक कहते हैं तुम जल्दी से जाकर पांडवोंको लौटा लावो ५० जो वे न लौटें तो फिर इस प्रकार से न जाने पावें जैसे अब जारहे हैं यहां से सत्कार पाकर रथोंपर सवार होकर शस्त्र लियेहुये प्यादों के साथ जावें ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते सभापर्वणि अशीतितमोऽध्यायः ८० ॥

इक्यासीवां अध्याय ।

पांडवों के वनको चलेजाने पर धृतराष्ट्र को बड़ी चिन्ता करना ॥

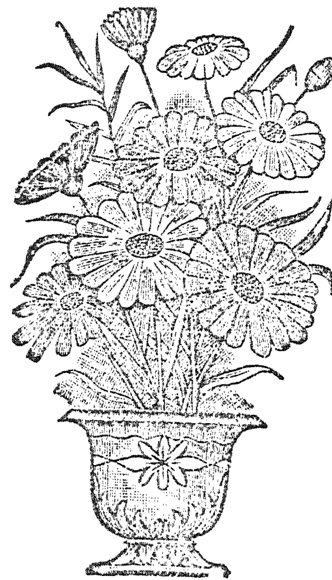
वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! जब पांडव द्यूतमें हारकर वनको

चले गये तब धृतराष्ट्र बड़ी चिन्ता करनेलगा १ संजय उसको व्याकुलचित्त और चिन्तासे श्वास लेतेहुये बैठाहुआ देखकर कहनेलगा २ कि धन सहित पृथ्वी को पाकर और पाण्डवों को वनवास देकर अब किस बातका शोच कररहे हो ३ धृतराष्ट्र बोला कि जिन मनुष्योंका उन पांडवों से जो महारथी बलवान् और चतुरहैं वैर होजावे वे निधड़क क्योंकर बैठसक्के हैं ४ संजय बोला कि यह वैर भी तो आपहीका किया हुआ है जिसके कारण से अब सब लोक का नाश होगा ५ देखो तुम्हारे निर्लज्ज और मंदबुद्धि पुत्र दुर्योधन ने भीष्म द्रोणाचार्य और विदुरजी के मना करने पर भी प्रातिकामी को भेजकर धर्मचारिणी द्रौपदी को सभा में बुलवाया ६ । ७ सत्य है जिसको देवता पराभव देना चाहते हैं उस की बुद्धि पहिले ही से हर लेतेहैं ८ और जब नाश होने वाला होता है तब बुद्धि के पापरूप होजाने से अनीति ही नीति जानपड़ती है ९ और हित अनहित और अनहित हित दिखाई देताहै और वही उसको अच्छा जान पड़ताहै १० कुछ काल दण्डा लेकर किसी के शिरको नहीं फोड़ता है विपरीत बातोंको अनुकूल मानने ही से यह जाना जाता है कि यह काल के वशमें होरहाहै ११ यह रोगरूपी युद्ध सभामें द्रौपदी को लानेवालोंने खड़ा कियाहै १२ भला वह द्रौपदी इस योग्य थी जो विना योनि के अग्निकुंडमें से प्रकट हुई और सब धर्मों की जाननेवाली और स्वरूपवान् थी १३ सिवाय ज्वारियों के उसको सभामें बुलाने का कौन साहस करसक्काहै इसके सिवाय जब वह द्रौपदी अपने रजस्वला धर्म में रुधिरसे भरी हुई एक वस्त्र पहिरे हुये अपने पतियों को जो धन राज्य और वस्त्रोंको हारजाने के कारण से दास होकर धर्म की फांसी में बँधे होने के कारण से पराक्रम नहीं करसक्के थे देखरही थी १४ । १६ उस समय दुर्योधन और कर्ण ने उस दुखिया से जो अनादर करने के योग्य न थी कड़ुये वचन कहे १७ यह सुनकर धृतराष्ट्र बोला कि हे संजय ! तुम सत्य कहते हो वह द्रौपदी अपनी क्रोध भरी हुई आँखों से देखकर पृथ्वी को भी भस्म करसक्की है और मेरे पुत्र भी मुझे उस भस्म के शेष से मालूम होते हैं १८ देखो जब सब भरतवंश की स्त्रियां गांधारी सहित उस धर्मिष्ठ युवान धर्मपत्नी और स्वरूपवान् द्रौपदी को सभा में आई हुई देखकर रो रही थीं और अपने २ पुत्रों के पास बैठ २ कर सोच कररही थीं और ब्राह्मणों ने उसके सभामें लानेको देखकर क्रोध किया था और सायंकाल

को अग्निहोत्र भी नहीं किया था तब प्रलयकी दुंदुभी बजने लगी वज्र के गिरने का सा शब्द हुआ दिनमें उल्का गिरे और पर्व न होनेपर भी राहुने सूर्यको ग्रसलिया इसी प्रकारसे रथशाला में अपने आप आग लग गई १६।२३ ध्वजा गिरपड़ी और दुर्योधनकी यज्ञशाला के पास सियार बड़े भयानक शब्द से बोलनेलगे २४ यह देखकर भीष्म द्रोणाचार्य वाह्लीक सोमदत्त और कृपाचार्य तो चलदिये और विदुरजी की प्रेरणा से मैंने कहा कि हे द्रौपदी ! तू मुझसे वर मांग मैं जो तेरी इच्छा होगी सो ही दूंगा तब द्रौपदीने मुझसे यह मांगा कि सब पाण्डव अदास करदिये जावें २५।२७ मैंने वह वरदान उसको देदिया और पाण्डवोंको धनुप और रथों सहित जानेकी आज्ञा दे दी इसके पीछे मुझसे विदुरजीने कहा २८ कि भरतवंशियों का अन्त यहीं तक है ये द्रौपदी राजा पांचालकी बेटी स्वर्गकी लक्ष्मी है इसके समान दूसरी उत्तम स्त्री नहीं है पाण्डवोंने इसको दैवकी इच्छासे पायाहै सो इसको सभा में लाने के क्लेश को पाण्डव कभी नहीं सह सकेंगे २६।३० और न राजा द्रुपद जो महारथी हैं और वृष्णिवंशी लोग इस द्रौपदी के दुःखको जिसकी रक्षा कृष्ण करते हैं सहेंगे ३१ जिस समय अर्जुन पांचाल देशकी सेना लेकर आवेगा और भीमसेन उस सेनामें अपनी गदाको घुमाता हुआ युद्ध के लिये खड़ा होगा उस समय कोई राजा अर्जुन के गांडीवधनुप के शब्दको सुनकर भीमसेनकी गदाके वेगको न सह सकेगा इससे मैं पांडवों के साथ विग्रह करना अच्छा नहीं जानता हूं मेरी समझसे आप पाण्डवों से संधि कर लीजिये ३२।३४ मैं पाण्डवों को कौरवों से सदैव अधिक बलवान् जानताहूं देखो राजा जरासंध जो बड़ा तेजस्वी और बलवान् था भीमसेनके हाथों से मारागया इससे पांडवों से आपकी संधि ही रहे तो ही अच्छा है ३५।३६ आप दोनों ओरके बलाबलको विचार कर शंका छोड़कर जैसा उचित जानिये वैसा कीजिये ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा ३७ सो हे संजय! विदुरजीने उक्त प्रकार से कह २ कर मुझको बहुत समझाया परन्तु मैंने अपने हित करने के लिये उनकी सलाहको अंगीकार नहीं किया ३८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते सभापर्वणि एकाशीतितमोऽध्यायः ८१ ॥

इति सभापर्व समाप्तम् ॥



विक्रयार्थ पुस्तकों का सूचीपत्र

नाम किताब	क़ीमत
महाभारत भाषा कामिल	२५)
आदिपर्वकुञ्जविहारीलालकृत	२)
वनपर्वकुञ्जविहारीलालकृत	३।)
विराटपर्वकुञ्जविहारीलालकृत	।।।)
उद्योगपर्व पं० महेशदत्तकृत	२।)
भीष्मपर्व पं० कालीचरणकृत	१।।।)
द्रोणपर्व पं० कालीचरणकृत	२।।।)
कर्णपर्व पं० कालीचरणकृत	१।।)
शल्य व गदापर्व पं० कालीचरणकृत	१।)
सौप्तिकपर्व, स्त्रीपर्व पं० काली-चरणकृत	।।=)
अनुशासनपर्व पं० कालीचरणकृत	२।)
शान्तिपर्व मय राजधर्म, आपद्धर्म, मोक्षधर्म पं० कालीचरणकृत	४।)
अश्वमेधपर्व पं० कालीचरणकृत	१।)
आश्रमवासिक, मुशल, महाप्रस्थान, स्वर्गारोहणपं०कालीचरणकृत	।।।)
महाभारतकाशीनरेश दोहा, चौपाई आदि छन्दों में १८ पर्व मय हरिवंशपर्व चार जिल्दों में	१२)
महाभारत सबलसिंह चौहान	२।।)
ग्रन्थ गुरुनानकशाह मुजल्लद कपड़ा वलायती	६।।)

नाम किताब	क़ीमत
योगवाशिष्ठ मुजल्लद	८)
उपनिषद् सटीक पं० यमुनाशंकर	
ईशावास्योपनिषद्	≡)
केनोपनिषद्	≡)।।
कठवल्लीउपनिषद्	।=)
प्रश्नोपनिषद्	।≈)
मुंडकउपनिषद्	।=)
मांडूक्योपनिषद्	१)
तैत्तिरीयोपनिषद्	।।)
ऐतरेयोपनिषद्	।)
छान्दोग्योपनिषद् कामिल	१।।)
उपनिषत्सार	≡)।।
उपनिषद् सटीक बाबू ज़ालिमसिंह	
ईशावास्योपनिषद्	≡)
केनोपनिषद्	≡)।।
कठवल्लीउपनिषद्	।।=)
प्रश्नोपनिषद्	।।)
मुंडकउपनिषद्	।।)
मांडूक्योपनिषद्	≡)
तैत्तिरीयोपनिषद्	।।≡)
ऐतरेयोपनिषद्	।)।।
छान्दोग्योपनिषद्	३।)
बृहदारण्यकोपनिषद्	३)

मिलने का पताः—

मुंशी विष्णुनारायण भार्गव,

मालिक नवलकिशोर प्रेस—लखनऊ.